# मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति

## पर जैन सन्तों (आचार्यों एवं मुनियों) का प्रभाव

( सन् 1555 से 1658 तक )

लेखिका

कु. नीना जैन

एम. ए., पी-एच. डी.

व्याख्याता,

व्ही. टी. पी. उ. मा. वि. शिवपुरी (म. प्र.)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति

## पर जैन सन्तों (आचार्यों एवं मुनियों) का प्रभाव

( सन् 1555 से 1658 तक )

लेखिका

**कु. नीना जैन**

एम. ए., पी-एच. डी.

व्याख्याता, एच. टी. पी. उ. मा. वि. शिवपुरी (म. प्र.)

प्रकाशक

**श्री काशीनाथ सराक**

आचार्य श्री विजयेन्द्रसूरि शोध संस्थान

शिवपुरी (म. प्र.)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक—श्री काशीनाथ सराक
पता—श्रीविजय धर्म सूरि समाधि मन्दिर, शिवपुरी (म. प्र.)

संस्करण—प्रथम

वर्ष—विक्रम सम्वत् 2048, वीर सम्वत् 2517, आत्म सम्वत् 95,
वल्लभ सम्वत् 37, समुद्र सम्वत् 14, सन् 1991

© लेखिका

प्रति—1000

आर्थिक सौजन्य—पूज्य पन्यास श्री नित्यानन्द विजयजी
पूज्य गणि श्री सुयस मुनिजी
पूज्य मुनि श्री चिन्दानन्द विजयजी, उपदेश से

मूल्य—35/- रुपये मात्र

मुद्रक—प्रभात प्रिंटिंग प्रेस,
हुजरात रोड, ग्वालियर-1
फोन : 29672

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम नमूं कर जोड़कर श्री पारस जिनचन्द्र
श्री विजय धर्म गुरु को नमूं हो मंगल आनन्द

## नम्र सूचन

इस ग्रन्थ के अभ्यास का कार्य पूर्ण होते ही नियत समयावधि में शीघ्र वापस करने की कृपा करें. जिससे अन्य वाचकगण इसका उपयोग कर सकें.

जगत्पूज्य, शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री आत्म, वल्लभ, समुद्र, इन्द्र सद् गुरुभ्योनमः

श्रीमति काश्मीरावन्ती जैन शिवपुरी (म. प्र.),
स्वर्गवास 20-6-1985
पूज्य माँ की पुण्य स्मृति में प्रकाशित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

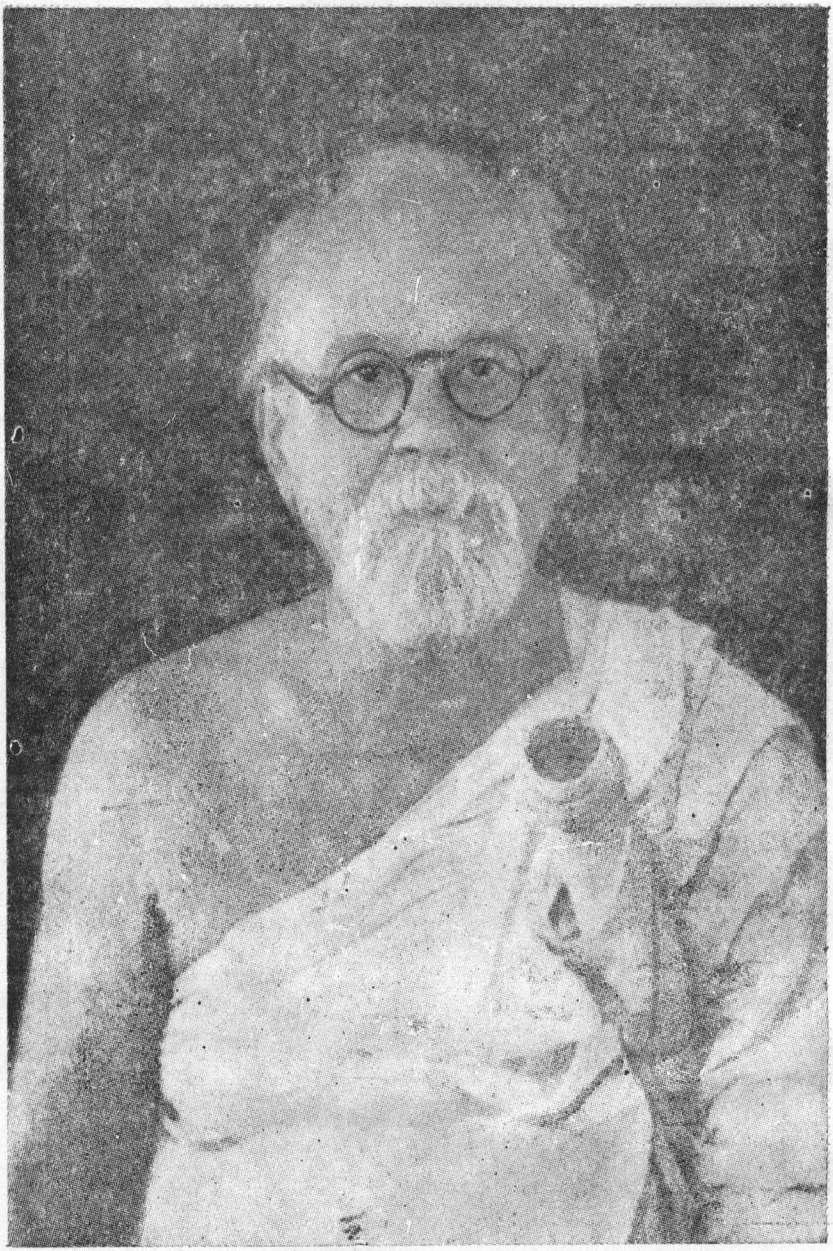

इतिहासतत्व महोदधि जैनाचार्य
श्री विजयेन्द्रसूरिजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# समर्पण

२० वीं शताब्दी में जो जैन साहित्य एवं इतिहास को प्रकाश में लाये एवं जिनके ग्रन्थ भण्डार का मैंने पूर्ण उपयोग किया उन्हीं इतिहासवेत्ता श्री विजयेन्द्र सूरि जी को सादर समर्पित ।

सेविका
कु. नीना जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक कु. नीना जैन द्वारा अपने शोध प्रबन्ध का ही आधार है। मेरे मन में विचार आया कि क्यों न मैं अपने पुस्तकालय का सदुपयोग करूं और पी-एच. डी. कराया जाय उसी विचार को मूर्त रूप देने को कु. नीना जैन को साहित किया जिसका प्रतिफल यह ग्रन्थ है।

इस पुस्तक की विषय वस्तु आज से करीब 500 वर्ष पुराने भारत के इतिहास को प्रकट करती है। उस समय के महान मुगल शासक अकबर के साथ जैन साधुओं द्वारा जैन धर्म और अहिंसा का विचार उनके मन में बैठाया, उसी को दर्शाया गया है।

वर्तमान समय में इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती हैं। पुस्तक से पाठकों को विदित होगा कि आज जिन्हें हम बहुत कट्टर और धर्मान्ध कहते हैं। उनसे जैन साधुओं ने अहिंसा धर्म के पालन में क्या कुछ कराया।

पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने आर्थिक सहायता दी है। उनका मैं बहुत आभारी हूं। छपाई में प्रभात प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री श्रीचन्द राजपाल का पूर्ण सहयोग रहा उनको भी धन्यवाद देता हूँ।

शिवपुरी, श्री काशीनाथ सराक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# आशीर्वचन—

जयन्तु वीतरागाः
श्री आत्म - वल्लभ - समुद्र सद्गुरुभ्यो नमः

**विजय इन्द्रदिन्न सूरि**

मंदिर
मु. पो. जगाधरी रोड पर
जि. यमुनानगर
हरियाणा

हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि हममें इतिहास मनोवृत्ति का नितान्त अभाव है। जिस कारण हम अपने पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध में अल्पतम जानकारी रखते हैं। हम उनका नाम जानते हैं। उनकी आराधना उपासना करते हैं। परन्तु उनके निजी जीवन के ज्ञान से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। यह बात धर्म प्रवर्तकों के विषय में विशेष रूप से चरितार्थ होती है। जो जिज्ञासु इन महापुरुषों के जीवन से परिचित होना चाहते हैं उनकी जीवन चर्या से शिक्षा लेने की अभिलाषा करते हैं। उन्हें निरुत्साहित होना पड़ता है, फलतः वे भी उनके नाम-स्मरण पूजन तक ही सीमित रह जाते हैं।

परन्तु प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका जी (कुमारी) नीना जैन ने मात्र इस कमी का अनुभव ही नहीं किया प्रत्युत उसे दूर करने का भी अनुकरणीय सुप्रयास भी किया।

आज तो सर्वत्र सर्वत्र हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है। जिस पर सरकार भी पूर्ण रूपेण अंकुश लगाने में स्वयं को असमर्थ पा रही है। प्रस्तुत पुस्तक में हमें यह जानकारी मिलती है कि पूर्व काल में जैन धर्म के जैन साधुओं के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मुगल बादशाहों ने किस प्रकार हिंसा पर प्रतिबन्ध लगाया।

प्रस्तुत पुस्तक समाज के विद्वत् वर्ग को इतिहास के सम्बन्ध में नवीन ओजपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

मेरी भावना है कि इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हो पुस्तक की सफलता के लिए लेखिका को हार्दिक शुभ कामना है। विजयेन्द्रदिन्नसूरि

परशुराम ११ मंजिल मंदिर
जगाधरी रोड पर
जगाधरी
जि. यमुनानगर
हरियाणा

[illegible] ६ बुधवार
१०-२-९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

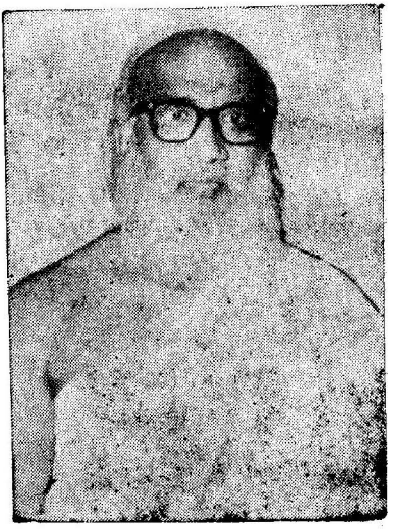

परमार क्षत्रियोद्धारक,

जैन दिवाकर आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्नसूरिजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# भूमिका

भारतीय इतिहास लेखन का कार्य अधिकृत एवं समसामयिक सामग्री की अनुपलब्धि के कारण अत्यधिक दुरूह माना जाता रहा है। शिलालेख, दानपत्र, सिक्के तथा विदेशी यात्रियों के विवरण प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत हैं तथा इनके साथ ही समसामयिक इतिहासकारों के विवरण एवं मुगल शासकों के आत्मचरित् मध्य युगीन इतिहास के प्रमाणिक स्रोत माने गये हैं। हमने इसे सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार लिया है कि भारत में इतिहास लेखन की प्रवृत्ति ही नहीं थी, किन्तु तथ्य यह है कि भारत में राजनैतिक घटनाओं का महत्व सामाजिक प्रभाव की दृष्टि से सदैव आंका गया है तथा साहित्यिक कृतियों एवं धार्मिक अभिलेखों में भी ऐसी घटनाओं का उल्लेख मिलता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक इतिवृत्तों पर आधारित सर्वाधिक काव्य कृतियां जैनाचार्यों एवं जैन कवियों द्वारा लिखी गई है। धार्मिक अभिलेखों में जैन विज्ञप्ति पत्र एतिहासिक तथ्यों के प्रामाणिक आधार हैं। वीतराग आचार्यों के काव्य भाषा एवं शैली में कितने ही अलंकृत हों, किन्तु सत्य की महाव्रतों में प्रथम गणना होने के कारण असत्य तथ्यों के वर्णन की उनमें सम्भावना ही नहीं की जा सकती।

विज्ञप्ति पत्र इस कारण और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि उनमें लेखन अपने स्वयं के असत् कर्मों का उल्लेख करने में भी नहीं संकोच करता तो फिर किसी अन्य के विषय में ज्ञात तथ्यों को छुपाने में उसकी क्या रूचि हो सकती है। डाक्टर हीरानन्द शास्त्री ने जैन विज्ञप्ति पत्रों के नैकविद्य महत्व को निम्नांकित शब्दों में उचित ही व्यक्त किया है कि—"विज्ञप्ति पत्रों में छोटी-छोटी कहानियों और पुरानी घटनाओं से हमें देश के शासकों के बारे में जो कुछ लिखा है, उसका पूरा वर्णन मिलता है, जो कि इतिहास के लिए भी महत्वपूर्ण है। यह हमें कला क्राफ्ट और व्यवसाय के बारे में विस्तार से बताते हैं। सामाजिक धार्मिक रीति-रिवाजों के ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ मनुष्य संबंधी ज्ञान भी करवाते हैं"[1]

---

1. एंशिएंट विज्ञप्ति पत्र पृष्ठ 17

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉक्टर शास्त्री के उक्त शब्दों में जैन विज्ञप्ति पत्रों के राजनैतिक सामाजिक, सांस्कृतिक, कलात्मक तथा आर्थिक इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व को सरलता से समझा जा सकता है।

जैन भण्डारों में केवल धार्मिक ग्रन्थों का ही संग्रह नहीं रहा अपितु एतिहासिक महत्व की बहुमूल्य सामग्री भी वहां उपलब्ध है, किन्तु आचार्य श्रीविजय धर्म सूरि, आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि, मुनि श्री पुण्य विजय जी, मुनि श्री कल्याण विजयजी, डाक्टर हीरानन्द शास्त्री, मुनि श्री जिनविजयजी, मोहनलाल दलीचन्द देसाई जैसे कुछ ही जैन विद्वानों ने ऐसी सामग्री को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है तथापि जो कुछ सामग्री प्रकाश में आई भी है उसका एतिहासिक शोध दृष्टि से सम्यक उपयोग नहीं किया गया है। प्रायः जैन विद्वानों ने तथा इतिहा के शोधकर्त्ताओं ने जैन संग्रह के अनुशील की ओर सम्भवतया इस प्रचलित धारणा के कारण रूचि नहीं दिखलाई कि—"हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम्" क्योंकि पुस्तक भण्डार प्रायः जैन मन्दिरों में ही रहते हैं।

इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता हैं कि जैनेतर सम्प्रदाय के व्यक्तियों से जैन भण्डारों को बचाकर ही रखा गया है तथा वहां सुरक्षित समस्त पुस्तकों को धार्मिक पुस्तकों की भांति ही केवल संरक्षणीय, पूज्यनीय माना गया है जैन ग्रन्थ भण्डारों के महत्व को प्रकट करते हुए डाक्टर लक्ष्मनदास ने लिखा है "यह कहना आवश्यक नहीं है कि जैनियों के पास जो ग्रन्थ भण्डार हैं वे यूरोप की किसी भी जाति के पास नहीं है वे (यूरोपियन) उन्हें प्राप्त करने के लिए अत्यधिक धन व्यय करने को तत्पर रहते हैं.[1]

यह सर्वविदित है कि जर्मनी, फ्रांस एवं इंग्लैंड के विद्वान बहुत से भारतीय साहित्य को ले गये तथा उसका उपयोग वैज्ञानिक, भाषा वैज्ञानिक तथा एतिहासिक खोजों के लिए कर रहे हैं। भारतीयों ने कम से कम 20वीं सदी में इन पाश्चात्य विद्वानों के लेखों को प्रमाणिक वचन के रूप में स्वीकारा तथा उन पर किसी प्रकार से शका करने की आवश्यकता ही नहीं समझी अतः इनके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के खण्डन-मण्डन अथवा कुछ नवीन तथ्यों को प्रस्तुत करने का साहस भी वे नहीं जुटा सके।

मेरा भारतीय इतिहास के विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि वे अपने-अपने

---

1. द जैन [illegible]द्या 1941 पृष्ठ 27

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रों में ही विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के पास सुरक्षित सामग्री का विवेचन कर उसमें से इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण सामग्री को प्रकाश में लाने का प्रयास करें, ताकि भारतीय इतिहास की अनेक स्थलों पर टूटी हुई कड़ियां जोड़ी जा सकें एवं अधिक प्रामाणिक, क्रमिक व विस्तृत इतिहास जो भारत का इतिहास हो, हमारे सामने आ सके। इन शब्दों का सोद्देश्य प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि वर्तमान में भारतीय इतिहास की जोपुस्तकें उपलब्ध हैं तथा अभी जैसी पुस्तकें लिखी जा रही हैं, उनमें मोहन जोदड़ों की सभ्यता का इतिहास, द्रविड सभ्यता का इतिहास, वैदिक सभ्यता का इतिहास, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, मौर्य गुप्त साम्राज्य का इतिहास, राजपूत युग का इतिहास, मुगल सल्तनत का इतिहास, जैसे खण्डों के रूप में भारत के इतिहास को प्रस्तुत करना जैसे इतिहास लेखन की शैली में भी नहीं रहा है, क्या मोहन जोदड़ों की सभ्यता में आर्य सभ्यता की झलक नहीं मिली हुई थी ? क्या वैदिक युग में द्रविड़ तथा अन्य जातियां भारत में निवास नहीं कर रही थीं ? क्या मौर्य युग में बृहत्तर भारत की कोई राजनैतिक छवि नहीं थी ? क्या गुप्त साम्राज्य में केवल वैष्णव धर्म ही भारत में सुरक्षित था ? क्या राजपूत युग में भारत को विभिन्न राज्यों के समूह के रूप में ही देखा जा सकता है ? और क्या मुगल सल्तनत का भारत आर्यों का भारत नहीं है ? आदि प्रश्न हमें भारत के ऐतिहासिक चित्रफलक के दूसरी ओर झांकने के लिए प्रेरित करते हैं जिस ओर का भारत एक समुद्र जैसा दिखाई देता है, जिसमें अनेक जातियां, समुदायों, राजवंशों, सम्प्रदायोंकी लहरें हैं, प्राणी हैं, नदियों का जल है और न जाने क्या-क्या है किन्तु वह सब समुद्र हैं। पूरे जल का एक जैसा स्वाद है, उसकी तरंगों की एक सी ध्वनि है। वह सदा अपनी मर्यादा में रहा है। वह हिन्द महासागर है, अरब सागर या बंगाल की खाड़ी नहीं।

आगे के पृष्ठों में मेरा यह विनम्र प्रयास भारत के लिखित, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के संशोधन एवं परिवर्धन की दिशा में प्राचीन किन्तु अप्रयुक्त सामग्री के आधार पर एक अभिनव प्रयास है इसकी सामग्री प्रमुखतः जैन साहित्य में से ली गई है जिसके आधार पर प्रतिष्ठित इतिहास ग्रन्थों के विवरणों का खण्डन-मण्डन हुआ है। प्रयुक्त सामग्री की नवीनता के उदाहरणों का उल्लेख यहां अभीष्ट होगा। जहांगीर के काल का चित्रकार शालिवाहन द्वारा लिखित मुनिविजय हर्ष का आचार्य विजयसेनसूरि के नाम एक विज्ञप्ति-पत्र में जहांगीर के दरबार के विशिष्ट व्यक्तियों का भी उल्लेख है तथा फरमान प्राप्त करने की घटना भी चित्रांकित है। लगभग इसी काल में जटमल नाहर ने लाहौर की गजल लिखी, जिसमें लाहौर नगर के शब्द चित्र के साथ ही वहां जहांगीर के सेना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहित आगमन का वर्णन है। नागरिकों की वेश-भूषा, रहन-सहन, दिन-चर्या, परिचय भी इस गजल में मिलता है।

ये वो उदाहरण हैं जो न तो इतिहास लेखन की दृष्टि से लिखे गये और न इतिहास लेखन में इनका एतिहासिक महत्व असंदिग्ध है। ऐसी अन्य बहुत सी बिखरी हुई सामग्री को इस शोध प्रबन्ध में समेटा गया है। मुगल काल के तथा उससे सम्बन्धित अनेक रचित काव्यों में तत्कालीन भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्था की सुस्पष्ट झलक मिलती है। अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों का परिचय उनके कार्यों सहित मिला है। भानुचन्द्रगणिचरित, हीरसौभाग्य काव्य कृपारस कोष आदि ऐसे अनेक ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं जिनमें मुगल शासकों के कृत्यों तथा नीतियों का वर्णन है।

"आइने अकबरी" अकबर के जीवन का प्रमाणिक ग्रन्थ है। उसमें मुझे उनकी सभा में अथवा किसी रूप में जिन लोगों का उनसे सम्बन्ध था, उनमें जैन साधुओं का विशेष उल्लेख है। उन्होंने अपने लड़के को जैन साधुओं से शिक्षा दिलाई। अकबर की परम्पराओं को जहांगीर ने कायम रखा जो शाहजहां के समय तक चलती रही।

डा० श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक "द रिलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पररस" में मुगल कालीन साहित्यकारों की बहुत लम्बी सूचियां दी है किन्तु उन साहित्यकारों की कृतियों का इस काल के इतिहास में बहुत कम उपयोग किया है। स्वयं उनकी पुस्तक में भी उन साहियत्कारों की रचनाओं के सन्दर्भ नहीं दिये गए हैं।

मैंने शोध प्रबन्ध में ऐसी नवीन सामग्री का प्रचुरता से उपयोग किया है। परिणामों में भले ही अधिक नवीनता न मिले किन्तु नये स्रोतों के कारण पूर्व से निकाले गये निष्कर्षों को बल तो मिलता ही है कई स्थानों पर पूर्व प्रस्थापित निष्कर्षो पर प्रश्न चिन्ह भी लग गया है जिसका निराकरण भविष्य की शोधों द्वारा ही हो सकेगा। कुछ पूर्व के निष्कर्ष पूर्वाग्रह ग्रसित भी प्रतीत होने लगे है। जिनका यथास्थान संकेत दे दिया गया है। जहां तक काव्य ग्रन्थों के वर्णनों की प्रामाणिकता का प्रश्न है उसका समाधान जहांगीर के काल में लिखे गये श्री वल्लभ उपाध्याय कृत विजयदेव सूरि महात्म्य की इन पंक्तियों से हो जाता है :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री श्री वल्लभ पाठकेन कविवर व्यावर्णितं सर्वतः
श्रोतृ श्रोत सुखप्रदम सुविशदं सत्योक्तित सर्वदा:[1]

किसी जैन मुनि के सत्य प्रतिज्ञा के साथ लिखित वचनों की प्रामाणिकता सन्देह से परे ही समझनी चाहिये।

जैन साहित्य का भण्डार बहुत विशाल हैं और बहुत से ग्रन्थ आज भी अप्रकाशित है। मुझे इस शोध प्रबन्ध के लिए उसी में से तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिले हैं :—

1. लाभोदयरास 2. विजवल्लीरास—ये दोनों तो आचार्य श्री हीरविजय सूरी एवं श्री विजयसेनसूरी के जीवन चरित्र से सम्बन्धित हैं।

3. सूर्यस्तोत्र— जिसका बादशाह अकबर रोज पाठ सुना करता था, जिसके रचयिता गणि श्री हेमविजयजी हैं।

मेरे लिए इस पुस्तक को इतने कम समय में पूरा करना इसलिए सम्भव हुआ कि मुझे आचार्य श्रीविजयधर्म सूरीजी महाराज की छत्रछाया में उन्हीं के पट्टधर आचार्य श्री विजयेन्द्रसूरीजी महाराज के साहित्य संग्रह का जो विशाल भण्डार मौजूद है, शोध प्रबन्ध के लिए सारी सामग्री उसी संग्रह से प्राप्त हुई, जिसमें मुगल सम्राटों द्वारा प्रदत्त फरमानों की मूल प्रतियां भी शामिल हैं।

प्रस्तुत विषय पर शोध करते हुए मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा उसे व्यक्त करना भी मैं उचित समझती हूं। शोध प्रबन्ध के नायक तो आचार्य श्री हीरविजय सूरीजी व बादशाह अकबर हैं। किन्तु 10वीं शताब्दी में इसी तरह के एक और जैनाचार्य श्री हेमचन्द्राचार्यजी व चालुक्यवंशीय राजा कुमारपाल का प्रसंग भी जैन धर्मोन्नति में रहा। समय समय पर समाज में ऐसे ही महापुरुष अवतरित होते हैं। जिनके कारण भारतीय संस्कृति और धर्म आज तक अक्षुण्ण रूप में चला आ रहा है। हीरविजयसूरीजी के बाद 17वीं शताब्दी में यशोविजय उपाध्यायजी जैन साहित्य के उद्धार में प्रसिद्ध हुए हैं उन्होंने किसी भी विषय को अछूता नहीं छोड़ा स्वयं रचनायें लिखने के साथ साथ टीकायें भी की। उनके बाद 19वीं शताब्दी में जैन समाज जो बिल्कुल शिथिल अवस्था में आ गया था उसे जाग्रत करने का काम शासनोद्योत कारक, नवयुग प्रवर्त्तक न्यायम्भोनिधी जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरजी (आत्मारामजी), धर्मधुरन्धर शिरोमणी, विश्वबिन्दा

---

1. श्री विजयदेव माहात्म्यम् सर्ग 17 श्लोक 56

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रविशारद, जगत्पूज्यपाद, जैन धर्माचार्य श्रीमद्विजय धर्मसूरीश्वरजी, आचार्य श्री विजयेन्द्रसूरीजी तथा पंजाब केसरी युगदृष्टा जैनाचार्य श्रीमद विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराज ने किया।

आचार्य श्री विजयधर्मसूरीजी ने यूरोप, अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में जैन साहित्य का प्रचार किया और जर्मनी के कई विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं (संस्कृत, हिन्दी, गुजराती) का प्रवेश करवाया। राज्याश्रय का प्रभाव होने का फायदा एक ही दृष्टांत से समझा जा सकता है—आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिरों में अंग्रेज लोग जूते पहनकर अन्दर तक चले जाते थे, जैन समाज इस कुप्रथा को वर्षों से बन्द कराने का प्रयत्न कर रहा था, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। आचार्य श्री विजयधर्मसूरीजी ने लन्दन के एफ. डब्ल्यू. थामस जो कि उनका मित्र था, को पत्र लिखा कि इस कुप्रथा से हम बहुत दुखी हैं, क्या आप इसे समाप्त कराने में हमारी मदद कर सकते हैं? थामस ने अपने पत्र के साथ सूरीजी का पत्र लगाकर ब्रिटिश सरकार के सेक्रेटरी ऑफ इण्डिया ऑफिस को भेजा और छः माह के अन्दर पॉलिटिकल ऐजेन्ट को आदेश आ गया कि आबू के जैन मन्दिरों में कोई भी जूता पहनकर प्रवेश न करे।

मुझे इस विषय पर शोध करने की प्रेरणा आदरणीय श्री काशीनाथ जी सराक से जिनके संरक्षण में अब आचार्य श्री विजयेन्द्रसूरीजी का सारा भण्डार मौजूद है, मिली। इस समस्त कार्य की पूर्ति का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने न केवल मुझे सहायता ही दी अपितु समय-समय पर नैराश्य से परिपूर्ण हृदय को नवीन आशा की किरणों से परिपूरित किया।

स्वर्गीय डा० सीतारामजी दांतरे अध्यक्ष संस्कृत विभाग आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज इन्दौर का आभार व्यक्त करने की न तो मुझमें सामर्थ्य है और न ही मेरे शब्दों में जिन्होंने इस पुस्तक को आद्योपांत लिखने में पूर्ण सहयोग दिया।

डा० एस० आर० वर्मा अध्यक्ष इतिहास विभाग म० ल० बा० जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर का भी उपकार नहीं चुकाया जा सकता जिन्होंने समय-समय पर अपना अमूल्य समय देकर मुझे शीघ्र अतिशीघ्र इस कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रेरित किया तथा फरमानों का हिन्दी अनुवाद, जो कि मेरे लिए असम्भव था, करने में मेरी पूर्णतया मदद की।

डा० (श्रीमती) विजया केशव सिन्हा रीडर जीवाजी विश्व विद्यालय ग्वालियर की मुझ पर बड़ी अनुकम्पा रही जिन्होंने पुस्तक को पूर्ण करने में हृदय से मेरी मदद की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरे इस कार्य को सफल बनाने में परम श्रद्धेय पन्यास श्रीनित्यानन्द विजयजी, गणि श्री सुयश मुनि जी एवं मुनि श्री चिदानन्द विजयजी (मेरे भाई) समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित करते रहे इसलिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं पुलक का अनुभव कर रही हूं।

इसके साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न विद्वानों और इतिहासकारों के संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, प्राकृत ग्रन्थों एवं पत्रिकाओं से भी मुझे असीम सहायता प्राप्त हुई है। अतः उन विद्वानों व इतिहासकारों की मैं हार्दिक आभारी हूं।

कु. नीना जैन

वसन्त पंचमी
सम्वत् 2047
सन् 1991
वीर सम्वत् 68
श्री खजान्चीलालजी जैन
द्वारा,
श्री यशपाल कीमतीलालजी जैन
कपड़े के थोक विक्रेता
शिवपुरी (म. प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# शुद्धि-पत्र

| पेज नं० | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| 3 | 28 | विमलमर्षगणि | विमलहर्षगणि |
| 4 | 10 | श्रत्रालु | श्रद्धालु |
| 7 | 30 | छः कोस | साठ कोस |
| 10 | 16 | आधार | आचार |
| 16 | 8 | प्रतिबन्ध | प्रतिबोध |
| 16 | फुटनोट [1] | ग्लाविर्भवति | ग्लानिर्भवति, गीता अध्याय 4 श्लोक 7 |
| 19, 20 | 7, 14 | रत्नेश्वर | रत्नशेखर |
| 20 | फुटनोट [1] | वही पृष्ठ 95 | खरतरयच्छ बृहद् गुर्वावली पृष्ठ 95 |
| 29 | 2 | अनुमति | अनुभूति |
| 29 | 11, 20 | फौजी, तुर्की | फैजी, तर्की |
| 32 | फुटनोट [1] | वही पृष्ठ 70 | अकबरी दरबार पहला भाग पृष्ठ 70 |
| 33 | 18 | कर | कट |
| 57 | 8 | "गृहस्थानां यदभूषणं" | "गृहस्थानां यद्भूषणं तत् साधूनां दूषणम" |
| 58 | 13 | शास्त्र | शस्त्र |
| 59 | 13 | वही आत्मा | जो विज्ञाता है वही आत्मा है और जिसके द्वारा जाना जाता है, वही आत्मा है |
| 60 | 6, 21 | विषय, नेक | विषय, अनेक |
| 66 | 27 | क्या तुम शंकर को | बीरबल के स्वीकार करने |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पेज नं० | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| | | ईश्वर मानते हो ? (इसके बाद एक पंक्ति छूट गई है) | पर सूरीजी ने पूछा कि ईश्वर ज्ञानी है या अज्ञानी |
| 72 | 7 | कुम्हारी | तुम्हारी |
| 75 | 11, 26 | भानुचन्द्र, दीनदयाल | भानचन्द, दानियाल |
| 76 | 3 | गदाजी | गांजी |
| 84 | फुटनोट [1] | अधामधामधामेर्ध स्वचेतसि | अंधामधामधामेधं धयमेव स्वचेतसि |
| 85 | 4 | दयाकुशलमणि | दयाकुशलगणि |
| 87 | 7 | समझाकर सुदि तेरस | समझाकर अषाढ़ सुदि तेरस |
| 88 | 19 | जोविड, न मरिज्जड | जोविडं न मरिज्जडं |
| 90 | 3 | संख्या है | संख्या 11 है |
| 93 | नं. 2 | नन्दविजय | नन्दिविजय |
| 94 | 3 | अन्याय | अन्यान्य |
| 97 | फुटनोट की पंक्ति [6] | खेर्वासराः | रवेर्वासराः |
| 99 | 17 | फरबरीदीने | फरवरदीन |
| 110 | फुटनोट [1] | वही पृष्ठ 299 | जहांगीरनामा, हिन्दी अनुवाद ब्रजरत्नदास |
| 111 | फुटनोट [1] | वही पृष्ठ 286 | मुगल एम्पायर इन इण्डिया एस. आर. शर्मा पृष्ठ 286 |
| 112 | 22, 24, 25 | रामसिंह | रायसिंह |
| 114 | 1 | किया है (इससे पहले एक पंक्ति छूट गई है) | ने विज्ञप्ति पत्र के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों के आधार पर भी स्वीकर किया है। |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पेज नं० | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| 122 | 13 | चिन्तन द्वारा आदर्म | चिन्तन द्वारा/धार्मिक चिन्तन आदमी |
| 126 | 8 | सर्व | अब |
| 129 | 14 | प्रतिबोधे | प्रतिबोध |
| 130 | फुटनोट [1] | वही पद 24 | विजयदेव महात्मयं, सर्ग 17, पद्य 24 |
| 133 | नं. 4 | मन्दविजय | नन्दिविजय |
| 137 | 21 | चिन्तागणि | चिन्तामणि |
| 138 | 10 | शाहजहाँ | शाहजादा |
| 145 | 3 | व्यक्तित्व | व्यक्तिगत |
| 151 | 16 | (विजसेन और भानुचन्द) | (विजयसेन और भानुचन्द्र) |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अनुक्रमणिका

## अध्याय—1


| मुगल काल में जैन धर्म एवं आचार्य परम्परा— | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| (अ) तपागच्छ के प्रमुख आचार्य | 1-10 |
| (ब) खरतरगच्छ के प्रमुख आचार्य | 10-13 |
| (स) तत्कालीन हिन्दू समाज की स्थिति | 13-16 |
| (द) प्राचीन जैनाचार्यों का सामाजिक योगदान | 16-20 |


## अध्याय—2


| अकबर की धार्मिक नीति— | |
|---|---|
| (अ) धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले तत्व | 21-33 |
| (ब) धार्मिक नीति का क्रमिक विकास | 34-47 |


## अध्याय—3


अकबर का जैन आचार्यों एवं मुनियों से सम्पर्क तथा उनका प्रभाव— (हीरविजयसूरि, शान्तिचन्द्रजी, भानुचन्द्रजी, सिद्धिचन्द्रजी, विजयसेनसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसिंहसूरि एवं अन्य जैन साधू) 48-108


## अध्याय—4


| जहांगीर की धार्मिक नीति— | |
|---|---|
| धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले तत्व | 109-115 |
| जहांगीर का धार्मिक दृष्टिकोण | 116-119 |


## अध्याय—5


जहांगीर का जैन सन्तों से सम्पर्क— भानुचन्द्रजी, सिद्धिचन्द्रजी, जिनचन्द्रसूरि, जिनसिंहसूरि, विजयदेवसूरि, विवेकहर्ष, आनन्द, महानन्द, उदयहर्ष एवं अन्य साधू) 120-135


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## अध्याय—6

शाहजहां की धार्मिक नीति एवं जैन धर्म 136-138

## अध्याय—7

उपसंहार 139-146

## परिशिष्ट

1. महाराणा प्रताप का श्री हीरविजयसूरिजी को पत्र 147
2. खम्भात में विजयसेनसूरिजी की पादुकाएं वाले पत्थर का लेख 148
सूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम् 149
. "श्रमण" शब्द का पूर्ण विवरण 153-154
. विजयदेवसूरिजी का महाराणा जगतसिंह पर प्रभाव 155
. कच्छ में मोटी खाखर के देरासर का शिलालेख 156-158
(मुनि विवेकहर्ष का कच्छ के राजा भारमल पर प्रभाव)
7. जहांगीर बादशाह का विजयदेवसूरिजी के नाम पत्र 159
8. स्मिथ के पत्र का हिन्दी अनुवाद 160
9. मुगल बादशाहों द्वारा जैन साधुओं को दिये गये फरमान 161-175
10. शिलालेख 176-192
सन्दर्भित ग्रन्थ सूची 193-200

---

श्रीमति राजाबाई कोठारी ने अपने पति स्वर्गीय श्री सौभागमल जी कोठारी की स्मृति में पुस्तक के छपाने में आर्थिक सहायता दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

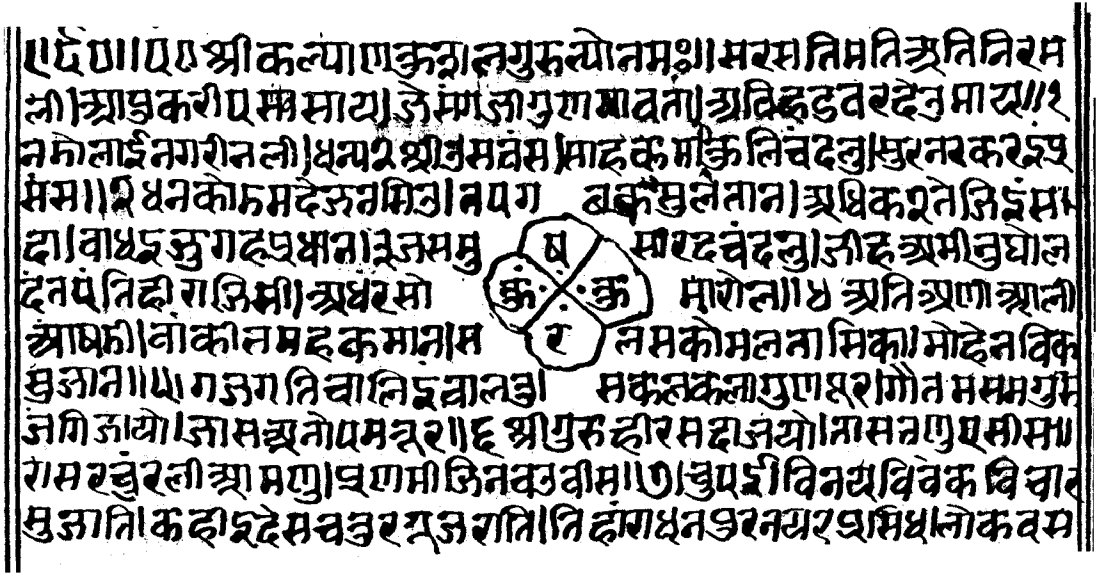

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तलिखित पांडुलिपि ले० पं० दयाकुशलगणि

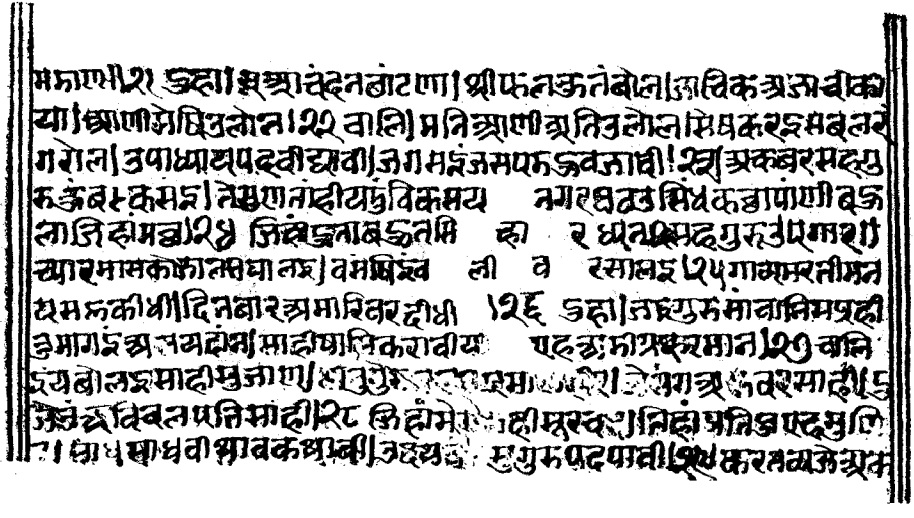

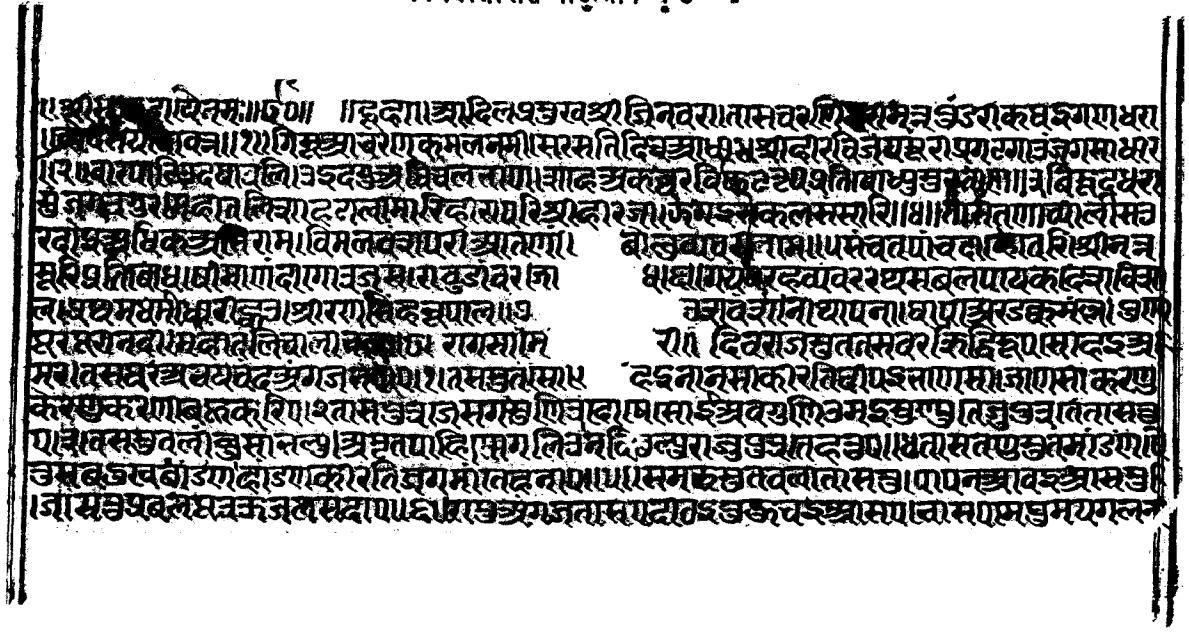

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

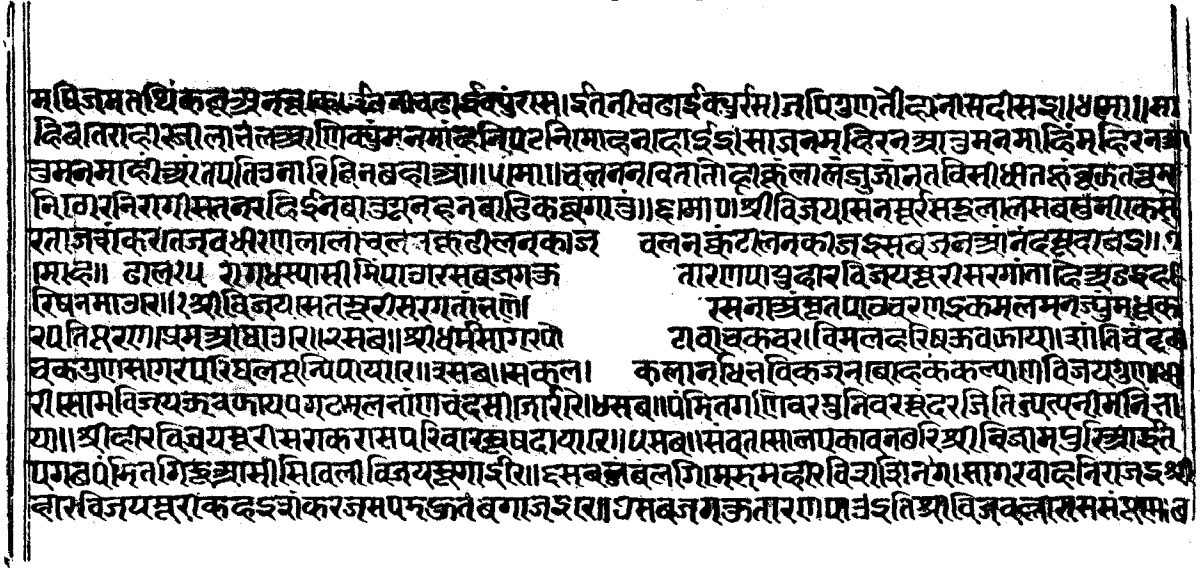

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

सूर्य सहस्त्रनाम स्त्रोत





Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# प्रथम अध्याय

## मुगल काल में जैन धर्म एवं आचार्य परम्परा :—

### (अ) तपागच्छ के प्रमुख आचार्य :—

भगवान महावीर स्वामी की पट्ट परम्परा में अनेक गच्छों का जन्म हुआ। ये गच्छ परम्परा जैन धर्म में साधना का एक सोपान थी। मत विभिन्नता के कारण गच्छ परम्परा को अनेक भागों में बांट दिया गया लेकिन प्रमुख परम्परा में दो को ही प्रमुख स्थान मिला :—

1—तपागच्छ

2—खरतरगच्छ

**तपागच्छ की उत्पत्ति :—**

संवत 1273 (सन् 1216) से श्री जगच्चन्द्रसूरीश्वर ने बारह वर्ष पर्यन्त आँबिल[1] तप की आराधना की इस तप के प्रताप से पृथ्वी पर कलंक का नाश हुआ अर्थात् वह तपा ऐसी ख्याति संसार में प्रकट हुई। इस तरह संवत 1285 (सन् 1228) के साल से श्रीजगच्चंद्रसूरि से जगत में तपा गच्छ की प्रसिद्धि हुई।

मुगलकाल में इस गच्छ में प्रमुख आचार्य विजयदानसूरि, विजयहीरसूरि, विजयसेनसूरि और विजयदेवसूरि हुए।

**विजयदानसूरि :—**

ये आनन्द विमल सूरिजी के पट्टधर थे इनका जन्म संवत 1553 (1496) में अहमदाबाद के जामला नामक गांव में हुआ। 9 वर्ष की उम्र

[1] आँबिल जैनियों की एक तपस्या विशेष का नाम है, इस तपस्या के दिन केवल एक ही वक्त नीरस, घी, दूध दही, गुड़ आदि वस्तुओं से रहित भोजन किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यानि संवत 1562 (सन् 1505) में आनन्दविमलसूरिजी से दीक्षा ग्रहण की। उस समय साधू समाज में बहुत शिथिलाचार प्रवेश कर गया था। जिस समय आनन्दविमलसूरिजी ने विजयदानसूरिजी को अपना पट्टधर घोषित किया तो विजयदानसूरिजी ने सर्वप्रथम साधु समुदाय को जैन साधुओं के नियमानुसार चलने के लिए एवं साधू समाज को संगठित करने के लिए अधिक परिश्रम किया। न केवल साधू समाज अपितु उस समय देश की हालत भी बहुत ही सोचनीय थी। राजा महाराजा आपस में लड़-लड़कर अपनी शक्ति को क्षीण कर रहे थे। उसी का लाभ उठाकर मुगल साम्राज्य भारत में अपनी शक्ति बढ़ाने और पूरे भारत को अपने कब्जे में करने की कोशिश में लगा हुआ था। ऐसी परिस्थिति में जैन मंदिर और जैन पुस्तकों, भण्डारों को भी बहुत क्षति होने का डर था, जिनको सुरक्षित कराने में जैन समाज को भी उन्होंने संगठित किया और उनके संरक्षण की व्यवस्था कराई।

इस तरह सूरिजी इस भू-मण्डल में अनेक जीवों को शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए विचरते रहे। बिहार करते हुए एक समय सूरिजी अजमेरू दुर्ग पहुंचे, तो वहां के "लुंका-मत"[1] नामक कुमति के रागी लोगों ने उन्हें भूतपिशाच वाला मकान ठहरने के लिए दिखाया। सूरिजी ने अपने शिष्यों के साथ उसी में निवास किया। उस मकान में रहने वाले दुष्ट देवों ने अनेक प्रकार के वीभत्स रूपों को धारण करके साधुओं को डराना शुरू किया जब सूरिजी को यह बात पता चली तो एक रात वे निद्रा न लेकर सूरि मंत्र का ध्यान लगाकर बैठ गये उनके सामने देवता लोग आकर अनेक प्रकार की चेष्टायें करने लगे लेकिन सूरिजी अपने ध्यान से किंचित मात्र भी विचलित नहीं हुए। उन देवों की सारी चेष्टायें सूरिजी के सामने व्यर्थ हो गई। जब नगरवासियों को यह विश्वास हुआ कि सूरिजी के प्रभाव से व्यंतरों का सर्वदा के लिए विघ्न दूर हो गया तो वे मुक्त कंठ से सूरिजी की प्रशंसा करने लगे।

इस तरह जैन शासन को उन्नति के शिखर पर छोड़कर वैशाख सुदी बाइस संवत 1622 (सन् 1565) को बडावली (पाटन के पास) गांव में वे स्वर्ग चले गये।

आचार्य विजयदानसूरिजी की समाज को महान देन आचार्य हीरविजयसूरिजी जैसे रत्न को देना है जिन्होंने मुगलकाल में जैनों के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्य प्रजा की रक्षा के लिए महान कार्य किये।

---

1. यह मत जिनप्रतिमा का शत्रु था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. आचार्य हीरविजयसूरि—

हीरविजयसूरिजी का जन्म मगशर सुदी नवमी 1583 (सन् 1526) को पालनपुर के ओसवाल परिवार में हुआ। इनके पिता कुराशाह तथा माता नाथीबाई ने इनका नाम "हीरजी" रखा। 13 वर्ष की उम्र में कार्तिक वदी दूज सम्वत् 1596 (सन् 1539) को पाटन में आपने आचार्य विजयदानसूरि से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम "हीरहर्ष" रखा गया। दीक्षा के बाद सूरिजी के मन में आपको "न्यायशास्त्र" में पारंगत करने की भावना आई, गुरु की आज्ञा से धर्म-सागरजी और राजविमलजी को साथ लेकर "हीरहर्ष" मुनि देवगिरी (दौलताबाद) न्यायशास्त्र का अध्ययन करने गये और न्यायशास्त्र के कठिन से कठिन ग्रन्थों का अध्ययन किया, अध्ययनपूर्ण हो जाने पर जब वापिस गुरु के पास आये तो गुरु ने हीरहर्ष की योग्यता देखकर सम्वत् 1607 (सन् 1550) में नारदपुरी (नाडलाई) मारवाड़ में पण्डित पद दिया और उसी गांव में अगले वर्ष उपाध्याय पद प्रदान किया। पौष सुदी पंचमी सम्वत् 1610 (सन् 1553) को सिरोही (मारवाड़) में आचार्य पद से विभूषित कर इनका नाम हीरविजयसूरि रखा (जैन साधुओं की ऐसी परम्परा है कि आचार्य पदवी मिलने के बाद नाम बदल दिया जाता है)।

अब हीरविजयसूरिजी ने अपने गुरु के साथ पाटन की तरफ बिहार किया। पाटन पहुंचने पर आचार्य विजयदानसूरि ने हीरविजयसूरि को अपना पट्टधर घोषित किया। इस अवसर पर वहां के सूबेदार शेरखान के मन्त्रि भंसाली समरथ ने अतुल धन खर्च किया। सम्वत् 1622 (सन् 1565) में गुरुजी के काल कर जाने से आप गच्छाधिपति बन गये और सारे देश में विचरण करने लगे।

जिस समय बादशाह अकबर ने हीरविजयसूरिजी को अपने दरबार में आमंत्रित किया उस समय वे गुजरात के गंधार प्रान्त में थे। बादशाह का निमंत्रण मिलने पर उन्होंने आस-पास के शहरों के जैन संघ के प्रमुख श्रावकों से परामर्श किया और श्रीसंघ की इच्छानुसार फतेहपुर सीकरी के लिए बिहार किया। विभिन्न स्थानों पर धर्मोपदेश देते हुए उन्हें महाराणा प्रताप का भी निमंत्रण मिला था कि मेवाड़ में पधारकर धर्मोपदेश देने की कृपा करें पत्र के लिए परिशिष्ट नम्बर 1 देखें।

जिस समय सूरिजी बादशाह के दरबार में पहुंचे उस समय उनके साथ सैद्धान्तिक शिरोमणि उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि शतावधानी, श्रीशान्तिचन्द्रगणि, पं. सहजसागरगणि, पं. सिंहविमलगणि, पं. हेमविजयगणि, व्याकरण चूड़ामणि पं. लाभविजयगणि आदि तेरह साधू थे। अपनी विद्वद मंडली के साथ सूरिजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को आते देखकर बादशाह ने विनयपूर्वक सामने जाकर कुशल क्षेम पूछने के साथ ही सूरिजी को नमस्कार किया। सूरिजी ने "धर्मलाभ"[1] देकर राजा को संतुष्ट किया।

बादशाह को उपदेश देकर सूरिजी ने लोककल्याण तथा जीवदया के जो कार्य करवाये उनका विस्तृत विवरण आगे के लिए छोड़कर यहां केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनके लोकोपकारी कार्य केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनके लोकोपकारी कार्य केवल जैनों के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश की प्रजा के हितार्थ थे।

सूरिजी में विनय, विवेक, समभाव और क्षमा जैसे उच्चतम गुणों का भंडार था। गुजरात जैसे परम श्रद्धालु प्रदेश को छोड़ना, अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हुए फतेहपुर सीकरी तक जाना, चार वर्ष तक वहां रहना अकबर जैसे बादशाह को अपना भक्त बनाना और सारे साम्राज्य में छः महीने तक जीव-हिंसा बन्द करवाना उनके जीवन की सार्थकता दर्शाते हैं।

सूरिजी में जैसी गुण ग्राहकता थी वैसी ही लघुता भी थी यद्यपि अकबर ने जीव दया से सम्बन्ध रखने वाले और इसी तरह के जो काम किये थे, उन सबका श्रेय हीरविजयसूरिजी को ही है फिर भी वे हमेशा यही समझते थे कि मैंने जो कुछ किया हैं या करता हूं, यह तो मेरा कर्तव्य है। एक बार एक श्रावक ने अकबर को अभक्ष्य छुड़ाने में उनकी प्रशंसा की तो सूरिजी ने कहा कि "जगत के सब जीवों को सन्मार्ग पर लाना ही तो हमारा धर्म है, हम तो केवल उपदेश देने के अधिकारी है। हजारों को उपदेश देने पर भी लाभ तो बहुत ही कम मनुष्यों को होता है। अकबर ने जो काम किये है इसका कारण तो उसका स्वच्छ अन्तःकरण ही है। श्रेष्ठ कार्य में याचना करने वाले की अपेक्षा दान देने वाले की कीर्ति विशेष होती है मैंने तो मांगकर अपना कर्तव्य पूरा किया और बादशाह ने देकर उदारता दिखाई, कार्य करने की अपेक्षा उदारता दिखाना अधिक श्रेष्ठ हैं।" सूरिजी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि उनमें कितनी लघुता थी, वे निरभिमानी थे।

सूरिजी ने जैसे उपदेशादि बाह्य प्रवृत्तियों से अपने जीवन को सार्थक किया था वैसे ही बाह्य प्रवृत्ति की पूर्ण सहायक-कारण आध्यात्मिक प्रवृत्ति को भी

---

1. जैन साधू जब किसी को आशीर्वाद देते हैं तो यही शब्द "धर्मलाभः" कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे भूले न थे। समय-समय पर एकान्त में बैठकर घन्टों ध्यान किया करते थे। रात्रि के पिछले पहर में (यह समय योगियों के ध्यान के लिए अपूर्व गिना जाता है) उठकर ध्यान तो वे नियमित रूप से लगाया ही करते थे। इस तरह आध्यात्मिक प्रवृत्ति से और उपदेशादि बाह्य प्रवृत्ति दोनों की तरह से उनका जीवन जनता के लिए आशीर्वाद रूप था।

इस तरह दोनों प्रवृत्तियों से जीवन को सार्थक बनाते हुए सूरिजी गुजरात में बिहार कर रहे थे कि अचानक ऊना के सम्वत् 1651 (सन् 1594) के चातुर्मास में वे अस्वस्थ हो गये। इसलिए चातुर्मास के बाद श्रीसंघ ने उन्हें बिहार नहीं करने दिया। श्रीसंघ के आग्रह पर भी किसी तरह की औषधि का सेवन नहीं किया उनका विचार था कि बाह्य उपचार और औषधि की अपेक्षा धर्म रूपी औषधि का ही सेवन करना चाहिये। दिन पर दिन सूरिजी की रुग्णता बढ़ती गई फिर भी सम्वत् 1652 (सन् 1595) में पर्यूषणों[1] में कल्पसूत्र (धार्मिक वांचन) उन्होंने ही वांचा। भादवा सुदी ग्यारस सम्वत् 1652 (सन् 1595) के दिन संध्या समय तक सूरिजी अपने ध्यान में बैठे रहे। अपना अन्त समय निकट जानकर अकस्मात आंखे खोलकर अन्तिम शब्दोच्चारण करते हुए सूरिजी ने कहा—"भाईयों ! अब मैं अपने कार्य में लीन होता हूं। तुमने हिम्मत नहीं हारना। धर्म कार्य करने में वीरता दिखाना। मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूं। मेरी आत्मा, ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय है सच्चिदानन्दमय है, शाश्वत है, मैं शाश्वत सुख का मालिक होऊं मैं आत्मा के सिवाय अन्य सब भावों का त्याग करता हूं। आहार, उपाधि और इस तुच्छ शरीर का भी त्याग करता हूं। इतना कहकर सूरिजी पदमासन में विराजमान होकर माला करने लगे। चार मालायें पूर्ण कर जैसे ही पांचवी माला फेरने को हुए कि माला उनके हाथ से गिर पड़ी, लोगों में शोक छा गया। उसी समय भारत को गुरू विरह रूपी बादलों ने आच्छादित कर लिया।

जिस स्थान पर सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ वहां एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई, कि अगले दिन वहां लोगों ने आम के पेड़ों पर फल देखे। किसी पर मौर के साथ छोटे-छोटे आम थे, किसी पर जाली पड़े हुए आम तो किसी पर पके हुए। कई ऐसे पेड़ भी फलों से भरे हुए थे जिन पर कभी फल आता ही था। भादों के महीने में वृक्षों पर आम, आश्चर्य नहीं तो और क्या है ? निःसंदेह हम सूरिजी के पुण्य प्रताप का फल ही कहेंगे।

---

1. जैन श्वेताम्बर भादवा वदी बारस से भादवा सुदी चौथ तक आठ दिन धार्मिक पर्व के रूप में मानते हैं, जिन्हें पर्यूषण कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादशाह अकबर के पास भी कुछ आम भेजे गये यद्यपि सूरिजी के स्वर्गवास समाचार से बादशाह को इतना दुख पहुंचा था कि उसकी आंखों से आंसू निकल पड़े, लेकिन आम्रफलों को देखकर बादशाह को सूरिजी के पुण्य प्रताप पर बहुत अभिमान हुआ।

जहाँ सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ था वहां उनका स्तूप बनवाने के लिए जैन संघ ने अकबर बादशाह से भूमि मांगी, जिस बगीचे में सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ था बादशाह ने वह बगीचा और उसके आस-पास की 22 बीघा जमीन जैनों को दे दी। बगीचे में दीवकी लाडकीबाई ने एक स्तूप बनाकर उस पर सूरि जी की पादुकायें स्थापित कर दी[1]।

निःसन्देह सूरिजी असाधारण विद्वान थे। अबुलफजल बदायूंनी तथा विन्सेंट स्मिथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्त कंठ से उनका यशोगान किया है। यद्यपि उनके बनाये हुए "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका" और "अन्तरिक्षपार्श्वनाथ स्तव" आदि बहुत ही थोड़े ग्रन्थ उपलब्ध हैं लेकिन उन ग्रन्थों को देखने और उनके किये कार्यों पर दृष्टि डालने से उनकी असाधारण प्रतिभा में सन्देह का स्थान नहीं रह जाता। उस समय के बड़े-बड़े अजैन विद्वानों के साथ वाद-विवाद करने में, समस्त धर्मों का तत्व शोधने में, अकबर जैसे बादशाह पर प्रभाव डालकर सफलता प्राप्त करना असाधारण विद्वान का ही काम हो सकता है। अकबर ने अपनी धर्म सभा के पांच वर्गों में से पहले वर्ग में उन्हीं लोगों को रखा था जो असाधारण विद्वान थे, यही कारण हैं कि सूरिजी भी उसी प्रथम वर्ग के सभासदों में थे[2]।

### 3. आचार्य श्री विजयसेनसूरि-

नाडलाई (मारवाड़) में फागुन सुदी पूनम संवत 1604 (सन् 1547) को कोडिमदे और पिता कूरांशाह के घर उत्तम लक्षणों वाले पुत्र का जन्म हुआ जन्म से ही बालक के मुख पर सूर्य के समान तेज चमकता था। उत्तम लक्षण और चेष्टायें देखकर सामुद्रिक शास्त्री लोग कहने लगे कि "यह बालक इस भूमण्डल में जीवों को मोक्षमार्ग दिखाने वाला एक धर्म गुरु होगा।" पुत्र को उत्तम लक्षणों से विभूषित देखकर माता-पिता ने उसका नाम "जयसिंह रखा। यही जयसिंह आगे चलकर "आचार्य विजयसेनसूरि" के नाम से विख्यात हुए।

---

1. हीरसौभाग्यकाव्य–देवविमलगणिविरचित सर्ग 17, श्लोक 192,95।

2. आइने अकबरी—एच. ब्लॉच मैन द्वारा अनुदित पृ. 608,।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्येष्ठ सुदी ग्यारस सम्वत् 1613 (सन् 1556) में सूरत में माता के साथ विजयदानसूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा का नाम "मुनिजयविमल" रखा गया। विजयदानसूरिजी ने दीक्षा देकर आपको हीरविजयसूरिजी का शिष्य घोषित कर दिया। हीरविजयसूरिजी के पास रहकर आपने न्याय, व्याकरण आदि ग्रन्थों का अभ्यास किया। सम्वत् 1626 (सन् 1569) में खम्भात में आपको पंडित पद दिया गया। खम्भात से गुरु के साथ बिहार कर अहमदाबाद आकर चतुर्मास किया। यहां पर फागुन सुदी सात सम्वत् 1628 (सन् 1571) को उपाध्याय एवं आचार्य पद से विभूषित कर 'आचार्य विजयसेनसूरि" नाम रखा गया। इस अवसर पर मूला सेठ और वीपापारिख ने महोत्सव किया। इसी समय एक ओर अभूतपूर्व बात देखने में आई कि मेघजी नामक एक विद्वान जो कि लुंकामत का अधिकारी था, स्वयं शास्त्र और जिन प्रतिमा को देखकर उसके हृदय में लुंकामत को दूर करने की इच्छा हुई। दोनों सूरीश्वरों के सामने मेघजी ऋषि ने अपने सत्ताइस पंडितों के साथ लुंकामत को त्याग कर सूरीश्वर के सत्योपदेश को ग्रहण कर लिया। आचार्य पदवी के बाद हीरविजयसूरि ने सारी व्यवस्था की देखमाल विजयसेनसूरि को सौंपकर स्वतन्त्र बिहार करने की आज्ञा दे दी। वे लाट में विचरण कर धर्मोपदेश देने लगे। अनेक जगह प्रतिष्ठायें करवाई। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी सम्वत् 1643 (सन् 1586) के दिन गंधार बंदर में "इन्द्रजी" सेठ के घर में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा की प्रत्तिष्ठा करवाई। दूसरी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ वदी ग्यारस के दिन "धनाई" नाम की श्राविका के मन्दिर में करवाई। गन्धार में ही ज्येष्ठ शुक्ला बारस सम्वत् 1645 (सन् 1588) का एक मन्दिर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ तथा महावीर स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई।

गन्धार से बिहार कर अपने गुरू हीरविजयसूरि के पास राधनपुर आये। सम्वत् 1649 (सन् 1592) का चातुर्मास दोनों आचार्यों ने यहीं किया वहीं पर हीरविजयसूरिजी को बादशाह अकबर का पत्र मिला जिसमें विजयसेनसूरि को लाहौर भेजने के लिए लिखा हुआ था।

गुरू की आज्ञानुसार मार्ग सुदी तीज सम्वत् 1649 (सन् 1592) को विजयसेनसूरि ने लाहौर के लिए बिहार कर दिया। मार्ग में पाटण, देलवाड़ा, मन्दिरों के दर्शन करते हुए अपनी जन्म भूमि "नारदपुरी" पधारे यहां से मेडता, अहिमनगर होते हुए लाहौर से छः कोस दूर लुधियाना आये। यहां अबुलफजल का भाई फैजी और अनेक लोग सूरिजी के दर्शनार्थ गये। इसी समय सूरिजी के शिष्य नंदिविजयजी ने सब लोगों के सामने अष्टावधान साधा देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये और जाकर बादशाह से चमत्कार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सराहना की। बादशाह ने नगरवासियों के साथ अपने मंत्रि वर्ग को भेजकर सूरिजी का अतिशय सत्कार किया और ज्येष्ठ सुदी बारस के दिन बड़ी धूम-धाम से सूरिजी का नगर में प्रवेश कराया।

हीरविजयसूरिजी की तरह विजयसेनसूरिजी ने भी बादशाह पर बहुत प्रभाव डाला। जैसे चन्द्र की विद्यमानता में आकाश सुशोभित होता है। वैसे ही विजयसेनसूरि को विद्यमानता में लाहौर शहर देदीप्यमान होता रहा। अकबर से जीवदया के कार्य करवाते हुए सूरिजी महिमनगर पधारे।

संवत् 1652 (सन् 1595) में हीरविजयसूरिजी के स्वर्गवास के बाद श्री तपगच्छ का समस्त कार्य श्रीविजयसेनसूरि के सिर पर आ पड़ा। अब वे तपगच्छ रूपी आकाश में सूर्य के समान भव्य जीवों को उपदेश देते हुए विचरने लगे और दिन पर दिन श्री तपगच्छ की शोभा को बढ़ाने लगे।

संवत 1659 (सन् 1602) का चातुर्मास अहमदाबाद में किया। अहमदाबाद में लोगों ने धर्मोपदेश का अपूर्व लाभ लिया। अहमदाबाद से राधनपुर होते हुए सूरिजी पाटन आये यहां लुंकामत का स्वामी मुनि मेघराज[1] सूरिजी के चरण कमल में आया सूरिजी की देशना से लुंकामत का त्याग कर दिया और श्री तपगच्छ की शीतलछाया में विचरने लगे।

सूरिजी के एक श्रेष्ठ शिष्य नन्दीविजयजी ने फिरंगियों को जो कि दुरात्मा थे अपने कौशल से प्रसन्न कर लिया था जिससे फिरंगी लोग जिन धर्म में भक्ति रखने लगे थे इस समय पुनः फिरंगियों में जैन साधुओं से मिलने की तीव्र इच्छा हुई फिरंगियों के गुरु पादरी ने अपने हाथ से पत्र लिखकर सूरिजी को आमन्त्रित किया, मेघजी के कहने पर फिरंगियों के राजा ने भी एक पत्र लिखा जिससे सूरिजी दीव पधारे। सूरिजी व फिरंगियों के राजा के बीच में हुई धर्म वार्ता से राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आदर के साथ जैन मुनियों को दीव में रहने की सम्मति दी।

जिस प्रकार कस्तूरी की सुगन्ध फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं होती; वह स्वतः ही फैल जाती है। उसी प्रकार सूरिजी के सद कार्यों द्वारा उनकी कीर्ति भी चारों ओर फैल गई, गांव-गांव में कई मंदिरों की प्रतिष्ठायें करवाते हुए और भव्य जीवों को उपदेश देते हुए ज्येष्ठ वदी ग्यारस संवत 1671 (सन् 1714) में खम्बात के पास अकबरपुर में सूरिजी का स्वर्गवास हो गया।

---

1. यह पहिले पहल लुंकामत को त्याग करने वाले मेघ जी ऋषि का शिष्य था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबरपुर में जहां सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ वहां उनका स्तूप बनाने के लिए बादशाह ने 10 बीघा जमीन जैन श्रीसंघ को दे दी वहां खम्बात के निवासी शाहजगसी के पुत्र सोम जी शाह ने सूरिजी का स्तूप बनवाया[1]।

**4—आचार्य श्री विजयदेवसूरिजी—**

पौष वदी तेरस संवत 1634 (सन् 1577) को (गुजरात) में माता रूपा और पिता श्रेष्ठि के घर में एक बालक का जन्म हुआ। जब बालक गर्भ में आया तो माता ने स्वप्न में सिंह देखा। समय पूरा होने पर रोहिणी योग, वृश लग्न जैसे उत्तम नक्षत्र में बालक ने जन्म लिया। बालक का नाम वासकुमार रखा गया। यही बालक आगे चलकर आचार्य विजयदेवसूरि के नाम से विख्यात हुआ। वासकुमार ने खम्भात में संवत 1643 (सन् 1586) में आचार्य विजयसेनसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की और विद्याविजय नाम पाया। संवत 1655 (सन् 1598) में विजयसेनसूरि ने इन्हें अपना पट्टधर घोषित किया।

विजयदेवसूरि ने मालवा, राजपूताना, मेवाड़, दक्षिण, पूर्व देश, पंजाब, काश्मीर आदि प्रदेशों में खूब धर्म प्रभावना की और पूर्व देश के तीर्थों का उद्धार किया। पाटन के सूबेदार को उपदेश देकर श्रीहीरविजयसूरिजी के स्मारक का निर्माण कराया उसके रक्षण के लिए सूबेदार ने 100 बीघा जमीन दी वर्तमान समय में भी यह स्मारक "दादावाड़ी" के नाम से प्रसिद्ध है।

बादशाह अकबर की तरह बादशाह जहांगीर भी अक्सर जैन विद्वानों के साथ "जैन दर्शन" पर वाद-विवाद किया करता था। जब जहांगीर मांडू में था, तब उसने आचार्य विजयदेवसूरि के बारे में सुना तो जैन धर्मोपदेश सुनने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। बादशाह का निमन्त्रण मिला सूरिजी उस समय खम्भात में थे खम्भात से बिहार कर के आश्विन शुक्ला तेरस संवत 1673 (सन् 1616) को मांडू पहुंचे। बादशाह इनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ। सूरिजी ने बादशाह को उपदेश देकर जीव दया के अनेक कार्य करवाये।

---

1. सोमजी शाह ने जो स्तूप बनवाया उसमें का अकबरपुर में कुछ भी नहीं है, लेकिन खम्भात के भोंयरावाडे में शांतिनाथ का मन्दिर हैं। उसके मूल गभारे में—जहां प्रतिमा स्थापित होती है, उस स्थान में—बायें हाथ की तरफ एक पादुका वाला पत्थर हैं, उसके लेख से ज्ञात होता है कि यह वही पादुका है जो सोमजी शाह ने विजयसेनसूरिजी के स्तूप पर स्थापित की थी, शायद काल के प्रभाव से अकबरपुर की स्थिति खराब हो जाने पर यह पादुका वाला पत्थर यहां लाया गया होगा। पत्थर के पूर्ण लेख के लिए देखें परिशिष्ट नं. 2।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादशाह के यहां से विहार कर सूरिजी पाटण होते हुए ईडर आये। ईडर के पास साबली नामक ग्राम है, वहां के श्रावक रत्नसिंह पारख ने वहां जीव-हिंसा की अधिक प्रवृत्ति को देखकर सूरिजी से साबली आने की विनती की। सूरिजी साबली आये वहां के ठाकुर को प्रतिबोधितस्त कर जीव-हिंसा रुकवा दी[1]।

यहां से ईडर, सिरोही होते हुए सूरिजी मारवाड़ पहुंचे। सूरिजी के प्रभाव से मारवाड़ का दुर्भिक्ष नष्ट हो गया, अच्छी वृष्टि हुई जिससे वह शुष्क प्रदेश भी नदी मातृक हो गया। मारवाड़ से मेवाड़ गुजरात, काठियावाड़, आदि होते हुए तैलंग देश में आये यहां के बादशाह ने सूरिजी के उपदेश से गौहत्या का निषेध कर दिया। इसी तरह बीजापुर के बादशाह ने सूरिजी के प्रभाव से बन्दियों को छोड़ दिया।

इस भूतल पर जीव दया के अनेक कार्य करवाते हुए आषाढ़ सुदी ग्यारस संवत 1713 (सन् 1656) में इनका स्वर्गवास हो गया इनके बाद इनके पट्टधर आचार्य विजयप्रभसूरि हुए।

## (ब) खरतरगच्छ के प्रमुख आचार्य

**खरतरगच्छ की उत्पत्ति—**

गुजरात की राजधानी पाटण में राजा दुर्लभसेन की राजसभा में श्री जिनेश्वरसूरीजी पधारे। उनसे जैन साधुओं के आधार सम्बन्धि नियम जानकर राजा ने उन्हें खरतर[2] की पदवी दी। तभी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है। मुगल काल में इस गच्छ के प्रमुख आचार्य श्रीजिनमाणिक्यसूरी, जिनचन्द्रसूरी, जिनसिंह सूरी एवं जिनराजसूरी हुए।

**1. आचार्य श्रीजिनमाणिक्यसूरि—**

सूरिजी का जन्म संवत 1549 (सन् 1492) को कूकड चोपड़ा गोत्रीय परिवार में हुआ। इनके माता-पिता क्रमशः रयणा देवी और राउल देव ने इनका नाम "सारंग" रखा। संवत 1560 (सन् 1503) में जिनहंससूरी के पास दीक्षा

---

1. विजयदेवसूरिन्द्रं वसन्तं तत्र साम्प्रतम्। प्रणम्य रत्नसिंहो यं श्राद्धो विज्ञपयत्यथ

श्रीपूज्यराजसाधस्त श्रीसमाजविराजितः साबलीग्राममागच्छ सर्वजीवहिताय हि जीव-हिंसा प्रभूतात्र जायते पापभूपतः त्वदागमनतस्तस्या निवृत्तिर्भविता चिरम् विजयदेव-महात्म्यम्-श्री श्रीवल्लभपाठक-सर्ग 9 श्लोक 84,85,86

2. प्रखर बुद्धि वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण की। जिनहंसजी ने इनकी योग्यता और विद्वता को देखकर माघ शुक्ला पंचमी संवत 1582 (सन् 1525) को आचार्य पदवी देकर अपने पट्ट पर स्थापित किया। आचार्य पदवी पाकर गुर्जर, पूर्व देश, सिन्ध और मारवाड़ आदि देशों में पर्यटन किया। सिन्धु देश में शाह धनपति कृत महोत्सव से पन्च नदी के पांच पीर आदि को साधन किया। उस समय गच्छ के साधुओं में शिथिलाचार बढ़ा हुआ था। सूरिजी के मन में परिग्रह त्यागकर क्रियोद्धार करने की तीव्र इच्छा हुई। बीकानेर के मन्त्रि बच्छावत संग्रामसिंह को भी गच्छ की ऐसी स्थिति से असन्तोष था। इसलिए उसने गच्छ की रक्षा के लिए सूरिजी को बुलाया। सूरिजी ने भाव से क्रियोद्धार करके देराउर की यात्रार्थ विहार किया। जैसलमेर की ओर जाते समय मार्ग में पानी की कमी के कारण पिपासा परीषह उत्पन्न हुआ। सूर्यास्त के बाद जल मिलने के कारण सूरिजी ने अपना व्रत भंग नहीं किया। और शुभ ध्यान में अनशन द्वारा अषाढ़ शुक्ला पंचमी संवत 1612 (सन् 1555) को स्वर्ग सिधार गये।

**2. आचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि—**

जोधपुर राज्य के खेतासर ग्राम में ओसवाल जाति के रीहडगोत्रीय शाह श्रीवंत अपनी पत्नी श्रिया देवी के साथ निवास करते थे, एक पुन्यवान जीव उत्तम गति से श्रियादेवी के गर्भ में आया। समय पूर्ण होने पर श्रियादेवी ने चैत्र वदी बारस संवत 1595[1] (सन् 1538) को कामदेव के सदृश्य रूप लावण्य वाला, सूर्य के समान तेजस्वी, शुभलक्षण युक्त पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम "सुल्तान कुमार" रखा गया।

सम्वत् 1604 (सन् 1547) को जिनमाणिक्य सूरिजी खेतासार ग्राम में आये। उनके वचनों से सुल्तान कुमार के मन में वैराग्य भावना जागी तो उन्होंने जिनमाणिक्य सूरिजी से दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरु ने दीक्षा नाम "सुमति धीर" रखा। विलक्षण बुद्धि होने से नौ वर्ष की अल्पायु में ही सकल शास्त्रों में पारंगत हो गये। शास्त्रों में निपुण होकर गुरु के साथ सारे देश में विचरण करने लगे।

---

1. पट्टावली संग्रह एवं युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि में सूरिजी का जन्म सम्वत् 1595 बताया गया है तथा उम्र 9 वर्ष यानि दीक्षा सम्वत् 1604 जो उचित है लेकिन खरतरगच्छ इतिहास में इनका जन्म सम्वत् 1598 अंकित है जो उसमें दी गई दीक्षा की उम्र 1 वर्ष से मेल नहीं खाता। अतः इनका जन्म सम्वत् 1595 ही उचित प्रतीत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्वत 1612 (सन् 1555) में गुरू का स्वर्गवास हो जाने से "सुमति धीर" जैसलमेर आये। सूरिजी के साथ 24 शिष्य थे संयोगवश वे किसी को पट्टधर न बना सके। श्रीसंघ ने "सुमतिधीर" को ही इस पद के योग्य समझकर बेगड़गच्छ के आचार्य श्रीपूज्य गुणप्रभसूरिजी के हाथों भादों सुदी नवमी सम्वत 1612 (सन् 1555) को आचार्य पदवी प्रदान कराई। आचार्य पद प्राप्त करने के बाद "सुमतिधीर" जिनचन्द्रसूरि के पद से प्रसिद्ध हुए।

अब सूरिजी ने निरन्तर सर्वत्र बिहार कर जीवों को प्रतिबोध देना प्रारम्भ किया। सम्वत 1624 (सन् 1567) नाडलाई के चतुर्मास की घटना विशेष उल्लेखनीय है कि मुगल सेनानाडलोई के बहुत ही निकट आ गई थी लूटपाट और मारकाट के भय से व्याकुल होकर जनता इधर-उधर भागने लगी। श्रीसंघ ने सूरि महाराज से भी बच निकलने के लिए कहा। सारा नगर खाली हो गया। किन्तु सूरिजी उपाश्रय में ही ध्यान लगाकर बैठे रहे उनके ध्यान बल से मुगल सेना मार्ग भूलकर अन्यत्र चली गई। सब लोग प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने घर आए और सूरिजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा करने लगे।

इस तरह सूरिजी ने हजारों श्रावकों पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाला। जैन दर्शन का सद्बोध देकर धर्म में दृढ़ किया। अनेक स्थानों में जिनालय व जिनबिम्बों की प्रतिष्ठायें, उपधान, व्रत, ग्रहण आदि धार्मिक कृत्य करवाये। परपक्षियों के आक्षेपों का उत्तर देने में और विद्याभिमानी पंडितों को निरुत्तर करने में सूरिजी की प्रतिभा बहुत बढ़ी चढ़ी थी।

इस तरह सूरिजी की कीर्ति सर्वत्र फैलते-फैलते सम्राट अकबर के दरबार तक भी जा पहुंची। सम्राट की इच्छा सूरिजी के दर्शनों की हुई इसलिए उसने सूरिजी को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। अकबर और जहांगीर के दरबार में इन्होंने अच्छी ख्याति पाई। (बादशाहों के दरबार में जाकर सूरिजी ने जो सत्कार्य किये उनका वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा।

66 वर्षों के परिश्रम से जैन शासन का सुदृढ़ प्रचार करके आश्विन वदी दूज सम्वत् 1670 (सन् 1613) को सूरिजी का स्वर्गवास हो गया।

**3. आचार्य श्रीजिनसिंह सूरि—**

खेतासर ग्राम में माघ सुदी पूनम सम्वत् 1615 (सन् 1558) को माता चाम्पल (चतुरंग देवी) और पिता शाहचांपसी के गोत्रीय परिवार में इनका जन्म हुआ। माता पिता ने मानसिंह नाम दिया। सम्वत् 1623 (सन् 1566) में आचार्य जिनचन्द्रसूरि के उपदेशों से प्रभावित होकर 8 वर्ष की उम्र में ही उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पास दीक्षा ग्रहण कर "महिमराज" नाम पाया। निर्मल चरि
होने के कारण सूरिजी ने इन्हें जैसलमेर में माघ शुक्ला पंचमी सम्वत् 1640 (सन् 1583) को वाचक पद से अलंकृत किया। जिनचन्द्रसूरि ने अकबर के दरबार में जाने से पहले महिमराज जी को भेजा था। सम्वत् 1649 (सन् 1592) को लाहौर में इन्हें आचार्य पद देकर "जिनसिंहसूरि" नाम रखा गया। इस अवसर पर अकबर के मन्त्रि कर्मचन्द्र ने करोड़ों रुपया व्यय कर उत्सव मनाया। अनेकों शिलालेखों और ग्रन्थ प्रशस्तियों में इनका नाम मिलता है।

सम्वत् 1670 (सन् 1613) को बेनातट चातुर्मास में गुरू ने इन्हें गच्छ-नायक पद प्रदान किया। गांव-गांव में विचरण करते व जीवों को भी उपदेश देते हुए पौष सुदी तेरस सम्वत् 1674 (सन् 1617) को मेडता में सूरिजी का स्वर्ग-वास हो गया।

**4. आचार्य श्री जिनराजसूरि—**

छत्रयोग, श्रवण नक्षत्र में वैशाख सुदी सप्तमी सम्वत् 1647 (सन् 1590) को बोहित्थरा गोत्रीय परिवार में इनका जन्म हुआ। माता धारलदेवी और पिता शाह धर्मसी ने इनका नाम खेतसी रखा। मार्गशीर्ष शुक्ला तेरस सम्वत् 1656 (सन् 1599) को आचार्य जिनसिंहसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा का नाम "राजसिंह" रखा। आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने बड़ी दीक्षा देकर "राजसमुद्र" नाम रखा उन्होंने ही सम्वत् 1668 (सन् 1611) में आसाउल में उपाध्याय पद दिया। मेडता में आचार्य जिनसिंह सूरि का स्वर्गवास हो जाने के कारण फागुन वदी सप्तमी सम्वत् 1674 (सन् 1617) में इन्हें आचार्य पद देकर गच्छ का नायक बनाया गया इन्होंने अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। मार्गशीर्ष वदी ४ सम्वत् 1686 (सन् 1629) को सूरिजी आगरा में सम्राट शाहजहां से मिले। ये न्याय, सिद्धान्त, और साहित्य के बड़े भारी विद्वान थे। पाटण में आषाढ़ शुक्ला नवमी सम्वत् 1699 (सम्वत् 1642) को इनका स्वर्गवास हो गया।

## (ग) तत्कालीन हिन्दू समाज की स्थिति

संसार परिवर्तनशील है। क्षण-क्षण में परिवर्तन प्रकृति का नियम है। कोई वस्तु ऐसी नहीं जो हर परिस्थिति में विद्यमान रहे। जिस सूर्य को हम सवेरे ही अपनी प्रखर-प्रतापी किरणें फैलाते हुए उदयाचल के सिंहासन पर आरूढ़ देखते हैं, वही सन्ध्या के समय निस्तेज हो, क्रोध से लाल बन अस्ताचल की गुफा में छिपता हुआ दृष्टिगोचर होता है। संसार की परिवर्तनशीलता उदय बाद अस्त और अस्त के बाद उदय, सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख इस तरह से यह संसार अनादि काल से चला आ रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह यदि हम भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें, तो पता चलता है कि हमारा प्राचीन इतिहास कितना गौरवमय और उज्जवल है धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में इस देश का अतीत गौरव सर्वोपरि है। भारत का सामाजिक उत्कर्षण किसी भी प्रकार न्यून नहीं था सामाजिक संगठन बहुत ही सुव्यवस्थित था। आचार-विचारों की पवित्रता आदि भारत की सामाजिक उन्नति का उज्जवल अतीत गौरव इतिहास के पृष्ठों स्वर्णाक्षरों से अंकित है।

किसी के सब दिन एक जैसे नहीं होते। भारत भी इसका शिकार हुआ कालचक्र के प्रबल झकोरों में पारस्परिक फूट आदि दुर्गुण पैदाकर इस देश की उन्नति को दिनों-दिन हीनयान करना प्रारम्भ किया और क्रमशः देश की शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के पश्चात् भारत की जनता निरन्तर विदेशी आक्रमणकारियों से त्रस्त होती रही।

इस तरह की अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए भारत ने सोलहवीं शताब्दी पदार्पण किया। अब हम देखेंगे कि इस समय हिन्दुओं की दशा कैसी थी ?

मुसलमान बादशाहों ने अपनी कठोर राजनीति और असहिष्णु वृत्ति भारतवासी लोगों को असह्य यन्त्रणायें देना प्रारम्भ कर ही दिया था। इस्ल धर्म की एक मात्र वृद्धि के अभिलाषी, अत्याचारी, मलेच्छों ने इस अन्याय प्रवृ को चरम सीमा तक पहुंचा दिया। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के सूबेदार अपनी-अ प्रजा को बहुत सताते थे। इस्लाम धर्म अस्वीकार करने वाले आर्यों पर न प्रकार के कर लगा दिये थे, जिनमें तीर्थ-यात्री कर और वार्षिक "जजिया" ह को बरबाद करने के लिए पग-पग पर अपना भयंकर रूप धारण किये हुए थे। सामान्य अपराधियों के भी हाथ पैर काट डालने की, प्राण ले लेने की व इसी प्रकार की क्रूर सजायें दी जाती थी। जजिया भी कोई असाधारण कर था नहीं। आठवी शताब्दी में मुसलमान बादशाह कासिम ने भारतीय प्रजा यह कर लगाया था पहले तो उसने आर्य प्रजा को इस्लाम स्वीकार करने विवश किया आर्य प्रजा ने अटूट धन दौलत देकर अपने आर्य धर्म की रक्षा फिर हर साल ही वह प्रजा से रुपया वसूल करने लगा। प्रतिवर्ष जो धन होता था वह जजिया था। फरिश्ता ने तो इस कर को "मृत्यु तुल्य दण्ड" की दी थी। ऐसा दण्ड लेकर भी आर्य प्रजा ने अपने धर्म की रक्षा की थी। यही सोलहवीं शताब्दी में भी मौजूद था। इस कर को न देने वाली आर्य प्रजा के प्राण ले लिए जाते थे। यद्यपि ऐसा नहीं था कि कर की रकम बहुत ज्यादा थी, यह कर केवल हिन्दुओं पर लगता था इसलिये उन्हें अपनी स्थिति मुसलमानों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने लगती थी। ऐसे संकटमय समय में अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा करना तो दूर रहा बल्कि जीवन निर्वाह करना भी आर्य प्रजा के लिए दुष्वार हो गया था। अपने-अपने धन, कुटुम्ब और धर्म की रक्षा में ही जब वे समर्थ न हो सके तब पारस्परिक प्रेम, संगठन शिक्षा आदि बातों का ह्रास होना स्वाभाविक है। बाल-विवाह, पर्दे की प्रथा आदि कतिपय घातक कुरीतियाँ भी इसी समय में प्रचलित हुई।

इस संकटावस्था में वास्तविक धार्मिकता मुरझा गई थी। इन कष्टों को सहन करते समय आध्यात्मिक तत्व चिन्तन का उन्हें समय ही नहीं मिलता था। इस समय तो सारा हिन्दू समाज एक स्वर से अपने-अपने इष्ट देवों से यही विनय करता था—"प्रभो इन दुख के दिनों को दूर करो। इस भयंकर अत्याचार को भारत से उठा लो हमारे आर्यत्व की रक्षा करो देश में शान्ति का राज्य स्थापन करो हम अन्तःकरण पूर्वक चाहते हैं कि वीर प्रसू भारत माता की कूख से, फिर से तत्काल ही एक ऐसा महानवीर पुरुष उत्पन्न हो जो देश में शीघ्रता से शान्ति का राज्य स्थापन करे और हमारे ऊपर होने वाले इस जुल्म को जड़ से खोद डालें। ओ भारत माता ! क्या तू ऐसा समय न लावेगी, कि जिसमें हम अपने दुख के आंसू पोंछ डालें।

और फिर जैसा कि प्रकृति का नियम है कि अवनति के पश्चात् उन्नति का होना इसी अटल नियम के अनुसार समय-समय पर विकृत परिस्थितियों को सुधारने के लिए महापुरुषों का जन्म हुआ करता है जैसे देशहित का आधार देश का राजा होता है वैसे ही सत्चरित्र विद्वान महात्मा भी हैं। विद्वान साधु महात्मा जैसे प्रजा हित के लिए उसको अनीति से दूर रखकर सन्मार्ग पर चलाने के प्रयत्न करते हैं। वैसे ही राजाओं को भी निर्भीकता पूर्वक उनके धर्म समझाते हैं। घनिष्ठ सम्बन्धियों और खुशामदियों का जितना प्रभाव राजा पर नहीं होता, उतना प्रभाव शुद्ध चरित्र वाले मुनियों के एक शब्द का होता है।

इतिहास देखने पर हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि राजाओं को प्रतिबोध देने में जो सफल हुए वे धर्म गुरू ही थे जैसे सम्प्रति राजा को प्रतिबोध करने का सम्मान आर्य सुहस्ति ने आमराजा को प्रतिबोध करने का सम्मान, बप्पभट्टी ने, कुमारपाल को प्रतिबोध करने का सम्मान हेमचन्द्राचार्य ने प्राप्त किया। इसी तरह जिस युग की हम बात कर रहे हैं उस युग में भी हिन्दूओं की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए एक सुयोग्य सम्राट के साथ-साथ महात्मा पुरुषों के अवतार की भी आवश्यकता थी।

शास्त्रों में कहा है कि जगत में जब-जब धर्म की कोई विशेष हानि होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगती है तब-तब उसकी परीक्षा करने के लिए अवश्य ही किसी महाज्योति युग प्रधान का अवतार होता है।[1]

सोलहवी शताब्दी में तत्कालीन सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए जैन सन्तों ने जो सहयोग दिया, इस विवेचन को आगे के लिए छोड़कर पहले हम यह देखेंगे कि प्राचीन जैनाचार्यों का सामाजिक योगदान क्या रहा ?

## (द) जैनाचार्यो का सामाजिक योगदान

यदि इतिहास के पृष्ठ पलटकर देखें तो पता चलता है कि समय-समय पर विभिन्न जैनाचार्य राजाओं के पास आये और राजाओं ने भी गुरुओं के समान उन्हें सम्मान दिया। राजाओं को प्रतिबन्ध देकर तत्कालीन सामाजिक दोषों को दूर करवाने में जैनाचार्यो का विशेष योगदान रहा। देश में जीव-हिंसा, त्याग, दया, दान, सत्य और साधुता का प्रचार करने में जैन साधुओं का श्लाघनीय योगदान रहा।

**राजपूत काल—**

राजपूत काल का इतिहास देखने पर पता चलता है कि जैन धर्म कितना प्राचीन है। चावड वंश के संस्थापक वनराज का पालन-पोषण एक जैन सूरी ने किया था ; इससे भी जैन धर्म के प्रचलन की प्राचीन स्थिति विदित होती है।

गुजरात और भारत के इतिहास में सम्राट चौलुक्य कुमारपाल का चरित्र अद्वितीय है जिसे जैन हेमचन्द्राचार्य ने अपनी रचना "महावीर चरित्र" में "चालुक्य वंश" का चन्द्रमा कहा है। कुमारपाल के समय गुजरात का समाज पशु-वध, मांसाहार, मद्यपान, वैश्यागमन तथा लूटपाट के बुरे परिणामों से अभिप्राप्त हो गया था। इस समय राज्य का एक अत्यन्त ही निन्दाजनक नियम था। कि राज्य के अधिकारी बिना उत्तराधिकारी के मृत व्यक्ति के घर की जब सभी सम्पत्ति और वस्तुओं पर अधिकार कर लेते थे तभी सब को अन्तिम संस्कार के लिए जाने देते थे। इस तरह की अनेक बुराइयों से उस समय गुजरात समाज अभिशप्त था।

कुमारपाल प्रतिबोध से पता चलता है कि अपने मन्त्री के परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्र से उपदेश ग्रहण करने लगे थे[2]।

पहले हेमचन्द्र ने पशु-वध, मांसाहार, मद्यपान, वैश्यागमन तथा लूटपाट की बुराइयों को दिखाने वाली कथाओं द्वारा कुमारपाल को उपदेश दिया उन्होंने

---

1. यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लाविर्भवति भारत।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाभ्यहम्।
2. "इय सम्यं धम्म—सरूप—साहगो साहियो अमच्चेणं।
   तो हेमचन्द्र सूरि कुमर नरिंदो न मई निचं।"
   कुमारपाल प्रतिबोध— सोमप्रभाचार्य-पृष्ठ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारपाल को राजाज्ञा, निकालकर राज्य में इनका निषेध करने की प्रेरणा दी। जयसिंह रचित कुमारपाल चरित के पांच से लेकर दस सर्गो में उन परिस्थितियों का वर्णन किया गया है, जिनके कारण कुमारपाल जैन धर्म में दीक्षित और जैन धर्म के प्रसार-प्रचार में प्रवृत्त हो गया। आचार्य हेमचन्द्र के कहने पर उसने सर्वप्रथम अपने राज्य में मांस तथा मदिरा का त्याग किया वैसे तो प्रबन्धगत प्रमाणों से प्रतीत होता हैं कि कुमारपाल जैन धर्मानुयायी होने से पहले मांसाहार तो करता था, लेकिन मद्यपान की तरफ से उसे हमेशा घृणा रही है । अमेरिका जैसे भौतिक संस्कृति के उपासक राष्ट्र ने भी इस बीसवीं सदी में इस उन्मादक मद्यपान को रोकने के लिए राजज्ञा का उपयोग किया है।

कुमारपाल ने हेमचन्द्र से श्राद्ध धर्म स्वीकार कर राज्य में पशु-हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया था रत्नापुरी नगर के शिलालेख से पता चलता है कि विशेष तिथियों में पशु-वध निषेध की आज्ञा थी। यह आज्ञा केवल कागजों तक ही सीमित न थी वरन् इसका इतनी कठोरता से पालन होता था कि "सपादलक्ष के एक व्यापारी ने राक्षस के समान रक्त चूसने वाले एक कीड़े की हत्या कर दी तो उसे पकड़ लिया गया और यूक बिहार के शिलांयास के लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देने के लिए बाध्य होना पड़ा:[1]। इस तरह राज्य परिवार का व्यक्ति आर्थिक दण्ड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राण दण्ड के लिए प्रस्तुत होकर ही निषेधाज्ञा के दिन किसी पशु की हत्या कर सकता था नवरात्रि में बकरियों का वध रोक दिया गया। और पशु-हिंसा रोकने के लिए अपने मंत्रियों को काशी भेजा। हेमचन्द्राचार्य ने अपने "महावीर चरित्र" नामक पुराण ग्रन्थ में भगवान महावीर के मुख से भविष्य कथन रूप में ये शब्द कहे हैं—"भविष्य में कुमारपाल राजा होने वाला हैं, उसकी आज्ञा से सब मनुष्य मृगया का त्याग करेंगे जिस मृगया का पांडु के सदृश्य धर्मिष्ठ राजा भी त्याग न कर सके और न करवा सके। हिंसा का निषेध करने वाले इस राजा के समय में शिकार की बात तो दूर रही खटमल और जूं जैसे जीवों को अन्त्यज जन भी दुख नहीं पहुंचा सकेंगे। इस प्रकार मृगया के विषय में निषेधाज्ञा होने पर मृग आदि पशु निर्भय होकर बाड़े में गायों की तरह चरने लगेंगे। इस प्रकार जलचर प्राणियों, पशुओं और पक्षियों के लिए वह सदा अमारि रखेगा और उसकी ऐसी आज्ञा से आजन्म मांसाहारी भी दुस्वप्न की तरह मांस को भूल जायेंगे[2]।

---

1. जयसिंह रचित कुमारपाल चरित पृष्ठ 588
2. कुमारपाल चरित्र संग्रह—जिनविजयमुनि पृष्ठ 29

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह कुमारपाल की अहिंसक नीति का ही यह परिणाम है कि वर्तमान में सबसे अहिंसक प्रजा गुजरात में ही है।

जैन धर्म की शिक्षा का राजा पर जो सबसे बड़ा प्रभाव दिखाई देता है वह यह कि उसने निःसंतान मरने वालों की सम्पत्ति पर अधिकार करने का राजनियम वापिस ले लिया कीर्ति कौमुदी में इसका वर्णन मिलता है[1]।

कुमारपाल चरित्र संग्रह में भी इसका वर्णन मिलता है कि प्रजा के इस दुख को राजा सहन न कर सके और उन्होंने अपने अधिकारियों से कहा—"निष्पुत्र मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति राज्य ले लेता है, यह अत्यन्त दारूण नियम है, इससे प्रजा बहुत पीड़ित होती है। इसलिए यह नियम बन्द करो, चाहे भले ही मेरे राज्य की उपज में लाख दो लाख तो क्या किन्तु करोड़ दो करोड़ का ही घाटा क्यों न आ जाये। अधिकारियों ने आज्ञा को मस्तक पर चढ़ाया और उसी क्षण सारे राज्य में इस कायदे की क्रूरता दाब दी गई जिससे प्रजा के हर्ष का पार नहीं रहा[2]।

इस तरह राजकोष में प्रतिवर्ष आने वाले करोड़ों रुपयों की परवाह न करके कुमारपाल ने इस प्रथा का निषेध कर दिया।

इस तरह द्यूत की बुराईयों के बारे में कुमारपाल ने हेमचन्द्राचार्य से कई कथायें सुनी थीं स्वयं भी इसके कुपरिणाम देखे थे, अतः द्यूत के दुष्परिणामों से प्रजा को बचाने के लिए द्यूत निषेध की राजाज्ञा निकाली।

इस तरह हेमचन्द्राचार्य के प्रतिबोध द्वारा कुमारपाल पर जो प्रभाव पड़ा उसके सार रूप में हम कह सकते हैं कि कुमारपाल की अमारि घोषणा द्वारा यज्ञों में भी पशु बलि देना बन्द हो गया। लोगों की जीव जाति पर दया बढ़ी। मांस भोजन इतना निषिद्ध हो गया कि सारे हिन्दुस्तान में एक या दूसरे प्रकार से थोड़ा बहुत भी मांस हिन्दू कहलाने वाले उपयोग लाते किन्तु गुजरात में उसकी गन्ध भी लग जाये तो उसी समय स्नान करते। ऐसी वृत्ति उस समय से लोगों की बनी हुई आज तक चली आ रही है। प्राय. गुजरात का सम्पूर्ण उच्च और शिष्ट समाज निरामिष भोजी है। गुजरात का प्रधान किसान वर्ग भी मांस त्यागी है। कुमारपाल के काल में गुजरात श्वेताम्बर जैन धर्म का सबसे बड़ा केन्द्र था। श्रीलक्ष्मी-

---

1. "सुकृतैकृतार्यस्य मृत वित्तनिमुन्यतः।
देवस्येव नृदेवस्य युक्ताभूद मृतार्थिता।"
कीर्ति कौमुदी सर्ग 2 श्लोक 43
2. कुमारपाल चरित्रसंग्रह—जिनविजय मुनि पृष्ठ 17

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हेमचन्द्र सूरि
महाराजा कुमारपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंकर व्यास लिखते हैं—"महर्षि हेमचन्द्र के काल में गुजरात में जैन धर्म की स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ ही न हुई अपितु कुछ समय के लिए यह राजधर्म भी बन गया[1]।

**सल्तनत युग—**

यदि हम सल्तनतकालीन इतिहास पर एक दृष्टि डालें, तो पता चलता है कि तत्कालीन सुल्तानों पर भी जैनाचार्यों ने प्रभाव डाला इन सुल्तानों में मुहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक और अलाउद्दीन खिलजी के नाम प्रमुख हैं, और आचार्यों में जिनप्रभ सूरि, जिनदेवजिसूरि और रत्नेश्वर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिस तरह ईसा की 16 वीं शताब्दी में मुगल सम्राट अकबर के दरबार में जैन जगदगुरु हीरविजयसूरि ने शाही सम्मान प्राप्त किया था उसी तरह जिन-विजयसूरि ने भी 14 वीं शताब्दी में तुगलक सुल्तान मुहम्मदशाह के दरबार में बड़ा गौरव प्राप्त किया था। भारत के मुसलमान बादशाहों के दरबार में जैन धर्म का महत्व बतलाने वाले और उसका महत्व बढ़ाने वाले शायद पहले ये ही आचार्य हुए।

कहा जाता हैं कि सन् 1329 में बादशाह मुहम्मद तुगलक ने अपनी सभा में पूछा कि वर्तमान समय में विशिष्ट पंडित कौन है? जोषी धराधर द्वारा जिनप्रभसूरि का नाम बताये जाने पर बादशाह ने उन्हें सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया। सूरिजी के आने पर बादशाह ने उनसे एकान्त में धार्मिक चर्चायें कीं। बादशाह सूरिजी के तत्व ज्ञान से बहुत प्रभावित हुआ और पूछा कि मेरे लिए कोई सेवा हो तो बतायें उस समय जैन तीर्थों की जो दुर्दशा हो रही थी सूरिजी ने उनकी रक्षा के लिए कहा बादशाह ने उसी समय शत्रुन्जय, गिरनार, फलौधी आदि तीर्थ रक्षा का फरमान लिख दिया[2]।

तुगलकाबाद में राजमहल के आगे भगवान महावीर की प्रतिमा उल्टी रखी हुई थी, सूरिजी के मांगने पर बादशाह ने सभासदों के सामने सूरिजी को प्रतिमा सौंप दी तथा सूरिजी ने उसे श्रावकों को समर्पित कर दिया[3]।

सूरिजी ने विभिन्न तीर्थों का उद्धार कर जैन शासन की प्रभावना की। मथुरा को मुक्त कराया। ब्राह्मणों, गरीबों को दान देकर सन्तुष्ट किया[4]:

बादशाह के दरबार में सूरिजी का विशेष प्रभाव देखकर कुछ पंडितों को सूरिजी से ईर्ष्या होने लगी एक किंवदन्ती है कि राधव नामक एक पंडित ने सूरिजी

1. चौलुक्य कुमारपाल—श्रीलक्ष्मीशंकर व्यास पृष्ठ 216
2. विविध तीर्थकला—जिनप्रभसूरि पृष्ठ 46
3. खरतरगच्छ बृहद गुर्वावलि—श्रीजिनविजयजी पृष्ठ 96
4. खरतरगच्छ बृहद गुर्वावलि—श्रीजिनविजयजी पृष्ठ 95

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को नीचा दिखाने के लिए अपने मन्त्रबल द्वारा बादशाह की ऊंगली से अंगूठी निकालकर सूरिजी के ओघे (रजोहरण) में रख दी। सूरिजी ने अपने मन्त्रबल द्वारा उसे पंडित की पगड़ी में रख दी। जब बादशाह ने अपनी अंगूठी के बारे में पूछा तो पंडित ने कहा कि सूरिजी के ओघे (रजोहरण) में है। सूरिजी ने कहा कि अंगूठी ओघे में न होकर पंडित की पगड़ी में हैं बादशाह के कहने पर जब पंडित ने पगड़ी उतारी तो उसमें अंगूठी निकली। इस घटना का विवरण खरतरगच्छ बृहमी गुर्वावलि[1] और जिनप्रभसूरि अने सुल्तान मुहम्मद[2] में भी मिलता है इस तरह से अपने व्यक्तित्व द्वारा बादशाह के दरबार में सूरिजी ने अपने चमत्कारों द्वारा बादशाह को प्रभावित किया। श्री जिनपाल उपाध्याय ने बादशाह व सूरिजी के बारे में कहा है कि—

"विजयतां जिन सासनमुज्जलं, विजयतां भुवधिपल्लभा वियतां भुवि साहि महम्मदो, विजयंतां, गुरूसूरिजिनप्रभ[3] जिनप्रभसूरिजी के अलावा जिनप्रभ-सूरि अने सुल्तान महम्मद नामक पुस्तक में कई अन्य जैनाचार्यो के नाम मिलते हैं—जिनमें गुणभद्रसूरि, मुनिभद्रसूरि, महेन्द्रसूरि, रत्नेश्वर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं इन्होंने भी अपने-अपने व्यक्तित्व द्वारा तत्कालीन बादशाहों पर प्रभाव डाला।

इस तरह हम कह सकते हैं, कि जैनाचार्यो ने केवल मुगलकाल में ही नहीं अपितु प्राचीनकाल से ही तत्कालीन बादशाहों को प्रतिबोधित कर उस समय में समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर कराने में सहयोग दिया।

---

1. वही पृष्ठ 95
2. जिनप्रभसूरि अने सुल्तान महम्मद पृष्ठ 141, 142
3. खरतरगच्छ बृहद गुर्वावलि पृष्ठ 96

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# द्वितीय अध्याय

## अकबर की धार्मिक नीति

### (अ) धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले तत्व—

15 अक्टूबर, रविवार सन् 1542 को जिस समय हमीदा बेगम ने अमरकोट के हिन्दू राजा राणाप्रसाद के घर अकबर को जन्म दिया, उस समय अकबर के पिता हुमायूं अमरकोट से 20 मील दूर एक तालाब के किनारे डेरा डालकर ठहरा हुआ था। जब तारदीबेगखां ने पुत्र जन्म की बधाई दी तो पुत्र प्राप्ति के आनन्ददायक अवसर पर भी हुमायूं के मुख पर उदासीनता झलकने लगी। जौहर नामक अंगरक्षक ने इसका कारण पूछा ? हुमायूं ने तुरन्त चेहरे पर प्रसन्नता लाते हुए एक मिट्टी के बर्तन में कस्तूरी का चूरा किया और सबको बांटते हुए कहा "मुझे खेद है कि इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है इसलिए मैं पुत्र जन्म की खुशी के प्रसंग में आप लोगों को इस कस्तूरी की खुशबू के सिवाय कुछ भी भेंट नहीं कर सकता हूं। मुझे उम्मीद है कि जिस तरह कस्तूरी की सुगन्ध से यह मण्डल सुवासित हो रहा है वैसे ही मेरे पुत्र की यश रूपी सुगन्ध से यह पृथ्वी सुवासित होगी।"

जिस समय हुमायूं की मृत्यु हुई, अकबर गद्दी पर बैठा, उसकी उम्र सिर्फ तेरह वर्ष की थी। तेरह वर्ष की उम्र क्या होती है ? लेकिन ईश्वर की महिमा देखो कि उसने साम्राज्य की नींव इतनी पक्की की कि पीढ़ियों तक भी वह न हिली यद्यपि वह लिखना-पढ़ना नहीं जानता था, लेकिन अपनी कीर्ति के लेख ऐसी कलम से लिख गया कि कालचक्र उन्हें घिस-घिस कर मिटाता है लेकिन जितना उनको घिसो उतना ही वे चमकते जाते है हो सकता है यदि उसके उत्तराधिकारी भी उसी मार्ग का अनुसरण करते तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

यद्यपि अकबर तेरह वर्ष की उम्र में ही गद्दी पर बैठ गया था, लेकिन अठारह वर्ष की उम्र तक तो शासन बैरामखां के ही हाथों में रहा इसके बाद उसने राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले ली। जब अकबर बीस वर्ष का हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यानि 1562 में, तो प्रजा की असली हालत जानने के लिए उसने फकीरों और साधू सन्तों का सहवास शुरू किया। यह ठीक भी है क्योंकि साधू सन्तों या कहें कि निष्पक्ष-त्यागी, फकीरों के जरिये प्रजा की असली हालत ज्यादा अच्छी तरह मालूम हो सकती है। साधुओं से मिलने में अकबर को एक और फायदा था कि वह अपनी आत्मा की उन्नति के साधनों का भी अन्वेषण करने लगा। बस यहीं से उनकी उदार नीति की शुरूआत होती है।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में जहां धर्म के नाम पर अनेक अमानुषिक अत्याचार हुए वहीं अकबर ने पूर्ववर्ती सुल्तानों की संकीर्ण कट्टर धार्मिक नीति का परित्याग करके सुलह-ए-कुल की नीति अपनाई अपूर्व धार्मिक सहिष्णुता स्थापित की। सभी धर्मावलम्बियों को समान माना तथा उनके साथ निष्पक्ष व्यवहार किया। उसकी धारणा थी कि इस्लाम के सिद्धान्त संकीर्ण, एकांगी और पाषाण के समान निर्जीव नहीं अपितु व्यापक, गतिशील और जाग्रत संस्था के रूप में है जो देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार संशोधित और परिवर्तित किये जा सकते हैं। अकबर के इस व्यापक दृष्टिकोण से मुगल राजसत्ता का स्वरूप ही बदल गया। उसने धर्म, सम्प्रदाय, नस्ल या अन्य किसी आधार पर मनुष्यों में भेद-भाव करना मानवता और नैसर्गिक सत्य धर्म के विरुद्ध समझा। उसने विधि-विधानों को जो या तो साम्प्रदायिक तथा अन्य असहिष्णुता पूर्ण भेद-भावों के आधार थे, अथवा हिन्दू मुस्लिम मतभेदों को समर्थन देते थे, स्थगित कर दिया और हिन्दुओं को भी शासन के उच्च पदों पर नियुक्त किया। जब टोडरमल की पदोन्नति हुई तब मुसलमान अमीरों और पदाधिकारियों ने ईर्ष्या-द्वेष से इस निर्णय का विरोध किया और अकबर से प्रार्थना की कि टोडरमल को उसके पद से पृथक कर दिया जाये इस पर अकबर ने रुष्ट होकर कहा कि "तुम में से प्रत्येक ने अपने निवास गृह में हिन्दुओं को नियुक्त कर रखा है तो फिर मैंने एक हिन्दू को रखने में क्या गल्ती की है[1]।"

यद्यपि प्रारम्भ में तो अकबर इतना उदार और सहिष्णु नहीं था, उसे इस्लाम में अत्यधिक आस्था थी किन्तु विभिन्न परिस्थितियों और घटनाओं से उसकी धार्मिक नीति, विचार और दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। अब हम उन परिस्थितिओं का वर्णन करेंगे जिन्होंने अकबर की धार्मिक नीति को प्रभावित किया है—

---

1. अलबदायूंनी—डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृ. 65

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**1. तत्कालीन अशांति के निवारण के लिए हिन्दुओं के सहयोग की जरूरत—**

जब अकबर का राज्यारोहण हुआ तब सारा देश विभिन्न स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। काबुल का क्षेत्र उसके सौतेले भाई मिर्जा हाकिम के नेतृत्व में लगभग स्वतन्त्र हो चुका था। बदख्शों में अकबर का चचेरा भाई सुलेमान मिर्जा स्वतन्त्र शासक था। उम्र में बड़ा होने के कारण वह स्वयं को तैमूरी राज्य का दावेदार समझता था। कन्धार सामरिक दृष्टि के महत्व का होने के कारण फारस के राजा की दृष्टि उस पर लगी हुई थी। सुलेमान मिर्जा ने काबुल आकर हकीम मिर्जा से मिलकर अकबर के विरुद्ध षड़यंत्र किया। हकीम मिर्जा का जो संरक्षक था, मुनीम खां वह अकबर के संरक्षक और प्रधानमन्त्री बैरामखां से वैमनस्य रखता था अकबर का एक प्रमुख सरदार शाह अबुलमाली खुल्लम-खुल्ला उसका विरोध कर रहा था। अकबर का प्रसिद्ध और उच्च पदाधिकारी तारदीबेग भी अकबर के संरक्षक बैरामखां से शत्रुता रखता था। इस प्रकार सभी अमीर और स्वयं अकबर के प्रतिद्वन्दी ही उससे विश्वासघात कर रहे थे।

जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा उस समय उसकी आयु केवल तेरह वर्ष की थी इतनी छोटी अवस्था में उसके लिए सम्पूर्ण शासन भार को सम्भाल सकना असम्भव था। इसलिए उसे स्वामिभक्त संरक्षक की जरूरत थी। संरक्षक पद के चार दावेदार थे—मुनीम खां, शाह अबुलमाली, बैरामखां और तारदीबेग। इन चारों में से जब बैरामखां को अकबर का संरक्षक नियुक्त कर दिया तो अन्य तीनों बैरामखां से कटुता और वैमनस्य रखने लगे।

अकबर के तीन अफगान प्रतिद्वन्दी थे—सिकन्दर सूर, मुहम्मद आदिल और इब्राहीम सूर। ये तीनों दिल्ली सिंहासन के आकांक्षी थे।

एक बात और भी थी कि भारत में अभी तक मुगलों को विदेशी समझकर हीनता तथा घृणा से देखा जाता था। अकबर के पूर्वज तैमूर की लूटमार, विध्वंसकारी कार्य और नृशंस हत्याओं के कारण भारतीयों के दिलों में मुगलों के प्रति स्वाभाविक घृणा पैदा हो गई थी। बाबर और हुमायू ने भी कोई ऐसे लोकोपयोगी कार्य नहीं किये जिससे जनता का सौहार्द्र उन्हें मिलता।

गोड़वाना स्वतन्त्र राज्य था। गुजरात में मुसलमान सुल्तान मुजफ्फरशाह राज्य कर रहा था और मालवा में मुजात खां का उत्तराधिकारी बाजबहादुर स्वतन्त्र शासक था।

इस प्रकार सारा देश स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित था "स्मिथ का कहना जब अकबर कलानौर में तख्त पर बैठा तो यह नहीं कहा जा सकता था कि के पास कोई राज्य था। बैरामखां के नेतृत्व में जो छोटी सी सेना थी, उसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ डगमगाता हुआ साअधिकार पंजाब के कुछ जिलों पर था और वह सेना भी ऐसी नहीं थी जिस पर पूरा विश्वास किया जा सके। अकबर को वास्तव में सम्राट बनने के लिए यह सिद्ध करना था कि वह दूसरे उम्मीदवारों की अपेक्षा अधिक योग्य है और उसको कम से कम अपने पिता का खोया हुआ राज्य तो पुनः प्राप्त करना ही था[1]।

आगे देश की आर्थिक स्थिति के बारे में स्मिथ ने लिखा है कि "भारतीय संकट की सबसे दुखद स्थिति एक लम्बी सूची के अनुसार भारतीय अकालों की है यह संकट दो वर्षों तक अर्थात् 1555 और 1556 में मुख्य रूप से और दिल्ली क्षेत्रों में बना रहा जहां पर सेनायें जमा की गई, वे बरबादी करने में लगी रहीं[2]

चतुर्दिक खतरों से घिरा हुआ यह चित्र था अकबर के राज्यारोहण के समय का। ऐसे समय में अकबर का भारत में टिक सकना कठिन प्रतीत होता था। अतः ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक था कि वह सभी जातियों को अपने पक्ष में करने के लिए उनके प्रति समान व्यवहार, सहिष्णुता व उदारता की धार्मिक नीति अपनाये।

**2. साम्राज्य को मजबूत बनाने के लिए सभी जातियों का सहयोग आवश्यक—**

अकबर इस बारीकी को अच्छी तरह समझ गया था कि भारत हिन्दुओं का घर है क्योंकि इतिहास ने यह तथ्य प्रमाणित कर दिया था कि सुल्तानों में वे ही लोग अधिक सफल हुए जिन्होंने यहाँ की सभी जातियों का सहयोग, समर्थन और सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया इसके अलावा अकबर का स्वय का विचार था कि "मुझे इस देश में ईश्वर ने बादशाह बनाकर भेजा है। यदि केवल विजय प्राप्त करना हो तब तो यह होगा कि देश को तलवार के जोर से अपने अधीन कर लिया और देशवासियों को दबाकर उजाड़ डाला जाये, किन्तु जब मैं इसी घर में रहने लगूं तब यह सम्भव नहीं है कि सारे लाभ और सुख तो मैं और मेरे अमीर भोगें और इस देश के निवासी दुर्दशा सहें और फिर भी मैं आराम से रह सकूं। देशवासियों को बिल्कुल नष्ट और नाम शेष कर देना और भी अधिक कठिन है[3]।

अपने विचारों से अकबर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस्लाम देश का राष्ट्रीय

---

1. अकबर द ग्रेट मुगल स्मिथ पृ. 31
2. वही पृ. 37
3. अकबरी दरबार—हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा पहला भाग पृ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म होने के अनुपयुक्त है क्योंकि मुस्लिम राज्य की बहुसंख्यक जनता हिन्दू है। उनका धर्म उत्कृष्ट है, अतः उसका विनाश नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हिन्दुओं को शत्रु बनाकर न तो उनको नष्ट किया जा सकता था और न ही सुदृढ़ साम्राज्य का निर्माण सम्भव था। वह ऐसा साम्राज्य स्थापित करना चाहता था जो सभी जातियों के सहयोग तथा सहायता पर शासितों की सुभेच्छा व सद्भावना पर आश्रित हों, जिसमें किसी जाति धर्म व रंग का भेद-भाव न हो, जिसमें सभी जातियों को समान रूप से अधिकार प्राप्त हों तथा समान सुरक्षा, न्याय और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यही कारण था कि जब उसने देश का शासन अपने हाथ में लिया, तब ऐसा ढंग निकाला जिससे साधारण भारतवासी यह न समझे कि विजातीय तुर्क और विधर्मी मुसलमान कहीं से आकर हमारा शासक बन गया है इसलिए देश के लाभ और हित पर उसने किसी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया। सभी जातियों के सहयोग से उसका साम्राज्य एक ऐसी नदी बन गया जिसका किनारा हर जगह से घाट था।

इस प्रकार राजनैतिक कारणों से प्रेरित होकर अकबर ने तलवार की नोंक पर राज्य स्थापित करने और उसे चलाने तथा इस्लाम को राज्य धर्म बनाने की भावना त्याग दी तथा सभी जातियों के प्रति समान व्यवहार तथा धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई।

**3. अकबर के पूर्वजों के उदार धार्मिक विचार —**

यद्यपि अकबर भारत में एक विदेशी था जैसा कि स्मिथ ने भी लिखा है कि "अकबर भारत में एक विदेशी था उसकी नसों में एक बूंद खून भी भारतीय नहीं था"[1]। फिर भी वह धार्मिक मामलों में उदार था, इसका बहुत कुछ श्रेय उसके पूर्वजों की उदार धार्मिक विचारधारा को दिया जा सकता है उसके शरीर में तुर्क, मंगोल और ईरानी रक्त था। मातृ पक्ष की ओर से अकबर चंगेज खां के वंश से सम्बन्धित था, यद्यपि चंगेज खाँ बौद्ध धर्म को मानता था, परन्तु उसे अपनी प्रजा के विभिन्न धार्मिक कृत्यों में सम्मलित होने में संकोच नहीं होता था। चंगेज और उसके पूर्वज परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको बदल लेते थे। पितृ पक्ष की ओर से अकबर तैमूर के पक्ष से सम्बन्धित था और तैमूर चंगेजखां का भी सम्बन्धित था। तैमूर भी कभी सुन्नी तो कभी शिया हो जाता करता था। अकबर का पितामह बाबर स्वयं तैमूर वंश का था। बाबर की माता चंगेजवंश के मंगोल शासक युनस की पुत्री थी। बाबर धर्मनिष्ठ और ईश्वर में पक्की आस्था रखने वाला व्यक्ति था यद्यपि वह सुन्नी था अकबर का पिता हुमायूं कट्टर धर्मांध

---

1. अकबर द ग्रेट मुगल्-स्मिथ-पृष्ठ 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं था, उसने परिस्थिति वश फारस में शिया धर्म ग्रहण कर लिया था। हुमायूं की पत्नी हमीदाबानू बेगम जो कि फारस के शिया शेख अली अकबर जामी की पुत्री थी, हुमायूं के समान वह भी संकीर्ण विचारों वाली नहीं थी।

इस तरह अकबर के पूर्वज राजनैतिक आवश्यकताओं के कारण और अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए धार्मिक मामलों में उदार हो जाते थे। अतः वंश परम्परा से अकबर में धार्मिक कट्टरता आने के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था।

**4. अकबर के संरक्षक तथा शिक्षकों का उदार दृष्टिकोण—**

अकबर का संरक्षक और प्रधान परामर्शदाता बैरामखां विद्वता और काव्य के गुणों से विभूषित था। लेखकों और विद्वानों का वह आश्रयदाता था, शियामत को मानने वाला था। बदायूंनी ने उसके बारे में लिखा है कि "बुद्धिमत्ता, उदारता, निष्कपटता, स्वभाव की अच्छाई, अधीनता और नम्रता में वह सबसे आगे था। वह दरवेशों का मित्र था और स्वयं बहुत धार्मिक और नेक इरादों का मनुष्य था[1]। अकबर पर अपने संरक्षक के उदार विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा। बैरामखां ने ही अकबर की शिक्षा के लिए सुयोग्य, उदार विचार वाले सुसंस्कृत विद्वान अब्दुल लतीफ को नियुक्त किया। अब्दुल लतीफ अपने धार्मिक मामलों में इतना उदार था कि अपनी जन्म भूमि फारस में लोग उसे सुन्नी कहते थे और उत्तरी भारत में अधिकांश सुन्नी उसे शिया कहते थे। इतना महान होते हुए भी यद्यपि वह अकबर को पढ़ाने में असमर्थ रहा किन्तु उसने अकबर को जो सुलह-ए-कुल का पाठ पढ़ाया उसे अकबर आजीवन नहीं भूला। सुलह-ए-कुल अर्थात् सर्वजनित शान्ति के पाठ से अकबर ने समझ लिया था कि यदि साम्राज्य में शांति बनाये रखनी है तो धार्मिक विचारों को उदार बनाना होगा, धार्मिक भेद-भावों को मिटाना होगा और हिन्दुओं को भी मुसलमानों के समान साम्राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त करना होगा।

**5. राजपूत कन्याओं से विवाह और अकबर पर उनका प्रभाव—**

राजपूतों के प्रति अकबर का व्यवहार किसी अविचारशील भावना का परिणाम नहीं था और न ही राजपूतों की धीरता, वीरता, स्वदेश भक्ति और उदारता के प्रति सम्मान का ही परिणाम था यह व्यवहार तो एक सुनिर्धारित नीति का परिणाम था और यह नीति स्वलाभ, न्यायनीति के सिद्धान्तों पर आधारित थी। आरम्भ में ही अकबर ने यह अनुभव कर लिया था कि उसके मुसलमान अनुयायी

---

1. अलबदायूंनी अनुदित डब्ल्यू. एच. लॉ. भाग 2 पृष्ठ 265

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा कर्मचारी जो विदेशी भाड़े के टट्टू होने के कारण अपनी स्वार्थ सिद्धि से ही मुख्यतः प्रेरित होते थे, उन पर पूरी तरह से भरोसा नहीं किया जा सकता। उसे यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि यदि उसे भारत वर्ष में अपने राज्याधिकार को सुरक्षित करना है तो उसे यहीं के प्रमुख-प्रमुख राजनैतिक तत्वों का सहयोग व समर्थन प्राप्त करना आवश्यक है। इस तरह अपनी दूरदर्शिता से अकबर ने उस तथ्य को हृदयंगम कर लिया था जिसे समझने में उसके पिता और पितामह ने भूल की थी।

इस नीति का अनुसरण करते हुए अकबर ने राजपूत राजकन्याओं से विवाह किये। जनवरी 1562 में अकबर फतेहपुर सीकरी से अजमेर के ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की मजार की यात्रा के लिए गया यात्रा के बाद जब वह लौटा तो सांभर में रुका यहां अजमेर के राजा भारमल (बिहारमल) ने अपनी सबसे बड़ी पुत्री हरकूबाई का विवाह अकबर से कर दिया"[1] भारमल की देखा-देखी बीकानेर जैसलमेर, मारवाड़ तथा डूंगरपुर के राजपूत राज्यों ने भी अकबर से विवाह सम्बन्ध करके अपनी-अपनी राजकन्याओं की डोलियां मुगल रनवास में में भेजी।

अकबर ने इन राजपूत रानियों को हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया। उसने राजमहल में हिन्दू रानियों और उनकी सह-चरियों को उनके हिन्दू धर्म के अनुसार पूजा पाठ करने, मनन चिन्तन करने और धार्मिक संस्कारों को मानने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। अकबर की प्रमुख हिन्दू रानी, हरकूबाई के लिए मुगल हरम में तुलसी का पौधा लगाया गया था। इन रानियों के प्रभाव से अकबर सूर्य की उपासना करता था। और कभी-कभी तिलक भी लगाता था। इस प्रकार राजपूत कन्याओं से विवाह करने से एक ओर तो अकबर को साम्राज्य में हिन्दुओं का सहयोग मिला तथा दूसरी ओर इन राजकन्याओं ने अकबर के धार्मिक विचारों को प्रभावित किया।

**6. अकबर का स्वयं उदार दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक अनुभव—**

अकबर को अपने पूर्वजों से तो उदार विचार मिले ही थे, इसके अलावा उसका स्वयं का दृष्टिकोण भी उदार था उसके उदार विचारों के कुछ कथन आइने अकबरी के "द सेइंग ऑफ हिज़ मेजेस्टी" में इस प्रकार हैं—

"वह जिसका कोई स्वरूप नहीं है, जिसे सोते अथवा जागते देखा नहीं जा सकता, किन्तु कल्पना की शक्ति के द्वारा प्रत्यक्ष किया जा सकता है ईश्वर के

---

1. अकबर द ग्रेट स्मिथ-पृष्ठ 57 पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षात् दर्शन वास्तव में इस भावना द्वारा ही हो सकते हैं। बिन्दू अर्थात् सत्यैता के वर्णन करने की कोई जरूरत नहीं है जैसे कि यह असम्भव है कि प्रकृति खाली होती है। ईश्वर तो सर्वव्यापी होता है।" प्रत्येक व्यक्ति के साथ अच्छाई बरतना मेरा कर्तव्य है चाहे वे भगवान को मानें या न मानें। यदि नहीं मानते हैं तो वे मूर्ख होते हैं और मेरी दया के पात्र होते हैं[1]।

"Th at which is without from cannot be seen whether is sleeping or waking, but it is apprehensible by force of imagination. To behold God in vision is, in fact to be understood in the sense."

There is no need to discuss the point that a vacuum in nature is impossible. God is omnipresent. It is my duty to be in good understanding with all men. If they walk in the way of God's will interference with them would be in itself reprehensible and otherwise, they are under the malady of ignorance and deserve my Compassion."

अकबर के हृदय में यह भाव अंकुरित हो गया था कि सभी वर्गों के धर्मों के लोगों की निःस्वार्थ सेवा से बढ़कर ईश्वर को प्रसन्न करने का कोई अन्य मार्ग नहीं है। उसकी दृढ़ धारणा थी कि सच्चा धर्म वही है, जिसमें वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और रंग रूप का भेद-भाव नहीं हो उसका विश्वास था कि ईमानदारी और सच्चाई से अपने धर्म के सिद्धान्तों पर चलने वाला व्यक्ति किसी भी धर्म का मानने वाला क्यों न हो मुक्ति प्राप्त करता है। इसलिए अपने सैनिक अभियानों और युद्धों के दौरान भी अन्य मुस्लिम आक्रमणकारियों के समान मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा फोड़ा नहीं यहां तक कि हारे हुए राजाओं के साथ भी उदारता का व्यवहार किया।

इस बीच अकबर को दो एक आत्यात्मिक अनुभव हुए जिन्होंने उसे और भी अधिक उदार बना दिया। "मार्च 1578 में एक रात्रि को लाहौर के पास आखेट यात्रा से ध्यान मग्न अवस्था में अपने पड़ाव की ओर भूमि पर गिरा। इसको ईश्वर सन्देश मानकर वह स्वयं भक्ति में साष्टांग पड़ गया।" इस महत्वपूर्ण आध्यात्मिक जागृति से अकबर धर्म में सहिष्णु और असाम्प्रदायिक हो गया।

---

1. आइने अकबरी एच. एस. जैरेट द्वारा अनुदित भाग 3 पृष्ठ 425, 26, 30, 31.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य स्थान पर भी अबुलफजल ने लिखा है कि एक दैवी आनन्द अकबर शरीर में व्याप्त हो गया और परमात्मा के साक्षात्कार की अनुमति से किरण फूटी। अकबर का ईश्वर से प्रत्यक्ष सम्पर्क हो गया और उसे एक नवीन आध्यात्मिक अनुभव हुआ।

**भक्ति आन्दोलन और सूफी विचार धाराओं का अकबर पर प्रभाव—**

अकबर के विचारों और धार्मिक नीति पर तत्कालीन भक्ति आन्दोलन, विभिन्न सन्तों, साधुओं, फकीरों और सूफियों का विचार धाराओं का प्रभाव पड़ा हिन्दू सन्तों, भक्तों, तथा साधुओं और सूफी फकीरों तथा शेखों ने धर्म के बाह्य आडम्बर को व्यर्थ बताया उन्होंने धार्मिक प्रथाओं और कर्मकाण्ड का खण्डन किया। जीवन और चरित्र की पवित्रता तथा ईश्वर की सत्ता पर बल दिया। अकबर की राज सभा में भी सूफी विद्वान थे। जब अकबर सूफी शेख मुबारक और उसके दो प्रभावशाली पुत्र फैजी और अबुलफजल के सम्पर्क में आया तब कट्टरता और धर्मान्धता से उन्मुक्त संसार उसके सामने आया। वह अपने धार्मिक विचारों में तो उदार था ही साथ ही साथ अन्य धर्मों के धार्मिक विचारों, विश्वासों और रीति-रिवाजों के प्रति भी सहानुभूति रखता था। फैजी स्वतन्त्र विचारों वाला प्रतिभाशाली विद्वान था इसलिए मुगल दरबार में वह धर्मान्ध कट्टर मुल्लाओं का विरोधी था। अबुलफजल भी मध्य युग की धर्मान्धता संकीर्णता और साम्प्रदायिकता से ऊंचा उठा हुआ था। जब अकबर की उपस्थिति में इबादतखानें में भिन्न-भिन्न धर्मों की गोष्ठियां और वाद-विवाद होते थे तो अबुलफजल इनमें सक्रिय भाग लेता था। फैजी और अबुलफजल इस्लामी शास्त्रों के अपने उद्धरणों और तुर्कों से धर्मान्ध मुल्लाओं के तथ्यों और कथनों को काट देते थे और बादशाह को पृथ्वी पर खुदा का सायध बताकर मुल्लाओं के हथियारों को कुंठित कर देते थे। सूफी सिद्धान्तों ने अकबर के मस्तिष्क को उदार विचारों से भर दिया वे अकबर को इस्लाम धर्म की संकीर्णता से दूर ले गये और उसको विवश कर दिया कि वह पवित्र वास्तविकता की खोज करें।

**अकबर की सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति—**

अकबर धर्मनिष्ठ और चिन्तनशील बादशाह था वह सत्य को खोजने और पाने का इच्छुक था। बदायूंनी ने लिखा है कि "अपनी पूर्व की सफलता पर धन्यवाद की भावना से या नम्र भावना से वह कई प्रातः कालों तक अकेला ही बैठा तथा मनन करता रहता है। प्राचीन इमारत के एक विशाल चौड़े पत्थर पर, जो कि निर्जन स्थान के पास पड़ा हुआ था, उस पर वह अपने सीने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से नीचे तक सिर झुकाकर उषा काल के सुख को प्राप्त करने के लिए बैठा रहता था[1]।

अकबर ने धर्म के क्षेत्र में बहुरूपता का अनुभव किया और विभिन्न धर्मों में सत्य को पहचानने का प्रयत्न किया। जब कभी उसे समय मिलता वह वेष बदलकर योगियों, सन्तों व सन्यासियों के पास बैठकर सभी धर्मों के सत्य को जानने का प्रयास करता था। उसके हृदय में बार-बार यह सवाल उठा करता था कि जिस धर्म के पीछे लोगों में इतना आन्दोलन हो रहा है वह धर्म क्या चीज है ? और उसका वास्तविक तत्व क्या है ? वह जीवन और मृत्यु के गूढ़ रहस्यों को भी जानने का प्रयास करता था और जानना चाहता था कि ईश्वर और मनुष्य का क्या सम्बन्ध है और इस विषय के समस्त प्रश्न क्या-क्या हैं ? वह कहा करता था कि "दर्शनशास्त्री का मुझ पर जादू का सा असर होता है कि अन्य सब बातों को छोड़कर मैं इस विचार की ओर झुक जाता हूँ चाहे मुझे आवश्यक कामों की उपेक्षा करनी पड़े"[2]।

अकबर का विचारशील मन कभी भी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं था कि केवल इस्लाम धर्म ही सच्चा धर्म है उसकी जिज्ञासु और सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति, गहन आध्यात्मिक चिन्तन मनन तथा नवीन विचार धाराओं ने उसे इस निष्कर्ष पर ला दिया कि प्रेम, उदारता, दया व सहिष्णुता के सिद्धान्त ही सत्य धर्म के तत्व हैं। अबुलफजल ने भी लिखा है कि जीवन भर उसकी खोजबीन का यह परिणाम हुआ कि वह विश्वास करने लग था कि सभी धर्मों में समझदार लोग होते हैं और वे स्वतन्त्र विचारक भी होते हैं जब सत्य सभी धर्मों में है तो

---

1. From a feeling of thankfulness for his past success he would sit many a morning alone in prayer and meditation, on a large flat stone of an old building which lay near the place in a lonely spot, with his head bent over his chest and gathering the bliss of early hours of down.

---

1. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 203

---

2. Discourses an philosophy have such a charm for me that they distract me from all else, and If forcibly restrain myself from listening to them, lost the necessary duties of the hour should be neglected.

---

2. आइन-ए-अकबरी एच. एस. जैरेट द्वारा अनुदित भाग 3 पृष्ठ 433

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है समझना भूल है कि सच्चाई सिर्फ इस्लाम धर्म तक है जबकि इस्लाम धर्म अपेक्षाकृत नवीन है जिसकी आयु केवल हजार वर्ष की ही होगी।

अतः अकबर को विश्वास हो गया कि विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों से भरे हुए उसके विशाल साम्राज्य में प्रेम, उदारता व सहिष्णुता के सिद्धान्त ही शान्ति ला सकते हैं।

**अकबर की राजनैतिक महत्वाकांक्षाएं —**

जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा उस समय सारा राज्य असंगठित था। उसके पास कोई स्थायी सेना भी नहीं थी। अकबर की महत्वकांक्षा एक सुसंगठित और सुव्यवस्थित स्थाई राज्य स्थापित करने की थी। अबुलफजल के अनुसार अकबर की विजय नीति का उद्देश्य स्थानीय शासकों के निरंकुश शासन से पीड़ित प्रजा को सुख शान्ति और सुरक्षा प्रदान करना था। प्राचीन हिन्दू आदर्शों से प्रेरित होकर अकबर भी सम्पूर्ण देश को राजनैतिक दृष्टि से एक सूत्र में बांधने और प्रजाजन को सुख शान्ति तथा सुरक्षा प्रदान करने की ओर प्रयत्नशील हुआ। इसके लिए उसने अनुभव कर लिया था कि जब तक विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और वर्गों के लोगों को एक सूत्र में नहीं बांधा जायेगा, तब तक उसका राज्य पक्का और स्थायी नहीं हो सकेगा। उसे राजपूतों व अन्य हिन्दुओं के सहयोग की आवश्यकता थी। इसलिए उसने राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। सेना और शासन विभाग के बड़े-बड़े पद तुर्कों के समान ही हिन्दुओं को भी मिलने लगे दरबार में हिन्दू-मुसलमान सब बराबर-बराबर दिखाई देने लगे"[1]।

अतएव अकबर को राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ऐसी उदारतापूर्ण, गुण ग्राहक, सहिष्णु नीति अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा जिससे किसी धर्म या सम्प्रदाय को चोट न पहुंचे।

**10. इबादतखाने में इस्लाम धर्म के कट्टर नेताओं और उलमाओं के पतित चरित्र का नग्न प्रदर्शन और अकबर पर उनका प्रभाव—**

सन् 1575 में अकबर ने फतेहपुर सीकरी में इमारत बनवाई और उसका नाम "इबादतखाना" अथवा "पूजा घर" रखा। मुहम्मद हुसैन का कहना है कि यह वास्तव में वही कोठरी थी। जिसमें शेख सलीम चिश्ती के पुराने शिष्य और भक्त शेख अब्दुला नियाजी सरहिन्दी किसी समय एकान्तवास किया करते थे

---

1. अकबरी दरबार हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा का पहला भाग पृष्ठ 120

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके चारों ओर बड़ी-बड़ी इमारतें बनाकर उसे बढ़ाया गया। प्रत्येक जुमा (शुक्रवार) की नमाज के उपरान्त शेख सलीम चिश्ती की खानकाह से आकर इसी नई खानकाह में दरबार खास होता था।

बदायूंनी लिखता है कि "उसने (अकबर) सन् 1575 में फतेहपुर सीकरी में निर्मित इबादतखाने में इस्लाम के प्रसिद्ध विद्वानों, शेखों, मौलवियों, मुफ्तियों आदि को धार्मिक विचार और वाद-विवाद के लिए आमन्त्रित किया"[2]।

बहुत बड़े-बड़े विद्वान मौलवी आदि तथा कुछ थोड़े से चुने हुए मुसाहब वहां रहते थे। उनमें मखदूम-उल-मुल्क, अब्दुन्नबी, काजी याकूब, मुल्ला, बदायूंनी, हाजी इब्राहीम, शेख मुबारक, अबुलफजल, काजी जलालुद्दीन आदि प्रमुख थे।

इस इबादतखाने में ईश्वर और धर्म सम्बन्धित बातें होती थी किन्तु विद्वानों की मण्डली भी कुछ अजीब हुआ करती है। वहां धार्मिक वाद-विवाद तो पीछे होंगे पहले बैठने के सम्बन्ध में ही झगड़े होने लगे कि अमुक मुझसे ऊपर क्यों बैठा है और मैं उससे नीचे क्यों बैठाया गया? बदायूंनी लिखता है कि इस सम्बन्ध में यह नियम बना कि "अमीर लोग पूर्व की ओर, सैयद लोग पश्चिम की ओर, उलेमा दक्षिण की ओर तथा शेख (त्यागी व फकीर) आदि उत्तर की ओर बैठें"[3]।

प्रत्येक शुक्रवार की रात को बादशाह इस सभा में स्वयं जाता था वह वहां के सभासदों से वार्तालाप करता था और नई-नई बातों से अपना ज्ञान-भंडार बढ़ाता था। पर बड़े दुख की बात है कि जब मस्जिदों के भूखों को बढ़िया-बढ़िया भोजन मिलने लगे और उनके हौंसले बढ़कर उनकी इज्जत होने लगी तब उनकी आंखों पर चर्बी छा गई सब आपस में झगड़ने लगे। पहले तो केवल—कोलाहल होता था फिर उपद्रव भी होने लगे। अकबर के दरबार में रहने वाला कट्टर मुसलमान बदायूंनी धर्म सभा में बैठने वाले मौलवियों में जो झगड़ा होता था उसके लिए लिखता है कि "बादशाह अपना बहुत ज्यादा वक्त इबादतखाने में शेखों और विद्वानों की संगति में रहकर गुजारता था, खास तौर पर शुक्रवार की रात में, जिसमें वह रात भर जागता रहता था, किसी मुख्य तत्व या किसी अवांन्तर विषय की चर्चा करने में निमग्न रहता था उस समय विद्वान और शेख

---

1. वही पृष्ठ 70
2. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा भाग 2 पृष्ठ 204
3. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 204

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारस्परिक विरूदोक्ति और मुकाबिला करने की रण भूमि में अपनी जीभ रूपी तलवार का उपयोग करते थे। पक्ष समर्थनकारों में इतना वितण्डावाद खड़ा हो जाता था कि एक पक्ष वाला दूसरे पक्ष वाले को बेवकूफ और ढोंगी बताने लग जाता था"[1] इन वाद-विवाद और धार्मिक चर्चाओं के दौरान इन विद्वानों की संकीर्णता, अभद्रता तथा अंहकार का नग्न नृत्य प्रारम्भ हुआ। एक विद्वान किसी बात को हलाल कहता था तो दूसरा उसी को हराम प्रमाणित कर देता था। वे स्वयं अकबर की उपस्थिति में ही आपे से बाहर हो जाते थे और परस्पर एक दूसरे को काफिर बतलाते थे। अबुलफजल और फैजी भी आ गये थे तथा दरबार में उनके भी पक्षपाती उत्पन्न हो गये थे। ये लोग एक-दूसरे के कार्यों की पोल खोलते थे। बेइमानियों के अनेक किस्से सुनाते थे—जैसे दीन, दुखियों और विद्वानों को दान में दी गई रकम के विषय में मखदूम-उल-मुल्क की बेईमानी, अब्दुन्नबी पर हत्या करने का आरोप आदि। प्रत्येक विद्वान की यही इच्छा थी कि जो कुछ मैं कहूं उसी को सब ब्रह्म वाक्य मानें। जो जरा भी चीं चपड़ करता था उसी के लिए काफिर होने का फतवा रखा हुआ था। कुरान की आयतें और कहावतें सबके तर्क का आधार थीं। पुराने विद्वानों के दिये हुए फतवे जो अपने मतलब के होते थे, उन्हें भी वे कुरान की आयतों के समान ही प्रमाणिक बतलाते थे।" "विद्वानों की यह दशा थी कि जवानों की तलवारें खींच कर पिल पड़ते थे, कर मरते थे और आपस में तर्क-वितर्क तथा वाद-विवाद करके एक-दूसरे को पूरी तरह से दबाने का ही प्रयत्न करते थे। और शेख सदर-मखदूम-उल-मुल्क की तो यह दशा थी कि आपस में गुत्थम-गुत्था तक कर बैठते थे"[2]।

बदायूंनी ने भी लिखा है कि वाद-विवाद के समय "एक रात उस समय उल्माओं की गर्दनों की नसें फूल गयीं और एक भयानक शोरगुल और कोलाहल मच गया। सम्राट अकबर इनके अशिष्ट व्यवहार पर बड़ा ही क्रोधित हुआ।"

इन नेताओं के ऐसे संकीर्ण, कट्टरपन, स्वार्थ और पतित चरित्र से अकबर को अत्यधिक क्षोभ हुआ। उसने समझ लिया कि सत्य की खोज उनके बस की बात नहीं। धर्म की ही नींव खोदने वाले ऐसे मुल्लाओं से उसे स्वभावतः चिढ़ होने लगी और वह शिया-सुन्नी, हनफी-शफी के झगड़ों से मुक्त धर्म को स्थापित करने को आतुर हो उठा।

---

1. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 262
2. अकबरी दरबार हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा 1 भाग पृष्ठ 75-76
3. अलबदायूंनी डब्ल्यू एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 205

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## (ब) धार्मिक नीति का क्रमिक विकास

**अकबर के प्रारम्भिक धार्मिक विचार—**

अकबर 1556 में सिंहासन पर बैठा। सन् 1556 से 1562 तक वह सच्चे मुसलमान शासक के समान था। मौलाना मुहम्मद हुसैन लिखते हैं कि "अठारह बीस बरस तक तो उसकी यह दशा थी कि वह मुसलमानी धर्म की आज्ञाओं को उसी प्रकार श्रद्धा पूर्वक सुनता था जिस प्रकार कोई सीधा-साधा धर्म-निष्ठ मुसलमान सुनता है और उन सब धार्मिक आज्ञाओं का वह सच्चे दिल से पालन करता था"[1]। सिंहासनारोहण के प्रारम्भ के काल में तो वह सबके साथ मिलकर नमाज पढ़ता था, स्वयं अजान देता था, मस्जिद में अपने हाथ से झाड़ू लगाता था, मुल्ला-मौलवियों का आदर किया करता था साम्राज्य के झगड़ों का निर्णय शरअ और मुल्लाओं के फतवे के अनुसार किया करता था, फकीरों और शेखों के साथ बहुत ही निष्ठापूर्वक व्यवहार करता था उनकी कृपा तथा आशीर्वाद से लाभ उठाता था।

मुहम्मद हुसैन ने यह भी लिखा है कि "अजमेर में, जहां ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है, अकबर प्रतिवर्ष जाया करता था। यदि कोई युद्ध अथवा और कोई आकांक्षा होती, या संयोगवश उस मार्ग से जाना होता तो वर्ष के बीच में भी वहां जाता था। एक पड़ाव पहले से ही पैदल चलने लगता था। कुछ मन्नतें ऐसी भी हुई जिनमें फतेहपुर या आगरे से ही अजमेर तक पैदल गया। वहां जाकर दरगाह में परिक्रमा करता था, हजारों लाखों रुपयों के चढ़ावे और भेटें चढ़ाता था। पहरों सच्चे दिल से ध्यान किया करता था और दिल की मुरादें मांगता था। फकीरों आदि के पास बैठता था, निष्ठापूर्वक उनके उपदेश सुनता था, ईश्वर के भजन और चर्चा में समय बिताता था। धर्म सम्बन्धित बातें सुनता था। और धार्मिक विषयों की छानबीन करता था। विद्वानों, गरीबों, फकीरों आदि को धन सामग्री और जागीरें आदि दिया करता था। जिस समय कव्वाल लोग धार्मिक गजलें गाते थे, उस समय वहां रुपयों और अशर्फियों आदि की वर्षा होती थी "या हादी यामुईन" का पाठ वहीं से सीखा था। हर दम उसका जप किया करता था और सबको आज्ञा थी कि इसी का जप करते रहें"[2]।

तत्कालीन इतिहास लेखक बदायूंनी के अनुसार भी हमें पता चलता

---

1. अकबरी दरबार—हिन्दी अनुवाद —रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ 67
2. अकबरी दरबार हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा भाग 1 पृष्ठ 68

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि "अकबर दिन में न केवल पांच बार नमाज ही पढ़ता था, बल्कि राज्य धन-दौलत और मान-प्रतिष्ठा प्रदान करने की भगवान की अपार अनुकम्पा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के निमित्त प्रतिदिन प्रातःकाल ईश्वर का चिन्तन करता था और "या-हू-या-हादी" का ठीक मुसलमानी ढंग से उच्चारण करता था[1]।

कहने का तात्पर्य है कि व्यक्तिगत जीवन में और शासक के रूप में इस समय तक वह एक सच्चा मुसलमान ही रहा मस्जिदों का निर्माण कराया, हिन्दुओं से जजिया तथा तीर्थयात्रा कर भी वसूल किये। यद्यपि इस अवधि में अकबर मध्य युग के सच्चे मुसलमान सम्राट का प्रतिरूप था, किन्तु वह कट्टर और धर्मान्ध नहीं था और न ही उसने हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किये क्योंकि धार्मिक कट्टरता के लिए तो वह स्वभावतः प्रतिकूल था। सन् 1561 तक तो उसने कोई धार्मिक सुधार नहीं किये क्योंकि शासन प्रबन्ध पूर्ण रूप से बैरामखां के अधीन था इसलिये वह धार्मिक कार्य करने के लिए स्वतन्त्र नहीं था जैसे-जैसे उसके साम्राज्य का विस्तार होता गया उसका धार्मिक विश्वास बढ़ता गया। शेख सलीम चिश्ती के कारण वह प्रायः फतेहपुर में रहता था। महलों से अलग पास ही एक पुरानी सी कोठी थी, उसके पास पत्थर की एक सिल पड़ी थी, वहां तारों की छांव में अकेला ही बैठा रहता था, प्रभात का समय ईश्वराराधन में लगता था, बहुत ही नम्रता और दीनता से जप करता था तथा ईश्वर से दुआएँ मांगता था। लोगों के साथ भी प्रायः धार्मिकता और आस्तिकता की ही बातें करता था। यहीं से उसकी धार्मिक नीति का विकास प्रारम्भ होता है।

## धार्मिक नीति के विकास का क्रमिक वर्णन

अकबर सत्य धर्म को जानने का इच्छुक था और सभी जातियों में भेदभाव मिटाना चाहता था इसके लिए उसने जो उदार धार्मिक नीति अपनाई उसका क्रमिक विकास इस प्रकार है—

### 1. राजपूत कन्याओं से विवाह—

सन् 1562 के जनवरी महीने में अकबर ख्वाजा मुइनुद्दीन की यात्रा के लिए अजमेर गया। अजमेर के राजा भारमल की पुत्री से विवाह किया।

---

1. His majesty spent whole nights in praising god, he continually occupied himself in pronouncing Ya-hawa and Ya-hadi in which he was well versed.

अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 203

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(इस विवाह का जिक्र पिछले पृष्ठों में हो चुका है) हिन्दू लड़की के साथ यह उसका पहला विवाह था इसके बाद अन्य राजपूत राजकन्याओं से भी अकबर के विवाह हुए। इन विवाहों से अकबर के शासन और धार्मिक नीति में परिवर्तन हुआ। धर्म, जाति और वंश के भेद-भाव को मिटाकर समस्त जातियों के बीच कटुता को दूर करने की नीति यहीं से प्रारम्भ होती है। राजपूतों और मुगलों के पारम्परिक संघर्ष का अन्त होने ही लगा था पर अकबर भी हिन्दू रानियों के प्रभाव से हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट हुआ उसने अपनी रानियों को धार्मिक संस्कारों, विधियों और पूजा-पाठ करने की स्वतन्त्रता दे दी।

**2. आध्यात्मिक चेतना का उदय—**

सन् 1562 में ही यानि जब अकबर 20 वर्ष का हुआ तब प्रजा की असली हालत जानने के लिए उसने फकीरों और साधू सन्तों का सहवास करना शुरू किया यह ठीक भी है कि निष्पक्ष, त्यागी, फकीरों और साधुओं के जरिये प्रजा की असली हालत अच्छी तरह से मालूम हो सकती है। साधुओं से मिलकर जैसे वह प्रजा की असली हालत जानने की कोशिश करता था वैसे ही वह आत्मा की उन्नति के साधनों को भी अन्वेषण करता। अकबर ने कहा कि "जब मैं बीस वर्ष का हुआ तब मेरे अन्तःकरण में उग्र शोक का अनुभव हुआ। और मुझे इस बात का बड़ा दुख हुआ कि मैंने परलोक यात्रा के लिए धार्मिक जीवन नहीं बिताया।"[1] बस यहीं से उसकी उदार धार्मिक नीति का शुभारम्भ होता है। इस तरह बीस वर्ष की आयु पूरी करने पर, यह सोचकर कि परलोक यात्रा के लिए धार्मिक जीवन नहीं बिताया उसे अत्यधिक दुख हुआ। इसी समय उसे एक और अध्यात्मिक अनुभव हुआ। वह कहता है कि "एक रात मेरा हृदय जिन्दगी के बोझ से चिन्तित हुआ तब अचानक सोते जागते अर्थात् ऊंघ-नींद में मुझे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया जिससे मेरी आत्मा को थोड़ा सा सुख मिला।[2]

---

1. On the Completion of my tweneieth year. I experienced and internal bitherness and from the lack of spritual provision for my last Journey, my soul was seized with exceeding sorrous.

आइन अकबरी एच. एस. जेरट द्वारा अनुदित भाग 3 पेज 433

2. "One night my heart was weary of the burden of life when suddenly between sleeping and waking a strange vision appeard to me, and my sprit was some-what Comforted."

आइने अकबरी एच. एस. जेरट द्वारा अनुदित भाग 3 पेज 435

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन विचारों से उनके हृदय में यह भाव अंकित हो गया कि जाति धर्म रहन-सहन के भेद-भाव का विचार किये बिना सभी वर्गों के लोगों की निःस्वार्थ सेवा से बढ़कर ईश्वर को प्रसन्न करने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

**3. युद्ध बन्दियों को मुसलमान बनाने का निषेध—**

अकबर की इस नवीन भावना का प्रथम ठोस परिणाम यह हुआ कि उसने अपने बीसवें जन्म दिन 1562 को एक नवीन आज्ञा प्रसारित की जिसके अनुसार युद्ध बंदियों को गुलाम बनाने तथा उन्हें बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराने की की मनाही कर दी गयी। इससे पहले विजीत सेनायें लोगों के स्त्री-बच्चों को दास बना लिया करती थी। बंदी हिन्दू सैनिकों की पत्नियाँ, बच्चों और सम्बन्धियों का उपयोग करने के लिए उन्हें मुस्लिम अधिकारियों को सौप दिया जाता था। यह प्रथा इस्लाम धर्मानुमोदित मानी जाती थी। बादशाह ने ईश्वर भक्ति से, दूरदर्शिता तथा सद्विचार से प्रेरित होकर आदेश दिया कि उसके साम्राज्य से विजयी सेना का कोई सैनिक ऐसा काम नहीं करेगा। सैनिक चाहे छोटा हो या बड़ा उसे किसी को कभी कोई दास बनाने का अधिकार नहीं होगा। अबुलफजल लिखता है कि "बादशाह ने समझा था कि स्त्रियों और निरपराध बच्चों को दण्ड देना अन्याय है यदि पुरुष धृष्टता का मार्ग ग्रहण करते हैं तो इसमें उनकी पत्नियों का क्या दोष है ? यदि पिता बादशाह का विरोध करते है तो उनके बच्चों ने क्या अपराध किया है। इसके अतिरिक्त सैनिक लोग लाभ वश गावों को आक्रमण करके लूट लिया करते थे जब इस विषय में आदेश दिया गया तो यह प्रथा बन्द हुई।"[1]

इस प्रकार युद्ध बन्दियों को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने घर और परिवार वालों के पास जाने की अनुमति दे दी गयी।

**4. तीर्थ यात्रा कर का निषेध—**

भारत वर्ष में शासन लोग उन हिन्दुओं से कर लिया करते थे जो पवित्र स्थानों की यात्रा के लिए जाया करते थे यह कर यात्रियों के धन और पद के अनुसार लिया जाता था। और कर्मी कहलाता था। अबुलफजल के अनुसार इससे करोड़ों रुपयों की आमदनी होती थी। सन् 1563 में अकबर चीतों के शिकार के लिए मथुरा गया। जब वह अपने कैम्प में था तो उसे बताया गया कि जो हिन्दू यात्री यहाँ आते हैं उनसे यात्रा कर लिया जाता है और यह तीर्थ यात्रा कर

---

1. अकबरनामा हिन्दी अनुवाद मथुरालाल शर्मा पृष्ठ 221 पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा कर्मी हिन्दुओं के सभी पवित्र स्थानों पर तीर्थ यात्रियों से लिया जाता है अकबर ने अनुभव किया कि हिन्दुओं की आराधना करने के ढंग पर उनसे धन मांगना या उनकी आराधना में रुकावट डालना अनुचित है। बादशाह ने अपनी बुद्धिमता, उदारता से प्रेरित होकर यह बन्द कर दिया। उसने समझा कि इस प्रकार धन संग्रह करना पाप है। अकबर ने कहा "जो लोग अपने सृजनकर्त्ता ईश्वर की पूजा के लिए तीर्थ स्थानों पर एकत्रित होते हैं, उनसे कर वसूल करना ईश्वर की इच्छा के सर्वथा विरुद्ध हैं, चाहे उनकी पूजा की विधि पृथक ही क्यों न हो। फलस्वरूप अकबर ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में तीर्थ यात्रा कर बसूल न करने के आदेश प्रसारित कर दिये"[1]। एक अन्य स्थान पर अबुलफजल ने यह भी लिखा है कि—"बादशाह प्रायः कहा करता था कि चाहे कोई गलत धर्म के मार्ग पर चलता हो परन्तु यह कौन जानता है कि उसका मार्ग गलत ही है। ऐसे व्यक्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करना उचित नहीं है।"[2]

तीर्थ यात्रा कर की समाप्ति अकबर की धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का ज्वलन्त उदाहरण है। करोड़ों रुपयों की आय होने पर भी बादशाह ने इसे केवल अपनी धार्मिक सहिष्णुता के कारण समाप्त कर दिया।

**5. जजिया कर का उन्मूलन—**

जजिया की उत्पत्ति भारत में कब हुई ? इसका यद्यपि निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सकता तथापि कुछ विद्वानों का कहना है कि आठवीं शताब्दी में मुसलमान बादशाह कासिम ने भारतीय प्रजा पर यह कर लगाया था। पहले तो उसने आर्य प्रजा को इस्लाम ग्रहण करने के लिए विवश किया और प्रजा ने अटूट धन-दौलत देकर अपने आर्य धर्म की रक्षा की। फिर हर साल ही वह प्रजा से रुपया वसूल करने लगा, प्रतिवर्ष जो द्रव्य वसूल किया जाता था, उसका नाम जजिया था। कुछ काल पश्चात् यहां तक हुक्म जारी हो गये थे कि आर्य प्रजा के पास खाने-पीने के बाद जो शेष धन माल बचे वह सभी जजिया के रूप में खजाने में दाखिल करवा दिये जायें। फरिश्ता के शब्दों में कहें तो "मृत्यु तुल्य दण्ड देना ही जजिय का उद्देश्य था।" ऐसा दण्ड लेकर भी आर्य प्रजा ने अपने धर्म की रक्षा की थी। स्मिथ ने इस बात के बारे में लिखा है कि "खलीफ उमर के द्वारा वास्तविक रूप से कर निर्धारित कर दिया गया था जो

---

1. अकबर द ग्रेट मुगल-स्मिथ-पृष्ठ 64-65
2. अकबर नामा हिन्दी अनुवाद मथुरालाल शर्मा पृष्ठ 242

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन ग्रेड (स्तर) 48, 24 तथा 12 दिरम के समकक्ष था"[1]।

इस्वी सन् की चौदहवीं और पन्द्रवी शताब्दी में भी फिरोजशाह तुगलक ने कानून बनाया था कि गृहस्थों के घरों में जितने बालिग मनुष्य हों उनसे प्रति व्यक्ति धनियों से 40, सामान्य स्थिति वालों से 20, और गरीबों से 10 टंका जजिया प्रतिवर्ष लिया जाये। आगे भी यानि जिस सोलहवीं शताब्दी की हम बात कहना चाहते हैं उसमें भी जजिया मौजूद था। यद्यपि कर की रकम कोई ज्यादा न थी लेकिन यह कर हिन्दू धर्म पर इस्लाम की श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता था जो हिन्दुओं के लिए लज्जाजनक था।

सिंहासन पर बैठते ही पहले वर्ष अकबर के मन में जजिया माफ कर देने का विचार उठा था। पर उस समय उसकी युवावस्था कम थी, कुछ तो लापरवाही और कुछ अधिकार के अभाव के कारण उस समय यह कर समाप्त हो न सका।

सन् 1562 में अकबर के हाथ में सर्वसत्ता आ गई थी, अतः अकबर ने सर्वस्वीकृत इस्लामी रिवाजों की उपेक्षा करके मुसलमान मन्त्रियों और पदाधिकारियों तथा कट्टर मुस्लिम नेताओं व उलमाओं के कड़े विरोध के बावजूद 15 मार्च 1564 को जजिया कर की समाप्ति के आदेश प्रसारित कर दिये और सम्पूर्ण साम्राज्य में जजिया कर बन्द कर दिया गया। बड़े-बड़े मुल्लाओं और मौलवियों को इससे बड़ी आपत्ति हुई लेकिन अकबर ने कहा कि "प्राचीन काल में इस सम्बन्ध में जो निश्चय हुआ था, उसका कारण यह था कि उन लोगों ने अपने विरोधियों की हत्या करना और उन्हें लूटना ही अधिक उपयुक्त समझा था.....इसलिए उन्होंने एक कर बाँध दिया और उसका नाम जजिया रख दिया अब हमारे प्रजापालक और उदारता आदि के कारण दूसरे धर्मों के अनुयायी भी हमारे सहधर्मियों की ही भाँति हमारे साथ मिलकर हमारे लिए जान देने को तैयार रहते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे हो सकता है कि हम उन्हें अपना विरोधी समझकर अप्रतिष्ठित करें और उनका नाश करें.....जजिया लेने का प्रमुख कारण था कि पहले के साम्राज्यों का प्रबन्ध करने वालों के पास धन और सांसारिक पदार्थों की कमी रहती थी और वे ऐसे उपायों से अपनी आय की वृद्धि

---

1. The tax had been originally institutied by the Khalif Omar, who fixed it in there grades of 48, 24 and 12 dirhams respectively.

स्मिथ अकबर द ग्रेट मुगल पृष्ठ 66

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते थे। अब राजकोष में हजारों-लाखों रुपये पड़े हैं, बल्कि साम्राज्य का एक-एक सेवक आर्थिक दृष्टि से आवश्यकता से अधिक सुखी है फिर विचारशील और न्यायी मनुष्य कोड़ी-कोड़ी चुनने के लिए अपनी नीयत क्यों बिगाड़ें। एक कल्पित लाभ के लिए प्रत्यक्ष हानि करना ठीक नहीं आदि-आदि कहकर जजिया रोका गया"[1]।

इसकी समाप्ति का समाचार जब घर-घर पर पहुंचा तो सब लोग अकबर को धन्यवाद देने लगे। जरा सी बात ने लोगों के दिलों और जानों को मोल ले लिया। यदि हजारों आदमियों का रक्त बहाया जाता और लाखों आदमियों को गुलाम बनाया जाता तो भी यह बात नहीं हो सकती थी। अबुलफजल लिखता है—"जजिया, बन्दरगाह का महसूल, यात्री कर अनेक प्रकार के व्यवसायों पर कर, दरोगा की फीस, तहसीलदार की फीस, बाजार का महसूल, विदेश यात्रा कर, मकान के क्रय विक्रय का कर शोरा पर कर·····सारांश यह है कि ऐसे तमाम कर जिनको हिन्दुस्तानी लोग सैर जिहात कहते है, बन्द कर दिये गये।"

**6. गैर मुसलमानों को धार्मिक स्थान निर्मित करवाने की स्वतन्त्रता—**

विभिन्न अनुचित करों की समाप्ति के पश्चात् बादशाह ने पवित्र धार्मिक स्थानों पर लगे सब प्रतिबन्धों को निरस्त कर दिया। फलतः हिन्दू सामन्तों और राजपूत सरदारों ने अपने मन्दिर, देवालय तथा ईश्वर के विभिन्न अवतारों के पवित्र देव स्थान बनवाने प्रारम्भ कर दिये राजा मानसिंह ने अत्यन्त सुन्दर और भव्य भवन निर्मित करवाये एक तो वृन्दावन में गोविन्ददास का लाल पत्थर का विशाल पांच मंजिला मन्दिर और दूसरा वाराणसी में। उसने सिक्खों के गुरु रामदास को एक भूमि खण्ड जीवन निर्वाह के लिए दिया। इसी भूमि खण्ड में गुरु रामदास ने जल का छोटा तालाब खुदवाया और तब से यह स्थान अमृतसर (अमृत का तालाब) कहा जाता है। अमृतसर में सिक्खों ने एक गुरुद्वारा भी बनवाया। हीरविजय सूरी और भानुचन्द्रजी के प्रयत्नों से बादशाह ने फरमान प्रसारित किये जिनके द्वारा जैन समाज को शासन की ओर से कुछ विशेष सुविधायें दी गईं। गुजरात के सूबेदार को यह आदेश दिया गया कि उस राज्य में किसी को भी जैन मन्दिरों में हस्तक्षेप न करने दिया जाये। उनके जीर्णोद्धार में कोई बाधा न डाले तथा अजैन उनमें निवास नहीं करें। एक अन्य फरमान के अनुसार मालवा, गुजरात, लाहौर, मुलतान, बंगाल तथा कुछ अन्य प्रान्तों

---

1. अकबरी दरबार हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा, भाग 1 पृष्ठ 144-45

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सूबेदारों को यह आदेश दिया गया कि सिद्धाचल, गिरनार, तारंगा, केसरियानाथ, आबू, गिरनार और राजगिरी के जैन तीर्थ स्थानों और मन्दिरों की पहाड़ियों को तथा बिहार और बंगाल में जैनियों के तीर्थ स्थानों व इन पहाड़ियों की तलहटी के सभी स्थानों को जैनियों को सौंप दिया जाये।

ईसाइयों को खम्भात, लाहौर, हुगली, और आगरा में गिरजाघर निर्मित करने की अनुमति दे दी गई। इन स्थानों पर धीरे-धीरे राजकीय व्यय से गिरजाघर बनवाये गये।

**7. गैर मुसलमानों की राज्य के उच्च पदों पर नियुक्ति—**

अकबर ने इस आधारभूत सिद्धान्त को समझ लिया था कि सभी मतों और धर्मों का जनक ईश्वर है और इसलिए सारा मानव समाज ईश्वर के पुत्र के समान होने से जन्म से ही सभी मनुष्य समान अधिकार रखते हैं इन विचारों के कारण अकबर का शासन और राजस्व का सिद्धान्त उदार, सहिष्णु और व्यापक बन गया।

शासन सत्ता अपने हाथ में लेते ही अर्थात् 1562 के प्रारम्भिक महीनों में ही टोडरमल, मानसिंह, भगवन्तदास, बेनीचन्द्र, बीरबल, जयमल, कछवाहा आदि को अकबर ने अपने राज्य की सेवा में उच्च पदों पर नियुक्त कर लिया था। राजस्व विभाग में उसने टोडरमल के अतिरिक्त अनेक हिन्दू कर्मचारी और अधिकारी नियुक्त किये इससे दोनों के भेद-भाव की खाई घटने लगी। अकबर की यह नीति बहुत कुछ अबुलफजल के विचारों से भी प्रभावित हुई। अबुलफजल लिखता है कि—"राजपद ईश्वर का एक उपहार है, और यह तब तक प्रदान नहीं किया जा सकता जब तक कि एक व्यक्ति में हजारों महान गुणों और विशेषताओं का समन्वय न हो जाये। इस महान पद के लिए जाति, धन सम्पत्ति तथा लोगों की भीड़-भाड़ ही काफी नहीं है। वह इस महान पद के लिए तब तक योग्य नहीं हैं, जबकि वह सार्वजनिक शान्ति और सहिष्णुता पैदा न करे। यदि मानवता की सभी जातियों और धर्म सम्प्रदायों को एक आंख से नहीं देखता र कुछ लोगों के साथ माता का सा और कुछ के साथ विमाता का सा व्यवहार ता है तो वह इतने महान पद के लिए योग्य नहीं हो सकता।" उसका स्वयं भी विश्वास था कि राजा को प्रत्येक धर्म और जाति के प्रतिपूर्ण सहिष्णु चाहिए। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर उसने शासन में उच्च पदों पर क्ति करने में हिन्दू मुसलमानों के विभेद को समाप्त कर दिया। यहां तक कि सबदारों में भी हिन्दू नियुक्त किये गये। एक सहस्त्र सैनिकों के 137 मनसब-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दारों में 14 मनसबदार हिन्दू थे, 200 अश्वारोहियों के 415 मनसबदारों में 15 मनसबदार हिन्दू थे और साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों के 12 दीवानों में 8 दीवान हिन्दू थे। बदायूंनी लिखता है कि हिन्दुओं के मुकद्दमें करने के लिए उसने (अकबर) हिन्दू न्यायाधीशों की नियुक्ति की।"

बादशाह का विचार था कि राजा को न्यायप्रिय और निष्पक्ष होना चाहिये। इसलिए उसने बिना किसी भेद भाव के सभी वर्गों और सम्प्रदायों के व्यक्तियों के साथ समान न्याय और निष्पक्ष व्यवहार के सिद्धान्त को अपना लिया। अन्य जातियों पर इस्लाम के कानूनों के अनुसार शासन करने की नीति त्याग दी।

**8. इस्लाम के सिद्धान्तों का प्रमाणिक ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास—**

एक ओर तो अकबर ने हिन्दुओं पर लगे अनेक अनुचित प्रतिबन्ध हटाये और हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयास किया, किन्तु साथ ही साथ दूसरी ओर वह सत्य धर्म की खोज में लगा ही रहा वह इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का प्रमाणिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। इसके लिए उसने शेख अब्दुन्नबी और मखदूम-उल-मुल्क अब्दुल्ला सुल्तानपुरी जैसे विद्वान मुल्लाओं की शागिर्दी की। सन् 1574 तक वह इनके प्रभाव में रहा। इस वर्ष तक वह इस्लाम के नियमों का पालन मजबूती से करता था। बदायूंनी का भी मत है कि सन् 1574 तक सम्राट अकबर नियमित रूप से नमाज पढ़ता रहा और सलीम चिश्ती जैसे प्रसिद्ध मुस्लिम पीरों के मकबरों के दर्शन करने भी कई बार गया वह अपने युग के प्रसिद्ध मौलवियों का भी उचित सम्मान करता रहा अकबर ने शेख अहमद के पुत्र शेख अब्दुन्नबी को मुख्य सद्र (धर्म व दान मन्त्री) नियुक्त किया और वह सन् 1578 तक इसी पद पर रहा। सद्र को धर्माचार दान तथा न्याय विभाग का अध्यक्ष रखा गया। एक अन्य स्थान पर बदायूंनी लिखता है कि "अकबर शेख के घर हदीस (मुहम्मद साहब के कथन) पर वार्ता सुनने जाया करता था। कई बार तो सम्मान और श्रद्धा प्रकट करने के उद्देश्य से अकबर उसके सामने नंगे पांव खड़ा हुआ"[1]। पर रूढ़िवादी सुन्नी धर्म उसे पूर्ण सन्तोष नहीं दे सका अतः वह शिया धर्म की ओर उन्मुख हुआ। उसने शिया धर्म के प्रमुख मुल्ला याजदी को अपना मित्र बनाया। याजदी ने उसे शिया धर्म के सिद्धान्त समझाये और उसे शिया बनाने का भरसक प्रयत्न किया पर वह भी उसके उदार हृदय को आकर्षित न कर सका। इसके बाद वह सूफी मत की ओ

---

1. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 206-207

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झुका। सूफी विद्वान शेख मुबारक तथा उनके दोनों पुत्रों फैजी व अबुलफजल तथा अन्य सूफी विद्वान मिर्जा सुलेमान से उसे सूफी मत से अवगत कराकर सूफी सम्प्रदाय की ओर आकर्षित किया।

**9. इबादत खाने की स्थापना और इस्लाम धर्म पर वाद-विवाद—**

समस्त सम्प्रदायों का गहन ज्ञान प्राप्त करने के लिए अकबर ने फतेहपुर सीकरी में इबादतखाना अथवा प्रार्थना ग्रह बनवाया अपने मुसलमान दरबारियों तथा उलमाओं के साथ बादशाह यहां आकर सभा करता था इस प्रकार सत्य का विकास होने लगा। धार्मिक सभायें रात-रात भर और कभी-कभी दूसरे दिन प्रातः और दोपहर तक चलती थी जिससे पता चलता था कि किसमें तर्क है? कल्पना है? बुद्धि है? इन सभाओं में दर्शन, धर्म, कानून और सांसारिक सभी प्रकार के विषयों और समस्याओं पर चर्चायें होती थी।

मखदूम-उल-मुल्क की उपाधि से विभूषित शेख अब्दुला, सुल्तानपुरी काजी, याकूब, मुल्ला बदायूंनी हाजी इब्राहीम, शेख मुबारक, अबुलफजल आदि प्रमुख विद्वान इसमें भाग लेते थे। इन विचार गोष्ठियों में विशेष गुण, बुद्धि व प्रतिभा प्रदर्शित करने वालों को अकबर सोने-चादी के सिक्के देकर पुरस्कृत करता था। किन्तु धीरे-धीरे इन धार्मिक और दार्शनिक चर्चाओं के समय शेखों, सैयदों और उलमाओं की असहनशीलता, अनुशासनहीनता, सामान्य बुद्धि का अभाव, अनुदार, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, अभद्रता तथा अहंकार का खुला प्रदर्शन होने लगा मखदूम उल-मुल्क और अब्दुन्नबी इस्लामी धर्म शास्त्र सम्बन्धित सैद्धांतिक प्रश्नों पर परस्पर लड़ बैठते थे।

मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूंनी ने वे सब पुस्तकें पढ़ी थीं, जिन्हें पढ़कर लोग विद्वान हो जाते हैं। जो कुछ गुरुओं ने बतला दिया था, वह सब उन्हें अक्षरशः याद था, लेकिन धर्माचार्य के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है आचार्य का काम तो होता है कि जहां कोई आयत या मन्त्र न हो, या कहीं किसी प्रकार का सन्देह हो, या किसी अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद हो, वहां वह बुद्धि से काम लेकर निर्णय करें, लेकिन मुल्ला बदायूंनी में ये सब बातें नहीं थी इसी तरह शेख अबुलफजल की झोली में तर्कों की क्या कमी थी और उनकी ईश्वरदत्त प्रतिभा के सामने किसी की क्या सामर्थ्य? जिस तर्क को चाहा चुटकी में उड़ा दिया विद्वानों में विरोध का मार्ग तो खुल ही गया था। थोड़े ही दिनों में यह नौबत आ गई कि धार्मिक सिद्धांत तो दूर रहे जिन सिद्धांतों का सम्बन्ध केवल विश्वास से था उन पर भी आक्षेप होने लगे और हर बात में तुर्रा यह कि साथ में कोई तर्क और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण भी हो। यदि तुम अमुक बात को मानते हो तो इसका कारण क्या है? इस तरह अविश्वास बढ़ते-बढ़ते इबादत खाने में तीन विरोधी दल हो गये। एक मख-दूम-उल-मुल्क की उपाधि से विभूषित शेख अब्दुल्ला सुल्तानपुरी के निर्देशन में और दूसरा अब्दुन्नबी के नेतृत्व में। ये कट्टर सुन्नी मुसलमानों के दल थे। उल्माओं के ये दोनों नेता आपस में एक-दूसरे को बुरा भला कहकर झगड़ते थे। मखदूम-उल-मुल्क ने अब्दुन्नबी पर खिज़खां सरवानी और मीरबख्श को उनके धार्मिक विश्वासों के लिए अन्याय से मरवा डालने का आरोप लगाया। तीसरा दल इब्राहीम शेख मुबारक और उसके पुत्र फैजी व अबुलफजल तथा नवीन लोगों का था। ये तीनों भी परस्पर कुफ्र और बेइज्जती की बातें करते थे। धर्मान्ध सुन्नियों ने शेख मुबारक पर धर्म भ्रष्ट होने और नवीन धार्मिक पद्धति चलाने का दोषारोपण कर उसे मृत्यु दण्ड दे दिया गया पर वह बच कर भाग गया। इस पर अबुलफजल ने इन सुन्नियों के गुट की भ्रांतियां, उनकी कथनी करनी में भेद आदि को उदाहरणों से स्पष्ट किया और अब्दुन्नबी की पोल खोलना शुरू किया। उसने बताया कि अब्दुन्नबी ने हाजियों को दिया जाने वाला धन स्वयं ले लिया और यह फतवा दिया कि हज करने से पुण्य के स्थान पर पाप होगा, क्योंकि मक्का जाने के दोनों मार्ग संकट ग्रस्त हैं इन सभाओं में एक दूसरे को नीचा दिखाने के विलक्षण प्रश्न किये जाते थे।

मौलाना मुहम्मद हुसैन लिखते हैं कि "हाजी इब्राहीम सरहिन्दी बड़े झगड़ालू और चकमा देने वाले व्यक्ति थे उन्होंने एक दिन सभा में मिर्जा मुफलिस से पूछा कि "मूसा" शब्द का "सीगा"[1] (क्रिया का वचन पुरुष आदि) क्या है? और इसकी व्युत्पत्ति क्या है? मिर्जा यद्यपि विद्या और बुद्धि की सम्पत्ति से बहुत सम्पन्न थे, पर इस प्रश्न के उत्तर में मुफलिस ही निकले बस फिर क्या था सारे शहर में धूम मच गई कि हाजी ने मिर्जा से ऐसा प्रश्न किया जिसका वे कोई उत्तर ही न दे सके और हाजी ही बहुत बड़े विद्वान हैं। उसी अवसर पर एक दिन काजीजादा लश्कर से कहा कि तुम रात को सभा में नहीं आते? उसने निवेदन किया कि हुजूर आऊं तो सही पर वहां हाजी जी मुझसे पूछ बैठे कि ईसा का "सीगा" क्या है तो मैं क्या जबाब दूंगा। यह दिल्लगी बादशाह को बहुत पसन्द आई थी"[2]।

---

1. इसमें असम्बद्धता यह है कि सीगा केवल क्रिया में होता है, संज्ञा में नहीं होता और "मूसा" संज्ञा है।
2. अकबरी दरबार रामचन्द्र वर्मा पहला भाग पृष्ठ 72-73

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के विरोध, झगड़े और आत्माभिमान आदि की कृपा से बहुत से तमाशे देखने में आये। इसी प्रकार की एक अन्य घटना बदायूंनी लिखता है कि "यह सुनने पर कि हाजी इब्राहीम ने पीली और लाल रंग की पोशाकें पहनने को न्याय संगत घोषित करते हुए फतवा दिया है। मीर आदिल सैयद मुहम्मद की उपस्थिति में उसे धूर्त मक्कार कहा और उसे मारने के लिए अपना डन्डा उठा भी लिया"[1]।

इस प्रकार के झगड़ों से कट्टर इस्लाम में बादशाह का विश्वास हिल गया।

**इस्लाम धर्म के प्रति अकबर का दृष्टिकोण—**

इबादतखाने में ऐसे अशिष्ट, संकीर्ण, धर्मान्ध, उद्दण्ड और उत्तरदायित्वहीन व्यवहार तथा झगड़ों से अकबर बहुत ही खिन्न हुआ। सन् 1578–79 के बाद अकबर के मन में इन उलमाओं के चरित्र और धर्म के प्रति किंचित भी श्रद्धा नहीं रही थी। उसने अनुभव किया कि इन उलमाओं में जिन पर कि बुद्धि का सिर्फ कलेवर ही है, सत्य को खोजने और जानने की पिपासा नहीं है उसने इस्लाम के विद्वानों में ही भेद-भाव, संकीर्णता और कटुता पाई अतः धीरे-धीरे इस्लाम पर से उसका विश्वास उठने लगा।

अतः बादशाह ने स्वयं को कट्टर धर्मान्ध मुल्लाओं के हानिकारक प्रभाव से स्वतन्त्र करने का निश्चय किया। इसके लिए उसने दो ठोस कदम उठाये एक तो खुतबा पढ़ना। और दूसरा अभ्रान्त आज्ञा पत्र अथवा महजर प्रसारित करना।

शुक्रवार 22 जून 1579 को फतेहपुर सीकरी की प्रमुख मस्जिद की वेदी पर चढ़कर अकबर के कवि फैजी द्वारा कविता में रचित खुतबा पढ़ा जिसके अन्त में "अल्ला-हु-अकबर" शब्द थे'[2]। इस शब्द के दो अर्थ निकलते हैं एक तो यह कि अल्लाह सबसे बड़ा है और दूसरा अकबर ही अल्लाह है बादशाह के विरोधियों ने दूसरे अर्थ को ही सही मानकर कट्टर मुसलमानों को बादशाह के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ कर दिया।

सितम्बर 1579 में बादशाह ने महजर अथवा अभ्रान्त आज्ञा पत्र पढ़ा[3] इस पत्र से अकबर को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह मुस्लिम धर्मशास्त्रियों

---

1. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 214
2. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ. द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 277
3. वही पृष्ठ 279-80

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के विरोधी मतों में से किसी एक को स्वीकार करे तथा मतभेद विहीन मामलों पर किसी भी नीति को निर्धारित करे बशर्ते कि वह कुरान विहित न हो। इस प्रकार अब अकबर ने स्वयं वह अधिकार प्राप्त कर लिये जो अब तक उलेमाओं के माने जाते थे इससे उल्माओं ने अपना असन्तोष प्रकट किया और अकबर पर विभिन्न आरोप लगाये। बदायूंनी ने तो यहां तक लिखा है कि "अकबर ने नमाज वर्जित कर दी थी उसने दरबार में नमाज पढ़ना निषिद्ध कर दिया था। दरबार-ए-आम में अजान बन्द करवा दी थी, जो कि पांच समय पढ़ी जाती थी। उसने लोगों को अपने स्वयं तथा अपने बच्चों के लिए मुहम्मद और अहमद नाम रखने की मनाही कर दी थी। क्योंकि वह मुहम्मद के नाम से घृणा करने लगा था इसलिए जहां-जहां पैगम्बर मुहम्मद का नाम आता था। वहां- वहां उसने नाम परिवर्तित कर दिये"[1]। इस तरह के अनेक आरोप बदायूंनी ने लगाये। यद्यपि उनमें से कुछ तो बिल्कुल ही निराधार है। बदायूंनी कट्टर मुसलमान था हो सकता है उसने अकबर की आलोचना के लिए ऐसा लिख दिया हो। लेकिन इतना निश्चित है कि कट्टर इस्लाम में बादशाह का विश्वास हिल गया था। इसलिए तो उसने इबादतखाने के द्वार सब धर्मो के विद्वानों के लिए खोल दिया था।

**विभिन्न धर्माचार्यों से अकबर का सम्पर्क और उनका प्रभाव—**

बादशाह ने इबादतखाने का द्वार सन् 1578 से दूसरे धर्म सम्प्रदायों जैसे हिन्दू, पारसी, ईसाई के लिए भी खोल दिया। यद्यपि इबादतखाने में विचार विमर्श होते ही रहे किन्तु अकबर ने अन्य मतों और सम्प्रदायों के विद्वानों को बुलाकर निजी बैठकें आयोजित करनी आरम्भ कर दी। मौलाना मुहम्मद हुसैन लिखते हैं कि "बादशाह अपने दिल में यहीं चाहता था कि किसी प्रकार मुझे धार्मिक तत्व की बातें मालूम हों, बल्कि वह उनकी छोटी-छोटी बातों का भी पूरा पता लगाना चाहता था इसलिए वह प्रत्येक धर्म के विद्वानों को एकत्र करता था। और उनसे सब बातों का पता लगाया करता था[2]। इन बैठकों में विद्वान लोग बड़ी गम्भीरता और शान्ति से धर्म चर्चा करते थे इससे बादशाह को बहुत आनन्द होता था अबुलफजल लिखता है—"शहंशाह का दरबार सातों प्रदेशों (पृथ्वी के भागों) के पूछताछ करने वालों का घर तथा प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय के विद्वानों का सभा कक्ष बन गया था।

---

1. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 324
2. अकबरी दरबार हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ 76

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दू, जैन, ईसाई, सिक्ख आदि धर्माचार्यों ने बादशाह के सामने अपने-अपने धर्म के श्रेष्ठ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया किन्तु विद्वानों में पुरुषोत्तम और देवी प्रमुख थे। इनके प्रभाव से बादशाह आत्मा के आवागमन में विश्वास करने लगा। बदायूंनी लिखता है "सात नक्षत्र सप्ताह के प्रत्येक दिन से सम्बन्धित होते हैं इन नक्षत्रों में से प्रत्येक के रंग के अनुसार अकबर ने उस दिन के पहिनने के लिए अपनी वेश-भूषा बनवाई थी"[1]।

पारसी धर्माचार्य मेहरजीराणा ने सूर्य और अग्नि की उपासना को श्रेष्ठ बताया। ईसाइयों के प्रभाव से गिरजाघर में जाकर घुटने टेककर व हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा।

जैन धर्माचार्यों और मुनियों आचार्य हीरविजयसूरी, विजयसेनसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसिंहसूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय, सिद्धिचन्द्र उपाध्याय आदि ने बादशाह पर स्थायी प्रभाव डालकर जनहित धर्म रक्षा व जीव दया के अनेक कार्य करवाये। जैन धर्म का बादशाह पर जो प्रभाव पड़ा। यह बताना ही हमारे विषय का प्रमुख लक्ष्य है। जिसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायेगा।

1. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ. द्वारा अनूदित भाग 2 पृष्ठ 268

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# तृतीय अध्याय

## अकबर का जैन आचार्यो एवं मुनियों से सम्पर्क तथा उनका प्रभाव

शिया और सुन्नियों के पारस्परिक वाद-विवाद, आरोप-प्रत्यारोप तथा द्वेष पूर्ण संघर्ष के कारण इस्लाम धर्म पर से अकबर की रूचि हट गयी। पर फिर भी वह यही चाहता था कि किसी प्रकार से उसे धार्मिक तत्व की बातें मालूम हों, फलतः उसने 3 अक्टूबर 1578 को हिन्दू, जैन, ईसाई, यहूदी, सूफी, पारसी विद्वानों एवं सन्तों के लिए इबादतखाने का द्वार खोल दिया। अकबर ने इबादत-खाने में अपनी सभा के सदस्यों को पांच भागों में विभक्त किया था"[1]। उनमें कुल मिलाकर 140 सदस्य थे"[2] प्रथम वर्ग में वे लोग थे, जो कि दोनों लोकों का रहस्य जानते थे। दूसरे वर्ग में मन और हृदय के ज्ञाता थे, तीसरे वर्ग में धर्म और दर्शन शास्त्र के ज्ञाता चौथे वर्ग में दार्शनिक तथा पांचवे वर्ग में वे लोग थे, जो कि परीक्षणों तथा पर्यालोचनों पर आश्रित विज्ञान के जानने वाले थे। इन सम्पूर्ण वर्गो में अबुलफजल ने तीन जैन विद्वानों के नाम गिनाये है :—

1. आचार्य श्री हीरविजय सूरि।
2. विजयसेन सूरि।
3. भानूचन्द्र उपाध्याय।

प्रथम वर्ग के 16 वें स्थान पर हरिजी सूरि नाम अंकित है ये हरिजी सूरि को ही हीरविजय सूरि के नाम से जाना जाता है, (जिनका विवेचन हम अगले पृष्ठों में करेंगे।)

### 1. हीरविजय सूरि—

(पहले हम यह देखेंगे कि अकबर आचार्य हीरविजय सूरि जी के सम्पर्क में कैसे आया।)

---

1. सूरीश्वर और सम्राट विद्या-विजयजी हिन्दी अनुवादक कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 78
2. आइने अकबरी एच. ब्लॉचमेन द्वारा अनुदित पृष्ठ 607–617

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पूर्ण जैन साहित्य में इस घटना का विवरण मिलता है; कि अकबर राजमहल में बैठा मन्त्रियों से विचार-विमर्श कर रहा था, उसी समय सामने से "हीरविजयसूरिजी की जय हो" के नारे लगाता हुआ एक जुलूस निकला अकबर ने आश्चर्य से टोडरमल से इस बारे में पूछा तो उसे जबाव मिला कि यह जुलूस जैन धर्म वालों का है जिसमें चम्पा नाम की एक श्राविका सुन्दर वस्त्र धारण कर पालकी में बैठ भगवान के दर्शन के लिए मन्दिर में जा रही है। उसने 6 महीने के उपवास किये हैं जिनमें केवल गर्म जल पीने के सिवाय कुछ भी नहीं खाया और वह गर्म जल भी केवल दिन में ही पीती है रात्रि में तो मुंह में कुछ भी नहीं डालती उसके उपवास का यह 5 वां मास हैं। आज जैन धर्म का कोई विशेष पर्व होने के कारण वह उत्सव के साथ मन्दिर जा रही है। बादशाह को भला इतनी कठोर तपस्या पर कैसे विश्वास आ सकता था अतः अपने सन्देह की पुष्टि के लिए अपने अनुचरों को पालकी ऊपर ले जाने की आज्ञा दी। बादशाह की आज्ञा से जैन समुदाय भयभीत होने लग गया लेकिन कर क्या सकता था? आखिर पालकी को ऊपर ले जाया गया। बादशाह ने कुतूहलता से चम्पा बहन की आकृति की परीक्षा की। यद्यपि उसके तेजस्वी मुख को देखकर तपस्या के विषय में काफी कुछ सत्यता प्रतीत होने पर भी उसकी पूरी परीक्षा करने के लिए एक मास तक अपने एकान्त महल में रहने की आज्ञा दी और अपने सेवकों को उसकी सारी दिनचर्या का बड़ी सावधानी से अवलोकन करने को कहा। चम्पा बहन के लिए एक मास निकालना कौन सी बड़ी बात थी? समय निकला, सेवकों की दृष्टि में उसका निर्मल आचरण सामने आया। सेवकों द्वारा जब बादशाह को चम्पा बहन के पवित्र आचरण का पता चलता तो बादशाह आश्चर्य चकित हो गया। उसने स्वयं चम्पा बहन से पूछा कि तुम इतनी कठोर तपस्या क्यों और किसके प्रभाव से करती हो? उसने जबाव दिया कि तप आत्म कल्याण के लिए और आत्मज्ञानी तपागच्छ नायक श्री हीरविजयसूरि गुरुदेव के अनुग्रह से करती हूँ बस यहीं से अकबर के मन में हीरविजयसूरि के दर्शनों की जिज्ञासा हुई।

अकबर ने गुजरात प्रदेश में रह चुके एतमादखां से सूरिजी के बारे में पूछा तो उसने जबाब दिया "हां हुजूर जानता हूं, वे एक सच्चे फकीर हैं, वे इक्का, गाड़ी, घोड़ा आदि किसी भी सवारी में नहीं बैठते है। वे हमेशा पैदल ही एक गांव से दूसरे गांव जाते हैं। पैसा नहीं रखते, औरतों से बिल्कुल दूर रहते हैं। और अपना सारा समय खुदा की बन्दगी में और लोगों को धर्मोपदेश देने में गुजारते है[1]। इस तरह एतमादखां से सूरिजी की प्रशंसा सुनकर जैसे

1. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 81 पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोक पक्षी सूर्य को चाहते हैं ऐसे ही अकबर को हीरविजयसूरिजी से मिलने की बड़ी ही तमन्ना हुई।

अकबर ने स्वयं हीरविजयसूरिजी को एक विनती पत्र लिखा, एक आदेश पत्र गुजरात के सूबेदार साहब खां को भी लिखा कि सूरिजी को ससम्मान यहां लाया जावे और दो जैन श्रावकों को बुलाकर उनसे सूरिजी को विनीत पत्र लिखने को कहा। यह पत्र देकर उसने दो मेवड़ाओं[1] (मोदी और कमाल) को गुजरात सूबेदार साहबखां के पास अहमदाबाद भेजा। साहबखां ने अहमदाबाद के प्रसिद्ध नेता जैन समाज के गृहस्थों को बुलवाया और उन्हें बादशाह का पत्र दिया तथा अपना पत्र पढ़कर सुनाया। अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए साहबखां ने कहा "शहंशाह जब इतनी इज्जत के साथ श्री हीरविजयसूरिजी को बुला रहा है तब उन्हें जरूर जाना चाहिये तुम्हें भी खास तरह से उन्हें आगरा जाने के लिए अर्ज करना चाहिए यह ऐसी इज्जत हैं कि जैसी आज तक बादशाह की तरफ से किसी को भी नहीं मिली है। सूरीश्वर जी के वहां जानें से तुम्हारे धर्म का गौरव बढ़ेगा और तुम्हारे यश में भी अभिवृद्धि होगी। इतना ही नहीं हीरविजयसूरि की शिष्य परम्परा के लिए भी उनका यह प्राथमिक प्रवेश बहुत ही लाभदायक रहेगा। इसलिए किसी तरह की हां ना किये बिना हीरविजयसूरि को बादशाह के पास जाने के लिए आग्रह के साथ विनति करो। मुझे आशा है कि वे जाकर बादशाह पर अपना प्रभाव डालेंगे और बादशाह से अच्छे-अच्छे काम करवायेगें"[2] अहमदाबाद के श्रावक साहबखां की बात सुनकर और उसें यह आश्वासन देकर कि सूरिजी को हम गन्धार से यहां ले आते हैं, चले गये। अहमदाबाद के श्री संघ ने खम्भात के श्रीसंघ को सूचना दी। खम्भात के श्रीसंघ ने अपनी तरफ से संघवी उदयकरण, पारिख राजिया, राजा श्रीमल्ल[3] आदि को गन्धार भेजा। खम्भात, अहमदाबाद और गन्धार के मुख्य-मुख्य श्रावक तथा

---

1. इन मेवाड़ाओं के बारे में अबुलफजल ने लिखा है कि "वे मेवात के रहने वाले हैं और दौड़ने वाले के नाम से प्रसिद्ध है। जिस चीज की जरूरत होती है, वे बड़े दूर से उत्साह के साथ ले आते है। वे उत्तम जासूस हैं। वे बड़े-बड़े जटिल काम भी कर दिया करते हैं। ऐसे एक हजार हैं जो हर समय आज्ञा पालने के लिए तत्पर रहते हैं।
आइन-ए-अकबरी एच. ब्लौच मैन द्वारा अनुदित पृष्ठ 262

2. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 86-87

3. वही पृष्ठ 87

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी, विमल हर्ष उपाध्याय और अन्य प्रधान मुनि विचार विमर्श के लिए इकट्ठे हुए। अहमदाबाद के श्रीसंघ ने बादशाह का पत्र जो साहबखां के नाम आया था, और आगरे के जैन श्रीसंघ का पत्र सूरिजी को दिया एवं सभी समाचारों से अवगत कराया।

सभी एकत्रित श्रावक, आचार्य एवं मुनियों के बीच बादशाह के द्वारा भेजे गये हीरविजयसूरिजी के आमन्त्रण पर विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ कि सूरिजी को बादशाह के निमन्त्रण पर फतेहपुर सीकरी स्वयं जाना उचित है या बादशाह को धर्मोपदेश लाभ के लिए स्वयं यहीं आना चाहिये। किसी भी विषय पर सभी की सम्मति एक हो, यह बात न आज तक हुई है, न होती है और न ही होगी। यही समस्या इस समय भी खड़ी थी सभी ने अपने-अपने मत दिये विभिन्न मतभेद होने पर सूरिजी ने अपना निर्णायक मत इस प्रकार दिया—

"महानुभावों मैंने अब तक आप सबके विचार सुने। जहां तक मैं समझता हूं, अपने विचार प्रकट करने में किसी का आशय खराब नहीं है। सबने लाभ के ध्येय को सामने रखकर ही अपने विचार प्रकट किये हैं अब मैं अपना विचार प्रकट करता हूं।

अपने पूर्वाचार्यों ने मान अपमान की कुछ भी परवाह न कर राज दरबार में अपना पैर जमाया था और राजाओं को प्रतिबोध दिया था, इतना ही क्यों? उनसे शासन हित के बड़े बड़े कार्य भी करवाये थे। इस बात को हरेक जानता है कि आर्य महागिरी ने सम्प्रति राजा को, बप्पभट्टी ने आमराजा को, सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य राजा को और कलिकाल सर्वज्ञ प्रभु श्री हेमचन्द्राचार्य ने कुमारपाल राजा को, इस तरह अनेक पूर्वाचार्यों ने अनेक राजाओं को प्रतिबोध किया था। उसी का परिणाम है कि इस समय भी हम जैन धर्म की जाहोजलाली देखते हैं भाईयों, यद्यपि मुझमें उन महान आचार्यों के समान शक्ति नहीं है मैं तो केवल उन पूज्य पुरुषों की पदधूलि के समान हूं तथापि उन पूज्य पुरुषों के पुण्य प्रताप से "यावद बुद्धि बलोदयं" इस नियम के अनुसार शासन सेवा के लिए जितना हो सके उतना प्रयत्न करने को मैं अपना कर्तव्य समझता हूं अपने पूज्य पुरुषों को तो राज्य दरबार में प्रवेश करने में तो बहुत सी कठिनाईयां झेलनी पड़ी थीं लेकिन हमें तो सम्राट स्वयं बुला रहा है। इसलिए उसके आमंत्रण को अस्वीकार करना मुझे अनुचित जान पड़ता है। तुम इस बात को भली प्रकार समझते हो कि हजारों बल्कि लाखों मनुष्यों को उपदेश देने में जो लाभ होता है। उसकी अपेक्षा कई गुना ज्यादा लाभ एक राजा को, सम्राट को उपदेश देने में है कारण गुरु की कृपा से सम्राट के हृदय में यदि एक बात भी बैठ जाती है तो हजारों ही नहीं बल्कि लाखों मनुष्य उसका अनसरण करने लग जाते हैं। यह ख्याल भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठीक नहीं है कि जिसको गरज होगी वह हमारे यहाँ आयेगा, यह विचार शासन के लिए हितकर नहीं है। संसार में ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो अपने आप धर्म करते हैं उत्तोमोत्तम कार्य करते हैं। धर्म इस समय लंगड़ा है, लोगों को समझा-समझाकर युक्तियों से धर्म साधन की उपयोगिता उनके हृदयों में जमा जमाकर, यदि उनसे धर्म कार्य कराये जाते है तो वे करते हैं। इसलिए हमें शासन सेवा की भावना को सामने रखकर प्रत्येक कार्य करना चाहिए। शासन सेवा के लिए हमें जहां जाना पड़े वहीं निःसंकोच होकर जाना चाहिए। परमात्मा महावीर के अकाट्य सिद्धान्तों का घर-घर जाकर प्रचार किया जायेगा, तभी वास्तविक शासन सेवा होगी। "सवी जीवकरूं शासन रसी" (संसार के समस्त जीवों को शासन के रसिक बनाऊं) इस भावना का मूल उद्देश्य क्या है? हर तरह से मनुष्यों को धर्म का, अहिंसा धर्म का अनुरागी बनाने का प्रयत्न करना इसलिए तुम लोग अन्यान्य प्रकार के विचार छोड़कर मुझे अकबर के पास जाने की सम्मति दो, यही मेरी इच्छा है।"[1]

सन्तों महात्माओं से विचार विमर्श करने के उपरान्त जैन मुनि हीरविजय-सूरि ने बादशाह सलामत के दरबार में जाना स्वीकार किया। यह भी परिलक्षित होता है कि मूर्धन्य विद्वान सन्त स्वेच्छाचारी नहीं थे यद्यपि वे अपनी रूचि अनुसार ही राजदरबार गये किन्तु जैन सघ में विचार विमर्श करने के उपरान्त अपना मत दिया।

(जैन सन्तों पर राजाश्रय का पूर्वकाल से ही प्रभाव मिलता है यहां भी सन्त मुनि धर्म के प्रसार के उद्देश्य से राजा के निमन्त्रण को स्वीकार करते हैं।)

सूरिजी के उपदेश को सुनकर सभी ने उन्हें हर्ष पूर्वक जाने की अनुमति दे दी।

सूरिजी मार्ग शीर्ष कृष्णा सप्तमी सम्वत् 1638 (सन् 1581) को गन्धार से बिहार कर अहमदाबाद आये अहमदाबाद पहुंचने पर वहां के सूबेदार साहब खां ने सम्राट द्वारा लिखे गये पत्र के आदेशानुसार उन्हें वे सभी चीजें भेंट करनी चाही लेकिन सूरिजी ने जैन धर्म के अपरिग्रह व्रत के नियमानुसार सभी कुछ ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। कुछ दिन अहमदाबाद में रुककर फतेहपुर सीकरी की ओर बिहार कर दिया। फतेहपुर सीकरी पहुंचने से पहले सूरिजी सोनानेर के उपाश्रय में ठहरे। उनके साथ के प्रमुख मुनियों ने सूरिजी को वहीं छोड़कर, बादशाह का मन्तव्य जानने के लिए सीकरी की ओर बिहार किया और वहां पहुंचकर यह सन्देश दिया कि सूरिजी बादशाह के आमन्त्रण पर

---

1. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 90-91

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांगानेर पधार चुके हैं। बादशाह ने मुनियों का स्वागत कर उनके साधु-स्वभाव एवं त्यागी होने का कारण पूछा। यथेष्ठ उत्तर मिलने पर बादशाह सन्तुष्ट हुआ और उनके गुरु हीरविजयसूरिजी से मिलने की इच्छा और भी तीव्र हो गई। बादशाह का मन्तव्य जानकर मुनियों ने कुछ श्रावकों को सूरिजी के पास भेजा कि बादशाह सूरिजी के दर्शन और धर्मोपदेश सुनने के लिए चातक पक्षी की तरह आतुर है कोई अन्य कार्य नहीं है। ज्येष्ठ सुदी तेरस सम्वत् 1639 (सन् 1582) को सूरिजी फतेहपुर सीकरी पहुंचे। जब सूरिजी सिंह द्वार पर थे अबुलफजल ने बादशाह को यह शुभ समाचार सुनाया कि अभी तक आप जिनसे मिलने की उत्कण्ठा में थे, वे ही आज पधार चुके हैं। लेकिन शायद कुछ कार्य व्यवस्था या अन्य किसी कारण से अकबर ने उस समय सूरिजी से भेंट करने में असमर्थता जाहिर की। उस दिन की सूरिजी की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी अबुलफजल को सौंप दी गई।

यहां एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जिनसे मिलने के लिए अकबर चातक पक्षी की तरह आतुर था वही जब फतेहपुर में सिंह द्वार तक आ जाते हैं तो बादशाह कार्य व्यस्तता का बहाना कर मिलने से इन्कार कर देता है आखिर ऐसा क्या कारण हो सकता है? ऐसा लगता है कि यह बादशाह के मदिरा व्यसन का परिणाम था क्योंकि इसी व्यसन के कारण अनेक अविवेकी व्यवहार हो जाते हैं और बादशाह में यह दुर्गुण था कि जब उसे मदिरापान की इच्छा होती थी तब वह महत्वपूर्ण कार्यों को छोड़ देता था, यहां तक कि चाहे कितनी भी ऊंची श्रेणी के मनुष्य को मिलने के लिए बुलाया होता तो उससे भी न मिलकर अपनी शराब पीने की इच्छा को पूर्ण करता था। इसलिए उस दिन बादशाह सूरिजी से न मिल सके स्मिथ ने लिखा है—"बादशाह को उनसे (हीरविजयसूरिजी से) वार्तालाप करने का अवकाश मिला तब तक वे अबुलफजल के पास बैठाये गये थे"[1]।

भव्यानन्दजी का कहना है अबुलफजल ने सूरिजी से कुशल क्षेम पूछने के बाद धर्म सम्बन्धी अनेक बातें पूछी। कुरान और खुदा के विषय में नाना प्रकार के जबाव सवाल किये जिनका उत्तर सूरिजी ने बड़ी गम्भीरता से युक्ति

---

8. "The weary traveller was received with all the pomp of imperial pageantry, and was made over to the care of Abul Fazl until the sovereign found leisure to converse with him."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगत प्रमाणों द्वारा खण्डन-मंडन करते हुए दिया। सूरिजी के विचारों से अबुलफजल बहुत प्रभावित हुआ"[1] भानुचन्द्र गणिचारित से भी इस बात का विवरण मिलता है कि अकबर से पहले सूरिजी की भेंट अबुलफजल से हुई। "मृतों का पुनरुत्थान" और "मुक्ति" इन दो प्रश्नों पर दोनों में चर्चा हुई। सूरिजी ने ईश्वर का वास्तविक स्वरूप बताया और कहा कि सुख दुख का देने वाला ईश्वर नहीं बल्कि जीव में कर्म है। अबुलफजल सूरिजी के विद्वतापूर्ण तर्कों से बहुत प्रभावित हुआ[2]।

बादशाह ने अपने काम से निवृत हो दरबार में आते ही सूरिजी को अबुलफजल द्वारा बुलवाया। सूरिजी अपने तेरह साधुओं के साथ दरबार में पधारे। अद्भुत फकीर के रूप में आते हुए गुरुदेव को देखते ही बादशाह ने सविनय सिर झुकाकर नमन पूर्वक शिष्टाचार के साथ गुरुराज के पीछे अपने दरबार में जाने के लिए कदम उठाया। महल में जाने पर बादेशाह ने रत्नजड़ित सिंहासन पर सूरिजी से बैठने की प्रार्थना की इस पर सूरिजी ने कहा कि प्रायः इनके नीचे कोई चींटी आदि सूक्ष्म जीव हो तो वजन से मर न जाये, इसलिए जैन शास्त्रों में केवली सर्वज्ञों ने अहिंसावादियों के लिए वस्त्राच्छादित जगह पर पांव रखने की भी मनाही की है। हमारा आचार है कि चलना हो, बैठना हो तो अपनी नजर से देखकर चलना बैठना जिससे किसी जीव को दुख न हो। धर्मशास्त्र भी फरमाते हैं "दृष्टि पुतं न्यसेत पादम"

मनुस्मृति में भी लिखा है कि "शरीर पीड़ित होने पर भी दिन में व रात्रि में जीवों की रक्षा के लिए सदा भूमि देखकर चलना चाहिए"[3]

बादशाह सूरिजी की जीवों के प्रति ऐसी दया देखकर आश्चर्य चकित हुआ और मन ही मन हंसा भी कि यहां रोज सफाई होने पर इसके नीचे जीव कैसे आ सकते हैं? ऐसा विचार करते ही गलीचे को एक तरफ से थोड़ा उठाया। तो बहुत सी चींटियां दिखाई दीं उन्हें देखते ही बादशाह घोर आश्चर्यचकित रह गया। उसके बाद स्वर्णमयी कुर्सी पर बैठने के लिए आग्रह किया तो सूरिजी ने

---

1. जगदगुरु हीर–मुमुक्षु भव्यानन्दजी पृष्ठ-52
2. भानुचन्द्र गणिचरित भूमि का लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 6
3. संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधांचरेत॥
मनुस्मृति संस्कृत टीका पं. रामेश्वर भट्ट अध्याय 6 श्लोक 68

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तर दिया कि त्यागियों के लिए धातु का स्पर्श करना सख्त मना है। अब बाद-ह असमंजस में पड़ गया कि सूरिजी को कहां बिठाये कि इतने में सूरिजी ही अपना ऊनी आसन बिछाकर शिष्यों सहित बैठ गये। बादशाह भी सूरिजी सामने ही यथोचित आसन पर बैठ गया। कुशलक्षेम पूछने के पश्चात् बादशाह ो पूछे जाने पर सूरिजी ने जैन धर्म के बड़े-बड़े तीर्थों के नाम शत्रुंजय, गिरनार, ू सम्मेत शिखर और अष्टापद आदि बताये अब अकबर ने जिस उद्देश्य सूरिजी को बुलाया था यानि धर्मोपदेश के लिए, उन्हें चित्रशाला के कमरे ले गया। सामान्य उपदेश के बाद बादशाह ने सूरिजी से ईश्वर और खुदा भेद पूछा। सूरिजी ने बताया कि ईश्वर और खुदा में नाम मात्र के अलावा तात्विक कोई भेद नहीं है। और वास्तव में देखा जाये तो यह भेद भी जीवों कल्याण के लिए ही है क्योंकि विचित्र रूपा खलु चित्त वृत्तयः अर्थात् जीवों की त्तवृत्तियां अनेक प्रकार की हैं। कोई किसी नाम से खुश रहता है तो कोई सी नाम से। इसी तरह महापुरुषों के भी अनेक नाम हैं। देव, महादेव, शिव कर, हरि, ब्रह्मा, परमेष्टी, स्वयंभू, त्रिकालविद, भगवान, तीर्थंकर, केवली, नेश्वर, अशरीरी, वीतराग आदि ईश्वर के अनेक नाम हैं इन नामों के अर्थ तो किसी को विवाद नहीं सिर्फ नामों में ही विवाद है ईश्वर 18 दूषणों से हित होता है, ईश्वर प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, या, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति अरति, परपरिवाद, यामृषावाद, मिथ्यात्वशल्य, इन अठारह दूषणों में से एक भी दूषण होने पर उसे श्वर नहीं कहा जायेगा। अन्त में सूरिजी ने ईश्वर का संक्षिप्त स्वरूप इस र बताया कि—

"जिसमें क्लेश उत्पन्न करने वाला "राग" नहीं है शांति रूपी काष्ट को ने वाली अग्नि के समान "द्वेष" नहीं है। शुद्ध सम्यग् ज्ञान को नाश करने ा और अशुभ आचरणों को बढ़ाने वाला "मोह" नहीं है और तीन लोक में जो ामय है वही "महादेव" है, जो सर्वज्ञ है, शाश्वत सुख का भोक्ता है और ने सब तरह के कर्मों को क्षय करके मुक्ति पाई है तथा परमात्म पद को त किया है वही "महादेव" अथवा "ईश्वर" है। दूसरे शब्दों में कहें तो ईश्वर होता है जो जन्म, और मृत्यु से रहित होता है। जिसके रूप, रस गन्ध, और नहीं होते है और जो अनन्त सुख का उपभोग करता है"[1]।

बादशाह के पूछने पर कि ईश्वर एक है या अनेक? सूरिजी ने बताया कि

---

1. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 116-117

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वर एक भी है और अनेक भी। संसार से जो व्यक्ति कर्मों का क्षय करके मुक्ति में जाते हैं वह व्यक्ति रूप जाने से ईश्वर अनेक है जब संसार से मुक्त होने पर वे सभी आत्मायें स्वरूप से एक हो जाती हैं तो उस दृष्टि से ईश्वर एक है। ईश्वर का स्वरूप जान लेने से स्पष्ट है कि ईश्वर पुनः संसार में जन्म नहीं लेते क्योंकि उनके सारे कर्म छूट जाते हैं जब सब कर्म छूट जाते हैं तभी यह आत्मा ईश्वर बनती है, ईश्वर की कोई इच्छा नहीं होती, जब इच्छा नहीं होती तो किसी कार्य में प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती। इसलिए जैन धर्म के सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर किसी चीज को बनाते नहीं किसी को सुख-दुख नहीं देते। संसार के जीव जो सुख दुख भोग रहे हैं। वे अपने कर्मों के अनुसार भोगते हैं।

यद्यपि ईश्वर की किसी काम में प्रवृत्ति नहीं होती फिर भी उसकी उपासना करना परम आवश्यक है। उपासना उसकी करना चाहिए जो इस संसार से मुक्त हो गया हो, फल प्राप्ति का आधार देना लेना नहीं हैं, जिस तरह दान देने वाला जिसे दान देता है उससे फल नहीं पाता, किन्तु दान देने के समय उसकी सद्भावना ही फल होती है, उसी तरह ईश्वर की उपासना करने के समय जो हमारा अन्त करण शुद्ध होता है, वही उत्तम फल है, इसलिए ईश्वर की उपासना करना चाहिए। ईश्वर का स्वरूप बताने के बाद सूरिजी ने "गुरू" का स्वरूप इस प्रकार बताया—

"गुरू वे ही होते हैं जो पांच महाव्रतों— अहिंसा, सत्य, अस्तय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करते हैं, भिक्षावृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते हैं, जो स्वभाव रूप सामायिक में हमेशा स्थिर रहते हैं और जो लोगों को धर्म का उपदेश देते हैं गुरू के इन संक्षिप्त लक्षणों का जितना विस्तृत अर्थ करना हो, हो सकता है अर्थात् साधू के आचार, विचारों और व्यवहारों का समावेश उपर्युक्त पांच बातों में हो जाता है। गुरू में दो बातें जो सबसे बड़ी हैं-तो होनी ही चाहिए वे हैं—

1—स्त्री संसर्ग का अभाव।

2—मूर्च्छा का त्याग।

जिसमें ये दो बातें न हो वह गुरू होने या मानने योग्य नहीं होता। इन बातों की रक्षा करते हुए गुरू को अपने आचार व्यवहार पालने चाहिए गुरू लिए और भी बातें कही गई है वह अच्छे स्वादु और गरिष्ठ भोजन का बार-बा उपयोग न करें, दुस्सह कष्ट को भी शान्ति के साथ सहें, इक्का गाड़ी, घोड़ा, ऊ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथी, और रथ आदि किसी भी तरह के वाहन की सवारी न करे। मन, वचन और काम से किसी जीव को कष्ट न दे, पांचों इन्द्रियां वश में रखे, मान अपमान की परवाह न करे, स्त्री पशु और नपुंसक के सहवास से दूर रहे, एकान्त स्थान में स्त्री के साथ वार्तालाप न करे, शरीर सजाने की ओर प्रवृत्त न हो, यथाशक्ति सदैव, तपस्या करता रहें, चलते फिरते उठते बैठते और खाते पीते, प्रत्येक क्रिया में उपयोग रखे रात में भोजन न करें, मन्त्र, यन्त्रादि से दूर रहें और अफीम वगैरह के व्यंजनों से दूर रहें। ये और इसी तरह अनेक दूसरे आचार साधू और गुरू को पालने चाहिए। थोड़े शब्दों में कहें तो "गृहस्थानां यदभूषणं।" (ग्रहस्थों के लिए जो भूषण है साधूओं के लिए वही दूषण रूप है)।[1]

इस तरह देव, गुरू का स्वरूप जानने के बाद धर्म की उत्पत्ति और धर्म के लक्षण के विषय में पूछा। सूरिजी ने बताया कि जैन धर्म का सिद्धान्त कहता हैं कि धर्म की कभी उत्पत्ति नहीं होती, धर्म तो अनादि काल से चला आया है। धर्म तो धर्मी में उसी प्रकार रहता है जैसे गुण गुणी में रहता है। शास्त्रों के अनुसार "वस्थु सहावो धम्मो" अर्थात् जिस वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है तो वही अग्नि का धर्म है, पानी का स्वभाव शीतलता है तो वही पानी का धर्म है। इसी प्रकार आत्मा का धर्म है— सच्चिदानन्दमयता अथवा ज्ञान, दर्शन और चरित्र।

संसार की ऐसी कोई भी चीज जिससे हृदय शुद्ध हो, एवं पवित्रता हो, कर्मों का क्षय हो, आत्मा का विकास हो वह सब धर्म है। दान देना ब्रह्मचर्य पालन करना दूसरे की सेवा करना, अहिंसा और संयम का पालन करना यह सब धर्म है। सार रूप में सूरिजी ने धर्म का लक्षण इस प्रकार बताया—

"संसार में अज्ञानी मनुष्य जिस धर्म का नाम लेकर क्लेश करते हैं, जिस धर्म के द्वारा मनुष्य मुक्त बनना और सुख लाभ करना चाहते हैं उस धर्म में क्लेष नहीं हो सकता है। वास्तव में धर्म वह है जिससे अन्तःकरण की शुद्धि होती है (अन्तःकरण शुद्धित्वं धर्मत्वम्) वह शुद्धि चाहे किन्ही कारणों से हो। दूसरे शब्दों में कहें तो धर्ध वह है जिससे विषय वासना से निवृत्ति होती है। (विषय निवृत्तित्वम्) यह धर्म का लक्षण है दूसरे, इसमें क्लेश को कहां अवकाश है? इन लक्षणों वाले धर्म को मानने से क्या कोई इन्कार कर सकता है? कदापि नहीं। संसार में असली धर्म यही है और इसी से इच्छित सुख मुक्ति सुख प्राप्त हो सकता है।"[2]

---

1. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 117-118
2. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 118-119

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम दिन की भेंट के अन्त में सूरिजी ने बादशाह को आत्मा के स्वरूप के बारे में बताया कि "आत्मा एक शाश्वत स्वतन्त्र द्रव्य है उपादान के अभाव में इसकी उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती, जिसकी उत्पत्ति नहीं उसका विनाश भी नहीं है। गीता में कृष्ण ने कहा है जो नहीं है, वह पैदा नहीं हो सकता। जो है उसका नाश नहीं हो सकता तत्त्वदर्शियों ने असत् और सत् का यही हार्द माना है।"[1]

आत्मा का मुख्य लक्षण ज्ञान है। वह किसी भी योनि में ज्ञान व अनुभूति शून्य नहीं होती। ज्ञान एक ऐसा लक्षण है जो इसे जड़ पदार्थों से सर्वथा पृथक्कर देता है। अपने ही अर्जित कर्मों के अनुसार वह जन्म और मृत्यु की परम्परा में चलती हुई नाना योनियों में वास करती है वह सदैव अमर है उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता जैसा कि कृष्ण ने भी कहा है—"जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को उतारकर नवीन वस्त्रों को धारण करता है उसी प्रकार (आत्मा) जीर्ण शरीर को छोड़ती है और नये शरीरों को प्राप्त करती है। आत्मा को शास्त्र नहीं छेद सकते, न उसे अग्नि ही जला सकती है। न उस पर पानी का असर होता है और न ही हवा का अर्थात् पानी उसे आर्द्र नहीं कर सकता और हवा उसे सुखा नहीं सकती।[2]

आत्मा तो अपने ही पुरुषार्थ से कर्म परम्परा का उच्छेद कर सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेती है जहाँ उसका चिन्मय स्वरूप प्रकट हो जाता है।

आत्मा संकोच-विकोच स्वभाव वाली होती है। उसके असंख्य प्रदेश होते हैं जो सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थान में भी समा जाते हैं और फैलने पर सारे विश्व को भी भर सकते हैं। सकर्म आत्मायें शरीर परिमाण आकाश का अवगाहन करती है। हाथी और चींटी की आत्मा समान है अन्तर केवल इतना ही है कि वह हाथी के शरीर में व्याप्त है और वह चींटी के शरीर में। मृत्यु के बाद हाथी की आत्मा

---

1. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः
   उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः
   श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 2, श्लोक 16
2. वासंसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
   तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
   नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
   न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।
   श्रीमद्भगवद् गीता ध्याय 2, श्लोक 22-23

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि चींटी की योनि में आती है तो संकोच स्वभाव से उसके शरीर में पूरी पूरी समा जाती है उसका कोई अंश बाकी नहीं रह जाता। इसी प्रकार अब चींटी की आत्मा हाथी का भव धारण करती हैं तो उसकी आत्मा हाथी के शरीर में पूरी तरह व्याप्त हो जाती है। शरीर कहीं खाली नहीं रहता।

प्रत्येक आत्मा कृत कर्मों का नाश कर परमात्मा बन सकती है। समस्त आत्मायें अपने आप में स्वतन्त्र हैं वे किसी अखण्ड सत्ता की अंश रूप नहीं है। जन्म मरण शील संसार के उस पार पहुंचना उसका ध्येय है। यह शरीर एक नाव है, जीव नाविक और संसार समुद्र। इसी संसार समुद्र को महर्षिजन पार करते हैं।

बादशाह के पूछने पर कि कर्म मुक्त आत्मा कैसे संस्थान करती है? सूरिजी ने कहा जब आत्मा कर्मों का क्षय कर सर्वथा मल रहित होकर सिद्धि को पा लेती है तब लोक के अग्रभाग पर स्थित होकर वह शाश्वत सिद्ध हो जाती है। जैनागमों में कहा गया हैं "जो आत्मा है वही विज्ञाता है, वही आत्मा है जो इसे स्वीकार करता है वह पण्डित है, वह आत्मवादी है।"[1]

बादशाह ने पूछा कि सुख दुख क्यों होते हैं? सूरिजी ने बताया सुप्रयुक्त और दुष्प्रयुक्त आत्मा अपने आप ही सुख दुख का कर्ता और विकर्ता है, और अपने आप ही मित्र और अपने आप ही अमित्र है। अयत्नपूर्वक बोलता हुआ जीव प्राणी और भूतों की हिंसा करता है और पाप कर्म बांधता है उसका फल उसे कटु मिलता है।

आत्मा, जीव, चेतन सब एक ही शब्द हैं। आत्मा का मूल स्वरूप सच्चिदानन्दमय हैं। आत्मा ईश्वर की तरह अरूपी है लेकिन ईश्वर और आत्मा में इतना ही फर्क है कि ईश्वर निरावरण है और आत्मा आवरण सहित। इन आवरणों को जैन शास्त्र में कर्म कहते हैं। आत्मा के ऊपर कर्म चिपके होने से यह आत्मा नीचे रहती है। जैसे तुंबे का स्वभाव तो पानी में तैरने का है यदि उसके ऊपर मिट्टी और कपड़े का लेप कर उसे खूब वजनदार बना दिया जाये तो वही तुंबा पानी में तैरने के बजाय डूब जायेगा, ठीक यही दशा इस आत्मा की है।

आत्मा के साथ कर्मों का बन्धन होने से ही आत्मा को परिभ्रमण करना

---

1. ऐ आया से विन्नाया। जे विन्नाया से आया। जेण विजाणति से आया तंपडुच्च परिसंखायए एस आयावादी समियाए परियाए वियाहितेत्तिबेमि आचारांग सत्रम श्रुतस्कन्ध प्रथम पृष्ठ 84-85

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ता है। जैन धर्म के अनुसार आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से है। अनादिकाल से आत्मा के साथ राग-द्वेष लगा हुआ है, लेकिन जिस प्रकार खान में माटी और सोना मिले होने पर भी उसे प्रयोगों द्वारा अलग-अलग किया जा सकता हैं। कर्म और आत्मा अलग होने से आत्मा अपने असली शुद्ध स्वरूप में आ जाती है। इस तरह बादशाह ने सूरिजी के मुख से देव, गुरु, धर्म और आत्मा के विषय में ज्ञान प्राप्त कर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अगले दिन बादशाह ने अहिंसा और दया पर सूरिजी से चर्चा की अहिंसा के बारे में बताते हुए सूरिजी ने कहा अहिंसा जैन धर्म का मूल तत्व है जो कोई प्राणी हिंसा करता है, वह नरक में पड़ता हैं। चार कारणों से जीव नरक योग्य कर्म बांधता है। महारम्भ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय वध और मांसाहार। हिंसा अथवा मांसाहार तो दूर उससे सम्बन्धित पुरुष भी जैन शास्त्रों मे पाप का भोगी बताया गया है। मारने वाला, मांस खाने वाला, पकाने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, अनुमति देने वाला तथा दाता ये सभी घातक हैं।

मनुस्मृति में भी लिखा है कि "सम्मत्ति देने वाला, काटने वाला, मारने वाला, मोल लेने और बेचने वाला, पकाने वाला, लाने वाला और खाने वाला ये घातक होते हैं[1] अतः हे राजन् मन वचन और काया में से किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के जीवों की हिंसा न हो ऐसा व्यवहार ही संयमी जीवन है। नित्य अहिंसा व्यापार बर्तना उचित हैं। ज्ञानी के ज्ञान का सार यह है कि वह किसी की हिंसा नहीं करता।

"एक यह भी विचार करने की बात है कि एक पक्षी को मारने वाला एक ही जीव का हिंसक नहीं है किन्तु नेक जीवों का हिंसक है, क्योंकि जिस पक्षी की मृत्यु हुई है यदि वह स्त्री जाति हैं और उसके छोटे छोटे बच्चे हैं तो वे मां के मर जाने से क्या जिन्दा रह सकते है, कभी नहीं। एक और सोचने की बात है कि खुदा दुनियां का पिता है तब दुनियां के बकरी, ऊंट, गौ वगैरह सभी प्राणियों का वह पिता हुआ तो फिर वह खुदा अपने किसी पुत्र के मारने में खुश किस तरह होगा ? अगर हो तो उसे पिता कहना उचित नहीं। इसलिए बकरा, ईद के रोज जो मुसलमान लोग हिंसा करते हैं, कितना अत्याचार करते हैं।"[2]

---

1. अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता, क्रय विक्रयी।
   संस्कर्ता, चोपहर्ता, च खादकश्चेति घातकः
   मनुस्मृति–पण्डित रामेश्वर भट्ट अध्याय 5 श्लोक 51
2. जैनदगुरूहीर— मुमुक्षु भव्यानन्द विजय पेज 73

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री हीरविजयसूरिजी बादशाह अकबर को धर्मोपदेश देते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"क्योंकि जो पुरुष अपने सुख की इच्छा से अहिंसक प्राणियों को मारता है जीता हुआ और मरा हुआ कहीं भी सुख नहीं पाता है।"[1]

"महाभारत के अनुशासन पर्व में शंकरजी पार्वती की शंका का समाधान ते हुए कहते है" कि "जो पराये मांस से अपने मांस को बढ़ाना चाहता है वह ां कहीं भी जन्म लेता है वहीं उद्वेग में पड़ा रहता है।"[2]

मनुष्य विविध प्राणों की हिंसा में अपना अनिष्ट देख सकने में समर्थ है र उसका त्याग करने में समर्थ है। जो मनुष्य अपने दुख को जानता है वह हर के दुख को भी जानता है, जो बाहर का दुख जानता है वह अपने दुख को जानता है। शांति प्राप्त संयमी-असंयमी जीवन की इच्छा नहीं करते। वे तो ि का विचार कर पाप को दूर से ही इस तरह छोड़ देते हैं जिस तरह मृगादि ंबी में विचरने वाले जीव सिंह से सदा भयभीत रहते हुए एकान्त में चरते हैं। ात के हर प्राणी को अपने समान ही समझना चाहिए। आचारांग सूत्र में भी ा है—हे पुरुष। जिसे तू मारने की इच्छा करता है वह तेरे ही जैसा सुख-दुख अनुभव करने वाला प्राणी है जिस पर हुकूमत करने की इच्छा करता है, वार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे दुख देने का विचार करता है, वार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है, वारकर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है।

सत्पुरुष इसी तरह विवेक रखता हुआ, जीवन बिताता है, न किसी को रता है और न किसी का घात करता है।

जो हिंसा करता है, उसका फल वैसा ही पीछे भोगना पड़ता है, अतः वह सी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे"[3]

---

1. यो हिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया
   स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥
   मनुस्मृति पण्डित रामेश्वर भट्ट उपाध्याय 5 श्लोक 45
2. स्वमांस परमांसेन, यो वर्धयितुमिच्छति,
   उद्विग्नवास लभते लभते यत्र यत्रोपजायते
   महाभारत—भाग 6 अनुशासन पर्व पृष्ठ 5990
3. तुमंसि नाम तंचेव, जं हंतव्वंति मन्नसि। तुमंसि नाम तं चेत जं अज्जावेयव्वंति मन्नसि। तुमंसि नामत चेव, जं परितावेयव्वंति मन्नसि। तुमंसि नाम तंचेव जं परिघेतव्वंति मन्नसि। एवं तुमंसि नाम तंचेव, जं उद्दवेयव्वंति मन्नसि। अजू चेयपडिबुद्धजीवी तम्हा हंता, णविघाए, अणुसंवेयण—मप्पाणेणं, जं जंतव्वं णाभिपत्थए।
   आचारांग सूत्रम् श्रुतस्कंध प्रथम पृष्ठ 84 पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन विचारों की पुष्टि महाभारत से भी होती है "जैसे अपने मांस काटना अपने लिए पीड़ाजनक होता है, उसी तरह दूसरे का मांस काटने पर भी पीड़ा होती है। यह प्रत्येक विज्ञपुरुष को समझना चाहिए"[1]

वैसे भी देखा जाये तो जितने मांसाहारी प्राणी हैं उन सभी के स्वभाव और मनुष्य जाति के स्वभाव में बहुत अन्तर है। सिंह, बाघ, कुत्ते आदि मांसाहारी प्राणी हैं ये सब जीभ द्वारा पानी पीते हैं, क्या मनुष्य भी इस प्रकार पानी पीता हैं ? नहीं। मांसाहारी प्राणियों के दांत स्वाभाविक ही टेढ़े वक्र के होते हैं जबकि मनुष्य के दांत वैसे नहीं होते। मांसाहारी प्राणियों की जठराग्नि इतनी तेज होती है कि उनको मांस का पाचन हो जाता है, मनुष्यों की जठराग्नि वैसी नहीं होती। सच बात तो यह है कि मांस खाने वाले मनुष्यों का पेट, पेट नहीं है किन्तु एक प्रकार का कब्रिस्तान है। मरे हुए जीवों को पेट में डालना इसका नाम कब्रिस्तान नहीं तो और क्या है ?

आइये, जरा एक नजर इस पर भी डालें कि क्या इस तरह के मांसाहारी धर्म क्रिया करने के योग्य हो सकते हैं ?

तात्विक दृष्टि से देखा जाये, तो मांसाहार करने वाला मनुष्य इतना अपवित्र होता है कि वह किसी प्रकार की धर्मक्रिया करने के योग्य हो ही नहीं सकता क्योंकि सभी दर्शनकारों का धर्मानुयायिओं का यह नियम हैं कि जब तक शरीर में अपवित्रता हो तब तक उससे किसी प्रकार की धर्मक्रिया नहीं हो सकती पातक विचार जो कि सब धर्म वालों को मान्य है उसका यह नियम है कि यदि धर्म स्थान के नजदीक किसी जानवर का कलेवर पड़ा हो तो उस धर्म स्थान में भी तब तक धर्म क्रिया नहीं हो सकती जब तक उस मृत कलेवर को वहां से न हटाया जाये। ऐसी स्थिति में यह विचारणीय हैं कि जो मनुष्य मांस भक्षण करते हैं वे प्रभु भक्ति या अन्य किसी प्रकार की धर्म क्रिया करने का अधिकार कैसे रख सकते हैं शास्त्रकारों का तो कथन है कि—"मृत स्पृशेत् स्नानमाचरेत्।" मुर्दे को छुओ तो स्नान करो। अब जो मनुष्य मांस खाता है वह मुर्दे को ही पेट में डालता है, तब फिर वह स्नान कैसे करेगा ? और स्नान करने से उसकी शुद्धि भी कैसे होगी ? यदि पवित्रता न होगी तो ईश्वर भक्ति, संध्या, जप, अर्था धार्मिक क्रियायें कैसे करेगा ? इस बात को गुरुनानक साहब ने भी 'गुरु ग्रंथ साहब

---

1. संछेदन स्वामांसस्य यथा संजनयेद् रूजम।
तथैव परमांसेऽपि वेदतिव्यं विजानता॥
महाभारत भाग 6 अनुशासन पर्व पृष्ठ 5990

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कहा है कि "कपड़े पर खून का दाग पड़ने से शरीर अपवित्र माना जाता है तो यही खून पेट में जाने से चित्त निर्मल कैसे हो सकता है।"[1] बाहर की अपवित्रता, खून का दाग तो पानी से भी दूर हो सकता है, परन्तु हृदय की अपवित्रता पानी से दूर नहीं हो सकती। अतः आत्मकल्याण चाहने वालों को तो आहार से सर्वथा दूर ही रहना चाहिए।

यह कथन न केवल हिन्दुओं अथवा मुसलमानों के लिए अपितु समस्त मांसाहारियों के लिए हैं क्योंकि प्रायः सभी धर्म वाले अपने-अपने शास्त्रों में दिखलायी धर्मक्रिया करते ही हैं। मुसलमान नमाज पढ़ने के समय कपड़े शुद्ध रखते हैं, पैर धोते हैं इस प्रकार बाहर की शुद्धि तो हो जाती है, किन्तु मांस के आहार अन्तःकरण की शुद्धि कैसे हो? जरा इस पर भी विचार करके देखें।

इस तरह सूरिजी ने अहिंसा के बारे में विस्तार से वर्णन किया तथा अकबर कई जगह अपनी शंकाओं का समाधान भी किया। अन्त में अहिंसा का सार बताते हुए सूरिजी ने बताया कि अहिंसा सब प्राणियों का हित करने वाली माता समान है और अहिंसा ही सार रूप मरू देश में अमृत की नाली के तुल्य है या दुख रूप दावानल को शान्त करने के लिए वर्षाकाल की मेघ पंक्ति के समान और भव भ्रमण रूप महारोग से दुखी जीवों के लिए परम औषधि की तरह है अहिंसा समस्त व्रतों में भी मुकुट के समान है।

अहिंसा के फल का वर्णन करने में जुबां तो समर्थ हो ही नहीं सकती। महाभारत में भी कहा है—"हे कुरुपुंगव! अहिंसा के फल का कहां तक वर्णन करें, यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष तक उसका वर्णन करे तो भी सम्पूर्ण रीति से वह वर्णन के लिए समर्थ नहीं हो सकता।"[2]

आगे जैन धर्म में दया के महत्व को बताते हुए सूरिजी ने बताया कि "सकल जननी दया" धर्म की माता दया है। सूरिजी ने अहिंसा और दया में अन्तर स्पष्ट करते हुए बादशाह को कहा कि "किसी को तकलीफ नहीं देना, मारना सताना नहीं, उसके दिल में चोट पहुंचाना नहीं, यह अहिंसा है लेकिन इस

---

1. जे रत्त लग्गे कप्पड़े, जामा होय पलीत्त
जो रत्त पीवें मानसा, तिन किमे निर्मल चित्त
गुरु ग्रन्थ साहब—पृष्ठ 140

2. एतत् फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुंगव
न ही शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि।
महाभारत—भाग 6 अनुशासन पर्व पृष्ठ 5862

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा का पालन कौन करेगा ? जिसके हृदय में दया होगी वहीं । इसलिए दय यह अन्तःकरण के भावों का नाम है । दुखी को देखकर के अपने हृदय में दय होना, यह दया है । अथवा मेरे इन शब्दों पर दूसरों को दुख होगा ऐसा विचा होना उसी का नाम दया है। इस तरह अहिंसा और दया पर सूरिज के विचार सुनकर बादशाह उनके प्रति जन्म—जन्मान्तर के लिए आभार हो गया ।

तत्पश्चात् बादशाह और सूरीजी के बीच धार्मिक चर्चा हुई जिसका विस्तृत विवरण हीर सौभाग्य काव्य के सर्ग 13 एवं 14 में मिलता है। इस चर्चा से बादशाह.....

बादशाह को विश्वास हो गया कि सूरिजी कोई असाधारण महापुरुष हैं इसलिए उसने सूरिजी से पूछा–"मेरी मीन राशि में शनिचर की दशा बैठी है लोगों का कहना है कि यह दशा बहुत कष्ट देने वाली होती है आप ऐसी कृपा करें जिससे यह दशा मिट जाये । इस पर सूरि जी ने कहा यह ज्योतिष का विषय है जबकि मेरा विषय धर्म है इसलिए मैं इस विषय में कुछ भी कहने में असमर्थ हूं बादशाह ने कहा मेरा ज्योतिष के साथ सम्बन्ध नहीं है आप मुझे कोई ऐसा ताबीज, यन्त्र मन्त्र दो जिससे मुझे इस ग्रह से शान्ति मिले, सूरिजी ने कहा, वो भी हमारा काम नहीं है। आप सब जीवों पर रहम नजर कर अभयदान दोगे तो आपका भला होगा निसर्ग का नियम है कि दूसरे की भलाई करने वालों की अपनी भलाई होती है । इस तरह बहुत अनुनय, विनय करने पर भी जब सूरिजी अपने आचार के विपरीत कार्य करने को तैयार न हुए तो बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ ।

सूरिजी के चरित्र और पांडित्य का बादशाह पर गहरा प्रभाव पड़ा । बादशाह के पास पदमसुन्दर नामक साधु का ग्रन्थालय था उसने सूरिजी से उन पुस्तकों को ग्रहण करने की प्रार्थना की । सूरिजी ने मना किया मगर बादशाह के बहुत आग्रह करने पर पुस्तकें लेकर अकबर के नाम से आगरा में पुस्तकालय की स्थापना कर उन पुस्तकों को वहां रख दिया"[1] सूरिजी ने कहा जब हमें पुस्तकों की जरूरत होगी, तब हम पुस्तकें मंगवा लेगें । सूरीवर जी का ऐसा त्याग देखकर बादशाह के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा ।

इस तरह बादशाह और सूरिजी की प्रथम भेंट समाप्त हुई, तत्पश्चा सूरिजी चातुर्मास के लिए आगरा पधारें । पर्यूषण के दिन निकट आ

---

1. विजयप्रशस्ति काव्य—पण्डित हेमविजयगणि सर्ग 9 श्लोक 42

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगरा के प्रमुख श्रावक सूरिजी की सम्मति ले पर्यूषणों में जीव हिंसा बन्द के लिए बादशाह के पास गये। बादशाह ने पूछा कि सूरिजी ने मेरे लिए आज्ञा दी है तो श्रावकों ने कहा कि बादशाह ने पर्यूषणों में जीव हिंसा बन्द के लिए निवेदन किया है। बादशाह ने आठ दिन तक हिंसा बन्द रहे इस का फरमान लिख दिया। सम्वत् 1639 (सन् 1582) के पर्यूषण के आठ के लिए यह घोषणा हुई थी।[1] हीर सौभाग्य काव्य और जगद्गुरु काव्य में उल्लेख नहीं है। कल्याण विजयजी की तपागच्छ पट्टावली में इन आठ दिनों विवरण मिलता है[2]

सम्वत् 1639 (सन् 1582) का चतुर्मास पूर्ण होने पर सूरिजी शौरीपुर की यात्रा करके पुनः आगरा गये। इसी समय की भेंट में बादशाह ने सूरिजी से अपने कल्याण के लिए कोई सेवा याचना की। सूरिजी जो उद्देश्य लेकर गन्धार से चले थे उसे पूरा करने के लिए हमेशा अवसर की तलाश में रहते थे। इस समय भी सुअवसर देखकर सूरिजी ने बादशाह से पिंजडों में बन्द पक्षियों को मुक्त करने के लिए कहा। बाहशाह ने सूरिजी के इस अनुरोध का पालन किया और साथ ही फतेहपुर सीकरी के डाबर तालाब में मछलियां न पकड़ने का हुक्म जारी किया। इस बात का उल्लेख "हीरविजय सूरिरास, भानुचन्द्र गणिचरित और जैन एतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में भी मिलता है[3]

हीरसौभाग्य काव्य में देवविमल गणि ने भी इसकी पुष्टि की है कि डाबर तालाब जो अनेक प्रकार की मछलियों से भरा हुआ था, मछलियां पकड़ने का निषेध कर दिया[4]

किन्तु हीरसौभाग्य में इस पद्य की टीका में श्रीदेव विमलजी ने ही प्रेरणा स्वरूप श्री शान्तिचन्द्र जी का नाम लिखा है, स्वयं शान्तिचन्द्र मुनि ने अपने "कृपारस कोष" नामक काव्य में श्री हीरविजयसूरि जी की प्रेरणा से किये गये

---

1. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 123
2. तपागच्छ पट्टावली—कल्याण विजयजी पृष्ठ 232
3. हीरविजयसूरिरास—प. ऋषभदास पृष्ठ 128, ढाल पांचवी,
   भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 7,
   जैन एतिहासिक गुर्जर काव्य संचय श्री जैन आत्मानन्द सभा भावनगर पृष्ठ 201
4. हीरसौभाग्य काव्य सर्ग 14, श्लोक 195

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबर के सत्कार्यों की गणना प्रसंग में ही डाबर सरोवर में मीनों के अभयदान का वर्णन किया है[1]

इसी समय अवसर पाकर सूरिजी ने बादशाह को पर्यूषणों के आठ दिनों में सारे राज्य में जीव हिंसा बन्द करने का फरमान निकालने का उपदेश दिया। सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने अपने कल्याण के लिए उनमें चार दिन और जोड़कर (भादवा वदी दसमी से भादवा सुदी छठ तक) बारह दिन के लिए फरमान लिख दिया, इस फरमान की छः नकलें करवाकर इस प्रकार भेजी—

1—गुजरात और सौराष्ट्र
2—दिल्ली, फतेहपुर आदि
3—अजमेर, नागौर आदि
4—मालवा और दक्षिण देश
5—लाहोर और मुल्तान
6—सूरिजी को सौंपी गई[2]

हीरविजय सूरिरास और जगद्गुरु हीर में भी इसका वर्णन मिलता है[3] फरमान देते हुए अकबर ने सूरिजी से कहा कि मेरे अनुचर मांसाहार और मद्यपान के प्रेमी हैं, उन्हें जीव हत्या बन्द करने की बात एकदम से रुचिकर नहीं लगेगी, इसलिऐ मैं धीरे-धीरे बन्द कराने की कोशिश करूंगा। पहले की तरह मैं भी शिकार नहीं करूंगा और ऐसा प्रबन्ध कर दूंगा कि प्राणीमात्र को किसी तरह की तकलीफ न हो।

सूरिजी के विवेक पर बादशाह इतना मुग्ध हुआ कि उसने सोचा कि ये तो जैन गुरू न होकर जगद्गुरू हैं अतः उसने सारी प्रजा के समक्ष गुरूदेव को जगद्गुरू की पदवी दे दी। इस समय बादशाह ने महान उत्सव मनाया।

एक दिन बीरबल के हृदय में सूरिजी की ज्ञान शक्ति मापने की इच्छा हुई। बादशाह की रजा लेकर उसने सूरिजी से पूछा कि क्या शंकर सगुण हैं? सूरिजी ने जवाब दिया— हां शंकर तो सगुण है बीरबल ने कहा मैं तो शंकर को निगुंण मानता हूं। इस पर सूरिजी ने पूछा क्या तुम शंकर को ईश्वर मानते हो? बीरबल द्वारा ज्ञानी बताये जाने पर सूरिजी ने फिर प्रश्न किया कि ज्ञानी का मतलब क्या है? बीरबल ने बताया ज्ञानी का मतलब ज्ञान वाला है। सूरिजी ने कहा

1. कृपारस कोष—शान्तिचन्द्रगणि श्लोक 110
2. सूरिश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पेज 128
3. हीरविजयसूरिरास पेज 128, जगद्गुरुहीर पृष्ठ 83-84

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को गुण बताते हो ? बीरबल ने कहा ज्ञान को तो मैं गुण ही मानता हूं। तो हीरजी ने कहा जब तुम ज्ञान को गुण मानते हो तो तुम्हारी मान्यतानुसार ही यह सिद्ध हो जाता है कि ईश्वर "सगुण" है।

जगद्गुरू श्री मद्विजय हीरसूरिजी महाराज ने अकबर के अत्याग्रह से सम्वत 1640 (सन 1583) का चातुर्मास फतेहपुर सीकरी में ही किया। धर्मोपदेश द्वारा जनता को सचेत किया। सूरिजी के उपदेश से प्रभावित होकर बादशाह ने सारे राज्य में अहिंसा पलाने की घोषणा कर दी। इससे जैन धर्म की करुणा का प्रवाह सब दिशाओं में फैल गया। चातुर्मास के बाद अकबर के आग्रह से उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी को वहीं छोड़कर सूरिजी बिहार करके आगरा होते हुए मथुरा के प्राचीन जैन स्तूपों की यात्रा करते हुए ग्वालियर पहुंचे। नाथूराम प्रेमी ने हीरविजय सूरिजी के बारे में लिखा है' कि "मुगल बादशाह अकबर के समय हीरविजयसूरि नाम के एक सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हुए हैं। अकबर उन्हें गुरूवत् मानता था। संस्कृत और गुजराती में उनके सम्बन्ध में बीसों ग्रन्थ लिखे गये हैं इन ग्रन्थों में लिखा है कि हीरविजयजी ने मथुरा से लौटते हुए गोपाचल (ग्वालियर) की बावनगजी भव्याकृति मूर्ति के दर्शन किये।" और यह मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदाय की है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इससे मालूम होता है कि बादशाह अकबर के समय तक भी दोनों सम्प्रदायों में मूर्ति सम्बन्धी विरोध तीव्र नहीं था। उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्य तक नग्न मूर्तियों के दर्शन किया करते थे[1]

सम्वत् 1641 (सन् 1584) का चातुर्मास अभिरामाबाद करने के बाद भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए गांव-गांव घूमते हुए सूरिजी पुनः आगरा आये। श्री संघ के आग्रह पर सम्वत 1642 (सन 1585) का चातुर्मास आगरा में ही किया। बादशाह आगरा में जगद्गुरू के दर्शन करने गया वहां जनता की बढ़ती हुई सद्भावना देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। इसी समय सूरिजी ने बादशाह से "जजिया" कर बन्द करने का अनुरोध किया। यद्यपि अकबर ने गद्दी पर बैठने के नौ वर्ष बाद ही अपने राज्य में "जजिया" कर लेना बन्द कर दिया था लेकिन अभी गुजरात में यह कर लिया जाता था क्योंकि गुजरात उस समय अकबर के अधिकार में नहीं था। सूरिजी के अनुरोध करने पर बादशाह ने इस कर को उसी समय बन्द कर दिया। हीरसौभाग्यकाव्य की टीका से भी यह बात सिद्ध होती है। इसी पुस्तक के 14 वें सर्ग के 271 वें श्लोक की टीका में लिखा है कि

---

1. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी पृष्ठ 246

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जेजियाकाख्यो गौर्जर कर विशेष:"[1] अर्थात् गुजरात का विशेष कर जजिया।

इससे यह सिद्ध होता है कि सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने जजिया बन्द करने का जो फरमान दिया, वह गुजरात के लिए था। जैन एतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में भी शत्रुन्जय व गिरनार में "जजिया" तीर्थयात्री कर बन्द करने का उल्लेख है[2]

जब गुजरात के पवित्र बड़े-बड़े तीर्थ स्थानों की रक्षा के लिए सूरिजी ने बादशाह से अनुनय किया तो इस बारे में जगद्गुरू हीर के लेखक लिखते हैं कि "इस प्रकार जगद्गुरू के दयामय वचन सुनकर तुरन्त ही बादशाह ने अपने फरमान में गुजरात के शत्रुन्जय, पावापुरी, गिरनार, सम्मेतशिखर और केसरियाजी आदि जो जैन सम्प्रदाय के पवित्र तीर्थ हैं उनमें से किसी तीर्थ पर कोई भी मनुष्य अपनी दखल गिरी न करे और कोई जानबूझकर किसी जानवर की भी हिंसा न करे। ये सब तीर्थ स्थान जगद्गुरू श्रीमद्विजय हीरसूरिजी महाराज को सौंपे गये हैं। ऐसा फरमान अकबर ने लिखकर सूरिजी के कर कमलों में सादर सविनय समर्पण कर दिया[3]

इस तरह सूरिजी के उपदेश स बादशाह ने अपने व जगत के कल्याणार्थ अनेक कार्य किये। बादशाह जो पांच पांच सौ चिड़ियों की जीभें नित्य प्रति खाता था। सूरिजी के उपदेश से मांसाहार से नफरत करने लगा। मेड़ता के रास्ते पर बादशाह ने जो हजीरे बनवाये थे, हरेक हजीरे पर हरिणों के पांच-पांच सौ सींग लगवाये थे स्वयं बादशाह के शब्दों में"—

"देखे हजीरे हमारे तुम्ह, एक सौ चऊद कीए वें हम्म।
अकेके सिंग पंच से पंच पातिग करता नहीं खलखंच॥[4]

बदायूंनी ने भी लिखा हैं "प्रतिवर्ष बादशाह अपनी अत्यन्त भक्ति के कारण उस नगर (अजमेर) जाता था और इसीलिए उसने आगरे और अजमेर के बीच में स्थान-स्थान पर जहां-जहां मुकाम होते थे महल और एक-एक कोस की दूरी पर एक कुंआ और एक स्तम्भ (हजीरा) बनवाया था[5]

---

1. हीरसौभाग्य काव्य—पण्डित देवविमलगणि सर्ग 14, श्लोक 271
2. जैन एतिहासिक गुर्जर काव्य संचय—श्री जैनआत्मानन्द सभा भावनगर पृष्ठ 201
3. जगद्गुरू हीर मुमुक्षु भव्यानन्द जी पृष्ठ 89
4. हीरविजय सूरिरास पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 131
5. अलबदायूंनी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 176

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस हिसाब से भी अकबर द्वारा हजीरे बनवाने का ऋषभदास का कथन सत्य प्रतीत होता है। इस तरह शिकार करके अनेक जीवों को मारने वाले बादशाह ने सूरिजी के वचनामृत से पाप कार्य करने छोड़ दिये।

इतना ही नहीं, बादशाह ने चित्तौड़ की लड़ाई में जो घोर नरसंहार किया उसका पश्चाताप करते हुए कहा कि "मैंने ऐसे पाप किये हैं ऐसे आज तक किसी ने नहीं किये होंगे जब मैंने चित्तौड़गढ़ जीत लिया उस समय राणा के मनुष्य, हाथी, घोड़े मारे थे इतना ही नहीं चित्तौड़ के एक कुत्ते को भी नहीं छोड़ा था। ऐसे पाप से मैंने बहुत से किल्ले जीते हैं लेकिन अब मैं भविष्य में इस तरह के दुष्कार्य न करने की प्रतिज्ञा करता हूं।

सूरिजी ने जो उद्देश्य लेकर गन्धार से बिहार किया था, उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली अतः अब उन्होंने बिहार करने का निश्चय किया वैसे भी साधुओं को ज्यादा समय तक एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए क्योंकि एक कवि ने कहा है—

बहता पानी, निर्मला बन्धा सो गन्दा होय।
साधू तो रमता भला, दाग न लागे कोय॥

हीरविजय सूरिरास में ऋषभदास ने भी लिखा है—

स्त्री पीहर, नरसासरे, संयमियां थिरवास।
ऐ त्रणये अलखामणा, जो मन्डे थिरवास॥[1]

अतः सूरिजी ने बादशाह के सामने बिहार करने की इच्छा प्रकट की बादशाह ने धर्मोपदेश के लिए सूरिजी को और समय देने का आग्रह किया लेकिन सूरिजी के दृढ़ निश्चय के सामने बादशाह को उन्हें गुजरात की ओर बिहार करने अनुमति देनी ही पड़ी। बादशाह ने सूरिजी से अन्तिम अर्ज किया कि समय-समय पर मेरे योग्य सेवा कार्य फरमाते रहें और आप जैसे गुरूदेव का भी फर्ज कि मेरे जैसे अधम सेवक को न भूलें।

आचार्य हीरविजयसूरिजी अपने कार्यों द्वारा भारतीय इतिहास में अमर हैं। का जीवन स्फटिक जैसा उज्जवल और उनका त्याग, तप, अखण्ड ब्रह्मचर्य, दित्य सूर्य की किरणों जैसा जाज्वल्यमान हैं उन्होंने अकबर को ही नहीं अपितु रात, काठियावाड़ तथा राजस्थान के अन्य राजाओं को भी ओजस्वी वाणी रा बहुत प्रभावित किया।

---

1. हीरविजय सूरिरास – पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 141

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी—

सम्वत् 1642 (सन् 1585) का चातुर्मास पूर्ण होते ही आचार्य हीर विजयसूरि गुजरात की ओर बिहार कर गये लेकिन बादशाह के आग्रह पर अपने विद्वान शिष्य शान्तिचन्द्र जी को नवपल्लवित पौधे की रक्षा के लिए वहीं छो गये।[1]

शांतिचन्द्र जी जगद्गुरू के विरह से खिन्न प्राणियों को अपने उपदेशामृत द्वारा सान्तवना देने लगे। और बादशाह से भी विद्वदगोष्ठी करने लगे। एक किंवदन्ती है कि एक समय अकबर बादशाह और उपाध्याय शांतिचन्द्र जी परस्पर विनोद की बातें कर रहे थे उस वक्त अकबर ने कहा कि महाराज। कुछ चमत्कार तो दिखलाओं उत्तर में उपाध्याय जी ने कहा कि चमत्कार देखना चाहते हैं तो मेरे साथ आपके बगीचे में चलिये। तुरन्त ही अकबर और उपाध्याय बगीचे में गये वहां पर उपाध्याय जी ने अकबर को उसके पिता हुमायूं आदि सात दाद-प्रदादाओं के दर्शन करवाये। अकबर बड़े आश्चर्य में पड़ गया और उसके हृदय में जैन धर्म के प्रति अटल श्रद्धा हो गई।

निःसन्देह शांन्तिचन्द्र जी बड़े भारी विद्वान और एक साथ एक सौ आठ अवधान करने की अद्भुत शक्ति धारण करने वाले अप्रतिम प्रतिभावान थे सूरिजी के बिहार के बाद शान्तिचन्द्र जी निरन्तर बादशाह के पास जाने लगे और विविध प्रकार का सदपदेश देने लगे। बादशाह उनकी विद्यवता से बड़ा खुश हुआ और उन पर अनुरक्त होता गया। बादशाह के सौहार्द एवं औदार्य प्रसन्न होकर शान्तिचन्द्र जी ने अकबर की प्रशंसा में "कृपारस कोष" की रचना की। बादशाह ने जो दया के कार्य किये थे। इस कोष में उन्हीं का वर्णन है ये काव्य वे बादशाह को सुनाते थे। अकबर इस "कृपारस कोष" का श्रवण द्वारा पान कर बहुत तृप्त हुआ इस ग्रन्थ के अन्त के 126–27 के पद्यों में स्पष्ट लिखा है—"बादशाह ने जो जजिया कर माफ किया, उद्धत मुगलों से ज मन्दिरों का छुटकारा हुआ, कैद में पड़े हुए कैदी जो बन्धन रहित हुए, साधारण राजगण भी मुनियों का जो सत्कार करने लगा, साल भर में छः महीने तक जीवों को अभयदान मिला और विशेष कर गायें, भैंसे, बैल और पांडे आदि जो पशु कसाई की प्राणनाशक छुरि से निर्भय हुए" इत्यादि शासन की उन्न

---

1. जगदगरू हीर—मुमुक्षुभव्यानन्द जी पृष्ठ 92 पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगत प्रसिद्ध जो-जो कार्य हुए उन सब का कारण यही ग्रन्थ (कृपारस है।[1]

बादशाह जब लाहौर में था तब शान्तिचन्द्र जी भी वहीं थे "ईद" त्यौहार एक दिन पहले वे बादशाह के पास गये और वहाँ से बिहार करने की इजाजत गी बादशाह द्वारा कारण पूछे जाने पर शान्तिचन्द्र जी ने कहा कि कल "ईद" दिन लाखों जीवों का वध होगा जिसका क्रन्दन सुन नहीं सकूंगा, इसलिए मैं ना चाहता हूं। साथ ही अवसर का लाभ उठाते हुए शान्तिचन्द्र जी ने उसी समय बादशाह को कुरान शरीफ की कई आयतें ऐसी बताई जिनका अभिप्राय था हर जीव पर दया रखनी चाहिये।

शान्तिचन्द्र जी ने बताया कि बकरा ईद तथा ऐसे ही अन्य प्रसंगों में प्राणियों की हिंसा करना खुदा के फरमान के बिल्कुल विपरीत है। कुरान शरीफ में ऐसा वर्णन है कि खुदा सभी जीवों का जन्मदाता है, जो जन्म देता है वह अपनी ही आज्ञा से क्यों मरवायेगा? खुदा ने तो सब जीवों पर रहम रखने का फर्मान दिया है जैसा कि कुरान शरीफ के शुरू में ही कहा गया है कि बिस्मिल्लाह रहिमान्नुर रहीम" जिसका तात्पर्य है कि सब जीवों पर रहम रखो।

यदि जीवों की कुर्बानी उचित होती तो धर्म स्थानों और तीर्थ स्थानों में क्यों उसकी मनाही की जाती? कुरान शरीफ में कहा गया है कि "मक्का में उसकी हद तक किसी को किसी जानवर को नहीं मारना चाहिये और अगर कोई भूल से मारे, तो उसके बदले में अपना पाला हुआ जानवर छोड़ना चाहिए, अथवा दो समझदार मनुष्य जो उसकी कीमत ठहरावें, उतनी कीमत का खाना गरीबों को खिलाया जावे।

---

1. यज्जीजिआकर निवारणमेष चक्रे
यो चैत्यमुक्तिमपि दुर्दममुद्गलेभ्यः।
यद्बन्दिबन्धन महाकुरुते कृपाण्डणे।
यत्सत्करोत्यवमराजयंषो यतीन्द्रान ॥26॥
यज्जन्तुजातमभयं प्रतिभाषटकं
यत्त्वाजनिष्ट विभयः सुरभीसमूहः।
इत्यादिशासन समुन्नतिकारणेषु।
ग्रन्थोऽयमेव भवति स्म परं निमित्तम् ॥27॥
कृपारस कोष—उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी श्लोक 126-27

कुरान शरीफ में तो यहां तक कहा गया है कि मक्का शरीफ की यात्रा को जब से जाओ तब से जब तक वापिस न लौटो तब तक रोजा रखो। जानवरों को मारो मत और धर्म के जो खास-खास दिन गिनाये गये हैं उन दिनों मांस मत खाओ। यदि जीवों का संहार करने में धर्म होता तो धर्म ग्रन्थ कुर्बानी करने की क्यों मनाही करते ?

कुरान शरीफ में स्पष्ट लिखा है कि "खुदा तक न गोश्त पहुंचता है और न खून बल्कि उस समय तक कुम्हारी परहेजगारी पहुंचती है[1] कुरान के सूर-ए-अनआम में लिखा है कि "जमीन में जो चलने फिरने वाला (हैवान) या दो पैरों से उड़ने वाला जानवर है। उनकी भी तुम लोगों की तरह जमायतें हैं।"[2]

शान्तिचन्द्र जी ने बताया कि अन्जाने में किसी जीव की हिंसा हो जाये तो ईश्वर माफ कर देगा लेकिन जानबूझ कर गलत काम करने वालों को कभी माफ नहीं किया जाता जैसा कि कुरान में भी लिखा है "खुदा उन्हीं लोगों की तौबा कबूल फरमाता है। जो नादानी से बुरी हरकत कर बैठते हैं फिर जल्द तौबा कर लेते हैं ऐसे लोगों पर खुदा मेहरबानी करता है। वह सब कुछ जानता है और हिकमत वाला है। ऐसे लोगों की तौबा कबूल नहीं होती। जो (सारी उम्र) बुरे काम करते है यहां तक कि जब उनमें से किसी की मौत आ मौजूद हो तो उस वक्त कहने लगे कि अब मैं तौबा कबूल करता हूं।"[3]

ये प्रमाण हमें यही दिखला रहे हैं कि सब जीवों पर रहम दृष्टि रखो। किंवदन्ती है कि एक समय काबुल के अमीर हिन्दुस्तान की यात्रा को आये। उस समय "ईद" का त्यौहार मनाने वे देहली पधारे। वहां के मुसलमानों ने उनके हाथ से कुर्बानी कराने के लिए कई गायें इकट्ठी कीं। मुसलमान समझते थे कि अमीर साहब हम पर प्रसन्न होंगे किन्तु अमीर साहब ने मुसलमानों की इस तैयारी को देखकर कहा कि कुरान में तो गायों की कुर्बानी की आज्ञा है ही नहीं। गौ-वध इस ख्याल से भी नहीं करना चाहिए क्योंकि हिन्दू हमारे पड़ौसी हैं और गौ-वध से उनके दिल में दुख होगा जबकि कुरान में स्पष्ट फर्मान है कि अपने पड़ौसियों के साथ हिल मिल कर रहो फिर मैं गौ-वध करके कुरान की आज्ञा का उल्लंघन क्यों करूं।

---

1. कुरान-शरीफ—सूर-ए-अल-हज्ज आयत 37
2. वही सूर-ए-अनआम आयत 38
3. कुरान-शरीफ—सूर-ए-निशा आयत 17-18

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह सुबुक्तगीन के स्वप्न की बात भी सर्वविदित है कि वह एक साधारण स्थिति का मुसलमान था, किन्तु था बड़ा दयालु। खुद दरिद्र होते हुए किसी को दुखी देखकर उसकी सहायता करने को तैयार रहता था। एक दिन घोड़े पर चढ़कर जंगल में घूमने गया। वहां उसने एक हिरन के बच्चे को तो उसे अपने घोड़े पर ले लिया। बच्चे की मां कुछ ही दूरी पर घास खा थी। जब उसने देखा कि मेरे बच्चे को एक आदमी लिये जा रहा है तो वह घोड़े के पीछे पीछे चलने लगी। बच्चे के वियोग में उसका चेहरा उतर गया। सुबुक्तगीन को उसके दर्द का अहसास हुआ। उसने सोचा अगर यह हिरनी बोल सकती होती तो जरूर बच्चे को छोड़ने की प्रार्थना करती। मूक पशु के दर्द को समझते ही उसने बच्चे को धीरे से नीचे रख दिया। हिरनी बड़े आनन्द पूर्वक बच्चे को प्यार करने लगी इस दृश्य को देखकर सुबुक्तगीन को लगा कि यह हिरनी मुझे आशीर्वाद दे रही है।

इसी रात सुबुक्तगीन ने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में मानो हजरत मुहम्मद खुद उसके पास जाकर कह रहे हैं कि सुबुक्तगीन तूने आज हिरनी और उसके बच्चे पर जो दया दिखाई है इससे खुदा तेरे पर बहुत प्रसन्न हुए हैं, उनकी इच्छा है तू राजा होगा। और जब तू राजा हो तब भी तू दुखियों पर उसी प्रकार दया करना, वैसा करने में खुदा तेरे पर हमेशा खुश रहेंगे। सचमुच कुछ दिन के बाद सुबुक्तगीन राजा हुआ।

मुसलमानों में दया सम्बन्धित इतने प्रमाण मिलने के बावजूद भी क्या कारण है कि उनमें बकरे, भेड़िये एवं ऊंट वगैरह की कुर्बानी दी जाती है? आइये, जरा एक नजर इसकी मूल उत्पत्ति पर डालकर देखें तो हमें क्या रहस्य मालूम होता है—

इब्राहीम पैगम्बर जब इमान में आये तब उनके इमान की परीक्षा करने के लिए अल्लाहताला ने उनको कहा कि "तुम अपनी प्यारी से प्यारी चीज की कुर्बानी दो" तो इब्राहीम पैगम्बर ने अपने इकलौते पुत्र इस्माइल को मारने के लिए तैयार किया और अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर छुरी से जैसे ही उसे मारने लगते हैं, वैसे ही अल्लाहताला की कुदरत से लड़के के स्थान पर एक भेड़ (दुम्बा) आकर खड़ा हो गया। वह कट गया और लड़का बच गया। बाद में अल्लाहताला ने उस दुम्बे को भी जिन्दा कर दिया।

इस कथा से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिये कि इब्राहीम पैगम्बर ने ने लड़के के बदले दुम्बे को मारा तो दुम्बे अथवा बकरे की बलि देना उचित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। कथा का आशय तो यह है कि अल्लाहताला ने इब्राहीम पैगम्बर की परीक्षा लेने के लिए इस प्रकार का प्रयत्न किया था। अब क्या अल्लाहताला ने हुक्म दिया है जैसा कि इब्राहीम पैगम्बर को दिया था। यदि ऐसा है तो इब्राहीम पैगम्बर की तरह ही अपने पुत्र की बलि देने को तैयार होना चाहिए बाद में अल्लाहताला की मरजी उस लड़के को हटाकर बकरा अथवा दुम्बा जो चीज रखने की होगी, रख लेंगे। शुरू में क्यों निर्दोष एवं मूक पशुओं को कुर्बानी के लिए तैयार कर दिया जाये।

यद्यपि हीरविजयसूरिजी से मिलने के बाद बादशाह इस बात से परिचित था कि जीव हिंसा से घोर पाप होता है कुरान शरीफ में जीव हिंसा की आज्ञा नहीं है फिर भी शान्तिचन्द्र जी के उपदेश से बादशाह ने लाहौर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कल ईद के दिन कोई आदमी किसी जीव को न मारे। इस तरह बादशाह के इस फरमान से करोड़ों जीवों के प्राण बच गये भानुचन्द्र गणिचरित में जीव हिंसा निषेध के जो दिन गिनाये गये हैं उनमें भी ईद का दिन शामिल है[1]

सूरिजी की तरह शांतिचन्द्र जी को भी बादशाह बहुत मानता था, इसलिए उनके आग्रह से बादशाह ने एक ऐसा फरमान निकाला जिसकी रूह से, बादशाह का जन्म जिस महीने में हुआ था, उस सारे महीने में, रविवार के दिनों में, संक्रान्ति के दिनों में और नवरोज के दिनों में कोई भी व्यक्ति जीव हिंसा नहीं कर सकता था[3] हीरसौभाग्य काव्य में भी इन दिनों का वर्णन मिलता है:[3]

इस तरह सब मिलाकर एक वर्ष में छः महीने, छः दिन के लिए अकबर ने अपने सारे राज्य में जीव हिंसा नहीं होने के फरमान निकाले थे[4] इन फरमानों के अलावा जजिया बन्द करने का फरमान भी ले लिया जगद्गुरू हीर में भी वर्णन मिलता है कि शान्तिचन्द्र जी के कथनानुसार जजिया कर, मृत द्रव्य ग्रहण करना कतई बन्द कर दिया और अकबर गाय, भैंस, बकरा आदि पशुओं को कसाई की छुरी से बचाने के लिए साल भर में छः महीने तक सभी जीवों को अभय

---

1. भानुचन्द्रगणिचरित भूमिका का लेखक—अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 8
2. सूरीश्वर सम्राट—कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 145
3. हीरसौभाग्य काव्य—देवविमलगणि सर्ग 14, श्लोक 273-274
4. सूरीश्वर सम्राट—कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 147

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन देकर अहिंसा का परम पुजारी बन गया[1]

बादशाह के ये सब कार्य कर देने पर, सूरिजी को इनकी खुशखबर देने लिए शान्तिचन्द्र जी ने अकबर से गुजरात जाने की इजाजत मांगी। ाजत मिलने पर गुजरात की ओर बिहार किया। पट्टन पहुंचकर गुरूजी दर्शन कर उन्हें बादशाह के उन सब सुकृत्यों का हाल कह सुनाया और फरमान पत्र भी उनके चरणों में भेंट किये जिनमें "जजिया" कर के उठा ने का तथा वर्ष भर में छः महीने जितने दिनों तक जीव-वध के न किये जाने का हाल और हुक्म था। शान्तिचन्द्र जी के इन कार्यों से सूरिजी उन पर बहुत प्रसन्न हुए।

3. उपाध्याय भानुचन्द्र जी—

अकबर ने इबादतखाने में अपनी सभा के सदस्यों को पांच भागों में विभक्त किया था। पांचवे भाग के अन्तिम स्थान पर भानुचन्द्र नाम अंकित है। ये भान-न्द्र को ही भानुचन्द्र के नाम से जाना जाता है।[2]

भानुचन्द्र जी की प्रखर बुद्धि देखकर हीरविजयसूरिजी ने उन्हें अकबर क दरबार में भेजा उन्हें आशा थी कि ये अपनी बुद्धि के बल पर अकबर को प्रभा-वित करके जैन संघ को लाभ पहुंचायेंगे। सूरिजी की आज्ञा से भानुचन्द्र लाभपुर (लाहौर) गये। वहां के जैन ग्रहस्थों ने उनका बहुत आदर किया और उन्हें एक पाश्रय[3] में ठहरा दिया। यहां से अकबर के मन्त्रि अबुलफजल ने भानुचन्द्र जी अपने साथ राज दरबार में ले जाकर अकबर से भेंट कराई। भानुचन्द्र जी के ात-चीत करने के ढंग तथा बुद्धिमतापूर्ण उत्तरों से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ। कबर ने भानुचन्द्र जी से प्रतिदिन दरबार में आने की प्रार्थना की। बादशाह प्रार्थना स्वीकार कर भानुचन्द्र जी प्रतिदिन दरबार में आने लगे वहां उन्हें ित सम्मान दिया जाता था। बादशाह जब कभी आगरा या फतेहपुर छोड जाता तो भानुचन्द्र जी को भी साथ ले जाता था। अकबर के समय में जो तिष्ठा इन्होंने प्राप्त की वह जहांगीर के काल में भी निरन्तर बनी रही जिसका न आगे यथास्थान किया जायेगा।

अकबर ने भानुचन्द्र जी को अपने राजकुमारों सलीम और दीनदयाल की क्षा के लिए नियुक्त किया था।

---

1. जगद्गुरू हीर—मुमुक्षुभव्यानन्द जी पृष्ठ 94-95
2. आइने अकबरी—एच. ब्लॉचमैन द्वारा अनुदित पृष्ठ 617
3. जैनों का उपासना करने का स्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरविजय सूरिरास में कवि ऋषभदास लिखते हैं—

"जांगीरसा ने दानिआर, भणे जैन शास्त्र तिहां सार
कहे अकबर गदाजी, मीर, भाणचन्द ते अबल फकीर"[1]

स्वयं अकबर भी भानुचन्द्र जी से पढ़ा करता था—इसका उल्लेख सिद्धचन्द्र उपाध्याय विरचित "भानुचन्द्र गणिचरित में मिलता है

एक बार बीरबल ने अकबर से कहा "मनुष्य के काम आने वाले फल-फूल, घास, पात आदि सब पदार्थ सूर्य ही के प्रताप से उत्पन्न होते हैं, अन्धकार को दूर कर जगत में प्रकाश फैलाने वाला भी सूर्य है इसलिए आपको सूर्य की आराधना करनी चाहिये[2] बीरबल के अनुरोध से बादशाह सूर्य की पूजा करने लगा। बदायूंनी ने भी लिखा है "दूसरा हुक्म ये दिया गया था कि सबेरे, शाम दोपहर और मध्य रात्रि में इस प्रकार दिन में चार बार सूर्य की पूजा होनी चाहिये।" बादशाह ने भी सूर्य के एक हजार एक नाम जाने थे और सूर्याभिमुख होकर भक्ति पूर्वक उन नामों को बोलता था[3] इसी तरह कई लेखकों ने लिखा है कि बादशाह को यह नाम किसने सिखाये थे ? भानुचन्द्र गणिचरित में इस बात का वर्णन इस तरह से है—"एक बार अकबर ने दरबार में रहने वाले ब्राह्मणों से सूर्य के सहस्त्र नाम मांगे, परन्तु कहीं प्राप्त नहीं हो रहे थे। भाग्यवशात् किसी बुद्धिमान ने उन्हें वे नाम दे दिये और उन्होंने वे नाम अकबर के सम्मुख प्रस्तुत किये। अकबर उन्हें देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने ब्राह्मणों से ऐसे व्यक्ति की मांग की जो इन नामों को उसे समझा सके। ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—कि इन नामों को ऐसा व्यक्ति ही समझा सकता है जिसने वासनाओं का दमन कर लिया हो, भूशायी हो तथा ब्रह्मचारी हो तब अकबर की दृष्टि भानुचन्द्र की की ओर गई, उसने कहा कि ऐसे व्यक्ति तो आप ही हैं, मुझे इन नामों को पढ़ाया कीजिये[4] इस प्रकार भानुचन्द्र जी उन्हें प्रतिदिन सूर्य सहस्त्रनाम पढ़ाने जाया करते थे। कवि ऋषभदास अपने हीरविजयसूरि रास में लिखते हैं बादशाह अपने

---

1. हीरविजयसूरिरास— पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 180
2. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 148
3. अलबदायूंनी—डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 332
4. भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 30

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काश्मीर प्रवास में भी भानुचन्द्र जी से सूर्यसहस्त्र नाम सुनने के लिए ही साथ ले गये थे[1]

दूसरा सबल प्रमाण यह भी है कि सूर्यसहस्त्रनामा की एकहस्तलिखित प्रति पूज्यपाद गुरूवर्य शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरिश्वर जी महाराज के पुस्तक भण्डार शिवपुरी में हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि बादशाह सूर्य के सहस्त्र नाम जरूर सुनता था और सुनाते थे भानूचन्द्रजी। सूर्यसहस्त्र नाम के लिये देखिये परिशिष्ट नं. 3।

एक दिन अवसर पाकर भानुचन्द्र जी ने बादशाह से कहा कि सौराष्ट्र में जो युद्धबन्दी हैं उन्हें मुक्त कर दिया जाये। बादशाह पहले तो हिचकिचाया लेकिन बाद में कैदियों को मुक्त करने का आदेश दे दिया और एक फरमान लिखकर भानुचन्द्र जी को दे दिया जिसे उन्होंने गुजरात भेज दिया[2]

उन दिनों लाहौर किले में जैन साधुओं के निवास के लिए कोई उपाश्रय नहीं था। भानुचन्द्र उपाध्याय की भी यह इच्छा थी कि किसी प्रकार कोई उपाश्रय यहां बनाना चाहिये पर उसके लिए स्थान प्राप्त करना अति दुष्कर कार्य था क्योंकि मुसलमान तथा अजैन लोग जैन धर्म से द्वेष रखते थे। तो भी भानुचन्द्रजी ने एक युक्ति सोची और उसके अनुसार वे एक दिन अकबर को पढ़ाने देर से गये। अकबर ने इसका कारण पूछा तो भानुचन्द्रजी ने इसका उत्तर दिया कि मेरे पास कोई उपयुक्त स्थान नहीं है, जो है वह अत्यन्त संकीर्ण है और दूर है इसलिये राज-दरबार में आने में कठिनाई होती हैं। अकबर ने उनके निवास के लिए अपने प्रासाद में स्थान देना चाहा पर वह भानुचन्द्र जी के अभिप्राय के अनुकूल न था, इसलिये अकबर ने उन्हें भूमि का एक टुकड़ा दे दिया। वहां स्थानीय श्रावकों ने एक उपाश्रय बनवाया तथा वहां शान्तिनाथ स्वामी का एक चैत्य भी बनवा दिया।[3] इस बात का उल्लेख हीरविजय सूरिरास में मिलता है।

बादशाह के पुत्र शहजादा सलीम के एक पुत्री मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न हुई थी, जो अत्यन्त अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करने के लिए सम्राट की इच्छानुसार सम्वत् 1648 (सन् 1591) चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को

---

1. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास, पेज 182
2. वही पेज 182
3. भानुचन्द्र जी गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पेज 30
4. हीरविजयसूरिरास पण्डित ऋषभदास श्लोक 36-37 पेज 182

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भानुचन्द्र जी के कहने से अष्ठोत्तरी शान्ति स्नान करवाया जिसमें लगभग एक लक्ष रुपया व्यय हुआ। इस घटना का विवरण भानुचन्द्र गणिचरित और हीरविजय सूरिरास में मिलता है।[1]

बादशाह के दरबार में रहकर उपाध्याय श्री भानुचन्द्रजी ने शत्रुन्जय के यात्रियों पर से "जजिया" कर हटवा दिया।[2]

हीरसौभाग्यकाव्य में इसका वर्णन मिलता है।[3]

ग्वालियर (गोपाचल) के किले में जो जैन मूर्तियां आक्रांताओं और दुष्टजनों द्वारा विकृत कर दी गई थी उनका जीर्णोद्धार आपने अकबर को कहकर उसी के राजकोष से करवाया।[4]

ग्वालियर के किले में जैन मूर्तियों के होने का समर्थन हीरसौभाग्यकाव्य से भी होता है।[5] आज भी किले के अन्दर और बाहर हजारों मूर्तियां खण्डितावस्था में पड़ी हैं। किले में वर्ष में एक बार दिगम्बर जैनों का मेला भी लगता है।

यद्यपि भानुचन्द्र जी स्वयं जैन श्वेताम्बर थे, परन्तु उन्होंने दिगम्बर जैन मूर्तियों के प्रति कोई पक्षपात नहीं प्रदर्शित किया। इससे उनकी उदार प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। श्वेताम्बरों का दिगम्बरों के प्रति इस प्रकार के व्यवहार का यह हमें प्रथम ही उदाहरण प्राप्त हुआ है। भानुचन्द्र श्वेताम्बर जैन एवं तपागच्छ के थे तथा जहांगीर ने उन्हें "तपागच्छ के प्रमुख लिखा है"[6]

भानुचन्द्रगणिचरित से यह भी ज्ञात होता हैं कि शेख अबुलफजल ने भानुचन्द्र से "षड्दर्शन समुच्चय" पढ़ने की इच्छा प्रकट की थी जिसे स्वीकार करके भानुचन्द्र ने शेख को नियमित रूप से शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शेख अबुलफजल पढ़ते समय भानुचन्द्र जी के वचनों को लिपिबद्ध करते जाते थे।[7] आइने अकबरी में जहां अबुलफजल ने भारत में प्रचलित धर्मों का वर्णन किया है वहां जैन श्वेताम्बर धर्म के सम्बन्ध में उसने लिखा हैं कि श्वेताम्बर जैन धर्म

---

1. भानुचन्द्र गणिचरित भूमिका लेखक अगरचन्द भंवरलाल पेज 30-32, हीरविजय सूरिरास पेज 183, श्लोक 38
2. भानुचन्द्र गणिचरित पृष्ठ 25 तृतीय प्रकाश, श्लोक 36-42
3. हीरसौभाग्यकाव्य श्लोक 284 सर्ग 14
4. भानुचन्द्र गणिचरित चतुर्थ प्रकाश, श्लोक 123-29
5. हीरसौभाग्यकाव्य सर्ग 14, श्लोक 251-252
6. द तुजुक-ए-जहांगीरी और मैमोरीज ऑफ जहांगीर पृष्ठ 437-454
7. भानुचन्द्र गणिचरित द्वितीय प्रकाश, श्लोक 58-60

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ज्ञान उसे श्वेताम्बर जैन साधू से ही प्राप्त हुआ है।[1] उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार ये जैन साधू भानुचन्द्र उपाध्याय ही सम्भव है। यह भी एक आश्चर्य का विषय है। कि अबुलफजल ने जैन धर्म पर एक आध स्थल को छोड़कर इतने सुन्दर ढंग से लिखा है कि विरले ही लेखक इस प्रकार लिखने में सफल हो सकते हैं।

एक बार बादशाह के सिर में असहनीय दर्द उठा। वैद्यों का इलाज व अन्य सभी प्रकार के प्रयत्न करने के बावजूद भी ठीक न हुआ। उसने भानुचन्द्र जी को बुलाकर उनका हाथ अपने सिर पर रखा। भानुचन्द्र जी के "पार्श्व मन्त्र" सुनाने से बादशाह को बड़ा आराम मिला। बादशाह को तो पहले ही भानुचन्द्र जी पर विश्वास था लेकिन इस घटना से उनका विश्वास अटल हो गया। बादशाह के स्वस्थ होने की खुशी में उमरावों ने 500 गायें खुदा को भेंट चढ़ाने के लिए एकत्रित की। जब बादशाह को इस बात का पता चला तो उसने उसी समय गायों को मुक्त करने का आदेश दिया जिससे भानुचन्द्र जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। स्वस्थ होने की खुशी में बादशाह ने भानुचन्द्र से कुछ भी मांगने को कहा तो भानुचन्द्र जी ने निवेदन किया कि "अजिया" कर हटा दिया जाये और गाय, बैल, भैंस सब जीवों की रक्षा की जाये। बादशाह ने उसी समय ऐसा फरमान लिख दिया। इस घटना का विवरण हीरविजयसूरिरास और भानुचन्द्रगणिचरित में मिलता है[2] भानुचन्द्र जी को "उपाध्याय" पद अकबर के आग्रह से दिया गया था। अकबर ने एक बार भानुचन्द्र जी के वार्तालाप से प्रसन्न होकर यह पूछा कि जैन समाज में सबसे बड़ा पद कौन सा है? भानुचन्द्र जी ने उत्तर दिया—कि सबसे बड़ा पद आचार्य है और उससे छोटा उपाध्याय है। अकबर ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित करना चाहा पर भानुचन्द्र जी ने कहा कि इस पद के मैं अभी योग्य नहीं हूं। वर्तमान समय में इस पद के योग्य आचार्य श्री हीरविजयसूरि हैं। अबुलफजल के परामर्श पर अकबर ने उन्हें "उपाध्याय पद देना चाहा तो जैन समाज के किसी प्रमुख व्यक्ति ने उन्हें सुझाया कि इसके लिए हमारे समाज के आचार्य की अनुमति आवश्यक है, आप वह हीरविजयसूरिजी मंगा लें। अबुलफजल ने एक पत्र द्वारा हीरविजयसूरिजी से अनुमति मंगवाई। हीरविजयसूरिजी ने अनुमति के साथ वासक्षेप भी भेजा इस प्रकार भानुचन्द्र उपाध्याय पद से विभूषित किये गये।[3]

---

1. आइने अकबरी एच. एस. जैरेट द्वारा अनुदित भाग 3 पृष्ठ 210
2. हीरविजयसूरीरास पेज 180-81, भानुचन्द्रगणिचरित पेज 59-60
3. भानुचन्द्रगणिचरित द्वितीय श्लोक 169-186

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस घटना का समर्थन हीरविजयसूरिरास और हीरसौभाग्य काव्य में भी होता है।

**4. उपाध्याय सिद्धिचन्द्र जी—**

जब आचार्य हीरविजयसूरिजी ने भानुचन्द्रजी को अकबर के दरबार में भेजा। तब उनके साथ सुयोग्य शिष्य सिद्धिचन्द्र जी भी थे। बादशाह उनका भी बहुत आदर करता था। ये संस्कृत और फारसी के बड़े विद्वान थे अपनी योग्यता के बल पर अकबर के दरबार में अच्छी ख्याति पाई। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से बादशाह से कई कार्य करवाये जिनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

आगरा में कुछ अजैनों ने जैनियों के विरुद्ध सम्राट के दिमाग में भरा। सम्राट ने एक आदेश द्वारा, वहां जो जैनियों का चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर बन रहा था, रुकवा दिया, मन्दिर लगभग आधा बन चुका था। तब सिद्धिचन्द्र जी ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से सम्राट द्वारा उस आदेश को निरस्त करवाया जिससे कुछ ही समय में मन्दिर का कार्य पूर्ण हुआ।[2]

एक बार बुरहानपुर में बत्तीस चोर मारे जाने थे। उस समय दया भाव से प्रेरित होकर सिद्धिचन्द्र जी बादशाह की आज्ञा लेकर स्वयं वहां गये और उन चोरों को छुड़ाया था जयदास जपो नाम का एक लाड बनिया हाथी तले कुचल कर मारा जाना था उसको भी उन्होंने छुड़ाया[3] हीरविजयसूरिरास में भी इसका वर्णन मिलता है[4] सौराष्ट्र में अजीज को–का के पुत्र खुर्रम शत्रुन्जय पहाड़ के नीचे जैन मन्दिर को नष्ट कर दिया पहाड़ी पर जो मन्दिर बना था उसे कुछ दुष्ट लोगों ने घेरकर उसे जलाने के लिए चारों ओर लकड़ियां लगा दी। विजयसेन सूरि ने सिद्धिचन्द्र जी को इस बात की सूचना दी। सिद्धिचन्द्र जी तुरन्त सम्राट के पास पहुंचे और सारी स्थिति से अवगत कराया। सम्राट ने इसे रोकने के लिए शाही फरमान दिया, जिसे तुरन्त सौराष्ट्र भेज दिया गया। इस तरह से

---

1. हीरविजयसूरिरास पेज 183-84, हीरसौभाग्य काव्य सर्ग 14 श्लोक 285-86
2. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 43
3. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पेज 157
4. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास पेज 185

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्धिचन्द्र जी ने अपनी योग्यता से तीर्थ की रक्षा की[1]

जब सलीम गुजरात का वायसराय बना तो अकबर ने उसके कार्यों में दखल ा बन्द कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां अनेक कठिनाइयां पैदा गई (पशु वध और जजिया कर आदि लिये जाने लगे) जब सिद्धिचन्द्र जी के म इस तरह का समाचार आया तो वे सम्राट के पास पहुंचे और सम्राट का ान इस ओर आकर्षित किया कि गुजरात का वायसराय किस निर्दयता से लोगों दबा रहा है जिसे सुनकर सम्राट दुखी हुआ और इनके निषेध के लिए एक खित फरमान दिया। इस तरह से सिद्धचन्द्र जी के प्रयत्नों द्वारा गुजरात के गों को अत्याचारों से मुक्ति मिली[2]

बादशाह ने सिद्धिचन्द्रजी के साधू धर्म की परीक्षा के लिये पहले तो धन म्पत्ति का लोभ दिखाया जब वे लुब्ध न हुए तब उन्हें कत्ल करा देने की धमकी परन्तु सिद्धिचन्द्र जी अपने धर्म में अटल रहे उन्होंने लोभ और धमकी का र जिन शब्दों में दिया उसे कवि ऋषभदास ने लिखा है, "इस क्ष्मी का और सुख सामग्रियों का मुझे क्या लोभ दिखाते हो, अगर आप ा राज्य देने को तैयार होंगे तो भी मैं लेने को तैयार न होऊंगा मको तुच्छ हेय समझकर छोड़ दिया उसे पुनः ग्रहण करना थूके को निगलना इन्सान ऐसा नहीं कर सकता और मौत का डर तो मुझे अपने चरित्र से डिगा सकता। आज या दस दिन बाद नष्ट होने वाला यह शरीर मुझे से बढ़कर प्यारा नहीं है[3] सिद्धिचन्द्र जी के उत्तर से बादशाह बहुत प्रभावित

इस तरह सिद्धिचन्द्र जी ने बादशाह को बहुत प्रभावित किया क्योंकि वे होने के साथ-साथ शतावधानी भी थे इसलिए बादशाह उनसे बहुत प्रसन्न था, इन्होंने वाण भट्ट की कादम्बरी (उत्तरार्ध) की टीक है उनकी योग्यता से होकर ही बादशाह ने उन्हें खुशफहम (तीव्र बुद्धि का व्यक्ति) की पदवी से षित किय. बादशाह अकबर के समय में ये 'गणि' थे इन्हें बादशाह जहांगीर य में 'उपाध्याय' पद दिया गया।

---

1. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पेज 46
2. वही पेज 46-47
3. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 85-86
4. सूरीश्वर और सम्राट पेज 157, भानुचन्द्रगणिचरित पेज 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**5. आचार्य विजयसेन सूरि—**

हम पहले कह आये हैं कि अकबर ने इबादतखाने में अपनी सभा के सदस्यों को पांच भागों में विभक्त किया था। पांचवे वर्ग के 139 वें स्थान प विजयसेन नाम अंकित है।[1] ये विजयसेन को ही विजयसेनसूरि के नाम से जाना जाता है।

जिस समय हीरविजयसूरिजी ने फतेहपुर सीकरी से बिहार किया था तो बादशाह के अनुरोध पर सूरिजी ने यह वचन दिया था कि वे विजयसेन (अपने प्रधान शिष्य) को अवश्य भेजेंगे। हीरविजयसूरिजी के बिहार के बाद शान्तिचन्द्रजी भानुचन्द्रजी और सिद्धिचन्द्रजी बादशाह के पास रहे। भानुचन्द्रजी और सिद्धिचन्द्र जी प्रायः विजसेनसूरि की तारीफ किया करते थे इसके अलावा बादशाह को भी हीरविजयसूरिजी का दिया हुआ वचन याद था। अतः संवत् 1649 (सन् 1595 में जब हीरविजयसूरि राधनपुर में थे तो बादशाह ने विजयसेनसूरि को बुलाने के लिए एक पत्र भेजा जिसका वर्णन कवि ऋषभदास ने इस प्रकार किया है—

"यद्यपि आप विरागी हैं, परन्तु मैं रागी हूं। आपने संसार के सारे पदार्थों का मोह मोड़ छोड़ दिया है इसलिए सम्भव है कि आपने मेरा मोह भी छोड़ दिया हो, परन्तु महाराज मैं आपको नहीं भूला। समय-समय पर आप मुझे कोई सेवा कार्य अवश्य बताते रहे, इससे मैं समझूंगा कि मुझ पर गुरुजी की कृपा अब भी वैसी ही है और यह समझ मुझे बहुत आनन्ददायक होगी। आपको स्मरण होगा कि रवाना होते समय आपने मुझे विजयसेन सूरि को यहां भेजने का वचन दिया था, आशा है कि आप उन्हें यहां भेजकर मुझे विशेष उपकृत करेंगे।[2]

यद्यपि अपनी वृद्धावस्था के कारण सूरिजी की इच्छा विजयसेनसूरि अपने पास से अलग करने की नहीं थी लेकिन बादशाह को दिये वचन के अनु उन्होंने अपने शिष्य को आज्ञा दी जिसे शिरोधार्य कर विजयसेनसूरि सम्वत् 16 मगसर सुदी तीज (सन् 1592) के दिन बिहार कर सम्वत् 1650 ज्येष्ठ बारस (सन् 1593) के दिन लाहौर पहुंचे।

विजयसेनसूरि ने अकबर के दरबार में आते ही अपनी प्रखर प्रतिभा पांडित्य से अनेक पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराया जिससे ब्राह्मण पण्डितों को हुई तो उन्होंने अकबर के कान भरना शुरू कर दिये। पण्डितों ने आरोप ल कि जैन लोग ईश्वर को नहीं मानते फिर भी आप इन्हें (विजयसेनसूरि को)

---

1. आइने अकबरी एच. ब्लॉचमैन द्वारा अनुदित पृष्ठ 617
2. हीरविजयसूरिरास— पण्डित ऋषभदास 989, ढाल 22, 23, 24

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

म्मान देते हो। जैन अनिश्वरवादी हैं और ऐसे अनिश्वरवादी लोगों के सिद्धान्तों र चलना आप जैसे सम्राटों को शोभा नहीं देता। इस प्रकार की बातों से कुपित कर लेकिन क्रोध को छिपाकर बादशाह ने सूरिजी से कहा कि आप इन पण्डितों तर्कों का खण्डन कर ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित करें जिससे इनका गर्व चूर्ण हो सके। इस पर सूरिजी ने कहा—"हे शहंशाह। अठारह दूषणों से रहित देव को हम मानते हैं अठारह दूषण ये हैं—

दानान्तराय, लाभान्तराय, वीर्यान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अविरति, राग और द्वेष इन अठारह दूषणों का ईश्वर में अभाव है[1]

सूरिजी ने कहा जो तीनों काल का प्रकाशक है, उसके प्रकाश के सामने सूर्य भी फीका पड़ जाता है। जो जन्म मरण आदि से रहित है, ऐसे परमेश्वर को हम लोग मन, वचन, कार्यों से मानते हैं अब आप स्वयं ही बताइये कि हम अनिश्वरवादी कैसे हैं? इसकी पुष्टि में सूरिजी ने अपना प्रमाण प्रस्तुत किया—

"परमात्मा को शैव लोग "शिव" कह करके उपासना करते हैं। वेदान्ती लोग "ब्रह्मा" शब्द से। जैन शासन में रत जैन लोग "अर्हन्" शब्द से तथा नैयायिक लोग "कर्ता" शब्द से व्यवहार करते हैं वही त्रैलोक्य का स्वामी परमात्मा तुम लोगों को वांछित फल देने वाला है।"[2]

सचमुच कहा जाये तो इस प्रमाण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैन ईश्वर को मानते ही हैं। जब ब्राह्मण पण्डित इस तर्क से पराजित हुए तो उन्होंने दूसरा आरोप लगाया कि जैन सूर्य एवं गंगा को नहीं मानते। इन आरोपों का खण्डन

---

1. अन्तराया दान-लाभ-वीर्य-भोगोपभोगगाः।
   हासो रत्यरति भीतिर्जुगुप्सा-शोक एव च॥
   कामो मिथ्यात्वज्ञानं निद्राच विरतिस्तथा।
   रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशप्यमी।
   विजयप्रशस्तिसार-मुनिराज विद्याविजयजी पेज 54
2. ये शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
   बौद्धाः बुद्ध इति प्रणाम पटवः कर्मेति मिमांसकाः॥
   अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्तेति नैयायिकाः।
   सोऽयं वो विद्धातु वांछित फलं त्रैलोक्य नाथो हरिः॥
   विजयप्रशस्तिकाव्य—पण्डित हेमविजयगणि सर्ग 12, श्लोक 178

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी ने अपने तर्कों से किया और बादशाह ने कहा कि जन सूय क दशन कर बिना पानी भी नहीं पीते और सूर्य अस्त होने के बाद अन्न जल तब तक ग्रहण नहीं करते जब तक कि अगले दिन पुनः सूर्य के दर्शन न कर लें। सूर्य को मानने के पक्ष में सूरिजी ने यह कहा कि जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसके सम्बन्धी या राजा मर जाये तो प्रजा तब तक भोजन नहीं करती जब तक उसका अग्नि संस्कार न कर दिया जाये[1]

इसलिए जो सूर्य अस्त होने पर (रात्रि में) भोजन करते हैं और सूर्य को मानने का दावा करते हैं उनकी यह बात कहां तक उचित है? उसे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति सहज ही समझ सकता है।

गंगा को मानने के सम्बन्ध में सूरिजी ने कहा जो गंगा को पवित्र मानने का दावा करते हैं वे उसके अन्दर नहाते हैं, कुल्ला करते हैं, क्या इस तरह वे गंगा मां का बहुमान करते हैं। इसी तरह वे उसे मानते हैं? जैन तो गंगाजल का उपयोग बिम्ब प्रतिष्ठादि शुभ कार्यों में करते है[2] इस पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति विचार कर सकता है। कि गंगाजी का सच्चा बहुमान जैनी करते हैं या ये शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित?

सूरिजी के तर्कों से सारी सभा चकित रह गई पण्डित निरुत्तर हो गये। बादशाह ने प्रसन्न होकर सूरिजी को "सूरसवाई" की पदवी से विभूषित कर दिया[3]

उसके बाद सूरिजी ने बादशाह को उपदेश देकर जीवदया के अनेक कार्य करवाये। सूरिजी ने अकबर से कहा कि आपके राज्य में गौ, वृषभ, महीष, महिषी की जो हिंसा होती है वह आप जैसे जगत उपकारी राजा को शोभा नहीं देती इसके अलावा मृत मनुष्य का द्रव्य ग्रहण करना तथा कैदी मनुष्यों का द्रव्य लेना भी आपकी कीर्ति के योग्य नहीं है। आपने तो जब "जजिया" जैसे कर को बन्द कर दिया तो उन कार्यों में आपको क्या हानि हो सकती है? सूरिजी के इन प्रभाव पूर्ण वचनों से बादशाह ने उसी समय अपने अधिकारी देशों में उपर्युक्त छः कार्य बन्द करने की सूचना के आज्ञा पत्र सम्पूर्ण राज्य में भिजवा दिये।

---

1. "अधाम धामधामेधं स्वचेतसि
   यस्यास्तव्यसने प्राप्ते त्यजायो भोजमोदक॥
   श्री तपागच्छ पट्टावली—कल्याणविजयजी पृष्ठ 243
2. श्री सेन प्रश्न सार संग्रह—पण्डित शुभविजयगणि विरचित पृष्ठ 20
3. सूरीश्वर और सम्राट—पेज 164 तपागच्छ पट्टावली पृष्ठ 243

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलबदायूंनी में गाय, भैंस, भेड़, घोड़ा और ऊंट के मांस निषेध का वर्णन मिलता है: [1]

जगद्गुरू हीर में भी वर्णन मिलता है कि बादशाह ने मृत मनुष्य का द्रव्य कर के रूप में लेना निषेध कर दिया था[2] पण्डित दयाकुशलमणि ने भी "लाभेदय रास" नामक ग्रन्थ में सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने जो जीवदया के कार्य किये उनका वर्णन इस प्रकार किया है—

"अकबर सहगुरू कुं बकसई, ते सुणतां ही अडुं विकसई।
नगर ठठउ सिन्धु कच्छ, पाणि बहुलां जिहां मच्छि ।।
जिहां हुंतां बहुत सिहार, छयन-छयन सहूं गुरू उपगार।
च्यार मास को जाल न धालइ, विसेपइ वली वर सालइ ।।
गाय, बलद, भीसि, महिष जेह, कटी को ए न मारइ तेह।
गुरू वचनि को बन्दि न झालइ, मृतक केर कर टालइ ।।[3]

"भानुचन्द्रगणिचरित में इस प्रकार उल्लेख मिलता है" दूसरे अवसर पर सूरिजी ने बादशाह को गायों, बैलों, भैंसों की हत्या को रोकने की आवश्यकता को बताया और गलत कानूनों को समाप्त करने का जो कि राज्यों को उन लोगों की सम्पत्ति हड़प करने के लिए बनाये गये थे जिनका कोई भी उत्तराधिकारी नहीं था तथा अपराधियों को सशर्त पकड़ने का अधिकार दिया गया था इस प्रकार के अनुचित कार्यों को न करने के लिए कहा सम्राट ने इन अनुचित कार्यों को रोकने के लिए फरमान जारी कर दिये[4]

---

1. अलबबायूंनी—डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 388
2 जगद्गुरू हीर—मुमुक्षुभव्यानन्द जी पृष्ठ 111
3. लाभोदयरास—पण्डित दयाकुशलगणि (प्रेस-कापी) ढाल 127, 128, 129
4. "On another occasion the suri Convinced the emperror of the necessity of prohibition of the slaughter of cows, bulls. She buffaloes and he buffaloes, and of repealing the unedifying law which empouered the state to confiscate the property of those persons who died here less, and of capturing prisoners as hostages. Convinced of the harmful nature of these things, the emperor issued firmans prohibiting all these things.
भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादशाह द्वारा सूरिजी के उपदेश से किये गए जीव दया के कार्यों विवरण विजयप्रशस्ति काव्य में भी मिलता है[1]

6. श्री जिनचन्द्रसूरि—

अभी तक हमने जिन साधुओं का उल्लेख किया है वे जैन श्वेताम्ब तपागच्छ से सम्बन्धित है, अब हम जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचा जिनचन्द्रसूरिजी का वर्णन करेंगे। पहले हम यह देखेंगे कि अकबर सूरि जी सम्पर्क में कैसे आया ?

सं. 1648 (सन् 1591) में लाहोर में अकबर ने जिनचन्द्र सूरिजी की बड़ी प्रशंसा सुनी। उसने अपने मन्त्रि कर्मचन्द्र जो कि खरतरगच्छ से सम्बन्धित था, से सूरिजी के बारे में सारी जानकारी प्राप्त की और शीघ्र ही दरबार में बुलाने के लिए कहा लेकिन ग्रीष्मऋतु में सूरिजी की वृद्धावस्था के कारण खम्भात से शीघ्र बिहार करना मुश्किल था। अतः सम्राट ने उनके शिष्यों को बुलाने की इच्छा प्रकट की। तब तक मन्त्रि कर्मचन्द्र ने मानसिंह (महिमराज) को बुलाने के लिए सूरिजी को विनति पत्र लिखकर शाही दूत को भेजा विनति पत्र को पढ़ते ही सूरिजी ने महिमराज को गणिसमय सुन्दर आदि छः साधुओं के साथ बादशाह के पास भेजा। बादशाह उनके दर्शन से इतना प्रभावित हुआ कि सूरिजी से मिलने की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गई लेकिन चातुर्मास निकट आ रहा था और चातुर्मास में सूरिजी का बिहार हो नहीं सकता था। इधर बादशाह की तीव्र इच्छा को देखकर और सूरिजी के आने से जैन धर्म की उन्नति का विचार कर कर्मचन्द्र ने सूरिजी को आग्रह पूर्वक विनति पत्र लिखकर लाहोर आने के लिए शीघ्रगामी मेवड़ा दूतों के साथ खम्भात भेज दिया। पत्र पढ़कर सूरिजी के मन में जो विचार आये उन्हें अगरचन्द्र, भंवरलाल नाहटा ने इस प्रकार लिखा है—"मुझे अवश्य लाहोर जाना चाहिए, क्योंकि सम्राट अकबर धर्म जिज्ञासु है, यदि वह जैन धर्म का अनुकरण करने लग जायेगा तो "यथा राजा तथा प्रजा" के नियमानुसार जैन धर्म की

---

1. विजयप्रशस्ति काव्य—हेमविजयगणि सर्ग 12, श्लोक 227-228
2. चातुर्मास में निष्प्रयोजन साधुओं को बिहार न करके एक ही स्थान पर रहने की जिनाज्ञा है लेकिन विशेष धर्म प्रभावना और अनिष्टकारक संयोग होने से आचार्य, गीतार्थादि महानुभावों को देश-काल भाव विचार कर बिहार करने की भी अपवाद मार्ग से जिनाज्ञा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत उन्नति होगी। जब भारतवर्ष के राजा जैन धर्मावलम्बी थे, तब जैनों की संख्या भी बहुत थी और सर्वत्र शान्ति विराजमान थी। अब भी यदि गुरूदेव की कृपा से अकबर के हृदय में जैन धर्म के सिद्धांत बैठ जायेंगे तो वर्तमान समय में आर्य प्रजा पर होने वाले अत्याचारों का विनाश हो जायेगा।

अतएव वहां जाकर सम्राट को जैन धर्म के सूक्ष्म तत्वों का दिग्दर्शन कराना अति उपयोगी होगा[1]

खम्भात श्रीसंघ के मना करने पर सूरिजी उन्हें समझाकर सुदी तेरस सम्वत् 1648 (सन् 1591) के दिन अहमदाबाद पहुंचे। यहां फिर उन्हें दो शाही फरमान मिले, जिसमें कर्मचन्द्र ने भी आग्रहपूर्वक वर्षाकाल और लोकापवाद की ओर ध्यान न देते हुए शीघ्र ही पहुंचने के लिए लिखा था तब सूरिजी ने संघ की अनुमति से वहां से बिहार किया और सिरोही में पर्यूषणों के आठ दिन बिताकर जालौन पहुंचे। वर्षाकाल जलौन में रहकर वहां से बिहार कर फाल्गुन शुक्ला बारस के दिन लाहौर नगर में प्रवेश किया। इस समय सूरिजी के साथ महोपाध्याय जयसोम, वाचनाचार्य कनकसोम, वाचन रत्न निधान और पण्डित गुणविनय प्रभृति आदि 31 साधू थे[2] मन्त्रि कर्मचन्द्र ने जैसे ही बादशाह को सूरिजी के आने की सूचना दी बादशाह ने तुरन्त आकर सूरिजी को प्रसन्नतापूर्वक वन्दन कर कहा—"हे भगवन। आपको खम्भात से यहां आने में मार्ग श्रम तो हुआ ही होगा किन्तु मैंने भविष्य में जीवदया के प्रचार हेतु ही यहां आपको बुलाया है। अब आपने यहां पर पधार कर मेरे पर असीम कृपा की है। मैं अब आपसे जैन धर्म का विशेष बोध प्राप्त कर जीवों को अभय दानादि देकर आपका खेद (मार्ग श्रम) दूर करूंगा[3]

सूरिजी तो अपना कर्त्तव्य पालन करने अर्थात् अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करते हुए विश्व में स्नेह की नदियां बहाने की भावना लेकर ही शहशाह को उपदेश देने आये थे अतः अकबर की धर्म जिज्ञासुता देखकर सूरिजी को परम आनन्द हुआ। वे जिस उद्देश्य को लेकर खम्भात से चले थे उसे पूरा करने के लिए बादशाह को ओजस्वी शब्दों में उपदेश देना प्रारम्भ किया। सूरिजी ने कहा आत्मा एक सत्य सनातन पदार्थ है, चैतन्य उसका लक्षण है। जब तक आत्मा अपने सद्गुणों में लीन रहती है तब तक उसमें अति शुद्धता बनी रहती है। जब

---

1. युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि—अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 66-67
2. युग प्रधान गुर्वावलि—खरतरगच्छ का इतिहास पृष्ठ 193
3. युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि—अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 77

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका सम्बन्ध काम, क्रोध, मोह, अज्ञान आदि से हो जाता हैं तो उसके साथ कर्मों के कारण ही कभी मनुष्य बनता है तो कभी पशु-पक्षी आदि। अपने किये पुण्य पाप के कारण ही कभी राजा बनता है तो कभी रंक।

सार रूप में मनुष्य अपने कर्मों के कारण ही सुख दुख का अनुभव करता है। कर्मों का विनाश हो जाने से आत्मा का शुद्ध स्वभाव प्रकट हो जाता है आत्मा की अवस्था को ही जैन दर्शन में परमात्मा या ईश्वर कहते हैं। प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है कि वह परमात्मा बनने के कारणों को समझकर उनके अनुकूल बर्ताव करें। सूरिजी ने आत्मा के बारे में ओजस्वी प्राणी द्वारा प्रभावशाली शब्दों में बादशाह को जो उपदेश दिया उनका सार इस प्रकार है—"आत्मा न पुरुष है न स्त्री, न निर्बल है न सबल, न धनी है न रंक क्योंकि ये सब अवस्थायें तो कर्मजनित हैं। आत्मा तो शुद्ध सच्चिदानन्द है सभी आत्मायें सत्ता, द्रव्य, गुण और शक्ति की अपेक्षा से समान हैं इसलिए सभी जीव प्रेम के पात्र हैं। जैसे अपने को जीवन प्यारा है। वैसे सभी जीवों को अपना जीवन प्यारा है। और मरण भयावह है। अतः उन सबको सुख पूर्वक जीने देना आत्मा का प्रथम कर्तव्य है।[1]

आगे अहिंसा क अर्थ बताते हुए सूरिजी ने कहा "अहिंसा सकलो धर्मो" अर्थात् अहिंसा ही पूर्ण धर्म है। जैसे हमको सुख प्रिय है और हम जीना चाहते हैं उसी प्रकार जगत के समस्त जीव सुख चाहते हैं, और जीना चाहते हैं। कहा भी गया है "सब्बे जीवा वि इच्छंति जीविड, न मरिज्जड" सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहते। सारे जगत का कल्याण हो, सुखी हो, कोई भी दुखी न रहे इस प्रकार से सबका हित चाहने की इच्छा वृत्ति को ही हिंसा कहते हैं। जिस व्यक्ति में यह भावना आ जाती है उसमें कई गुण स्वतः ही आ जाते हैं। किसी प्राणी का अहित सोचना ही जैन दर्शन में "हिंसा" नाम से सम्बन्धित किया गया है। संसार में जहां हिंसा की भावना होती है वहां अशांति और कलह अपना डेरा डाले रहते हैं। झूठ, चोरी आदि विकृति भाव छाये रहते हैं किन्तु जहां अहिंसा रूपी सद्गुण का निवास होता है, वहां ये दुर्गुण फटकने भी नहीं पाते। जब एक सत्ता प्राप्त प्राणी एक निर्बल और क्षुद्र जीव को सताता है तब वह अपने आप ही दूसरे को, अपने को सताने के लिए आह्वान करता हैं उसके मन की कठोर वृत्तियां उसे पाप कर्म की ओर झुकाती है। दूसरे को सताकर कोई सुखी नहीं रह सकता इसलिए मनुष्य को विश्व प्रेम द्वारा सब जीवों के कल्याण का ध्यान रखना चाहिए।

---

1. विचक्षण वाणी—प्रवचनकार श्री विचक्षण श्री जी पृष्ठ 99-100

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त में राजा के कर्तव्य बताते हुए सूरिजी ने बादशाह को कहा कि राजनीति में प्रजा पर वात्सल्य रखना और उसे सुख शान्ति से रहने देना ही भूपालक का धर्म कहा गया है। मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी जो अपने राज्य में रहते हैं, वे भी प्रजा ही है उन्हें प्राण रहित करना राजनीति कदापि नहीं हो सकती। अतः उन्हें भी निर्भीक रहने देना चाहिए धर्म के साथ आत्मा का पूर्ण सम्बन्ध है किसी को अपने धर्म से छुड़ाना और धर्म पालन में बाधा देकर धार्मिक आघात पहुंचाना भी प्रजा को विद्रोह बनाना है अतः शासक को सहिष्णुता का गुण अवश्य धारण करना चाहिये। शासक का प्रजावात्सल्य ही एक मात्र प्रजा के हृदय सम्राट बनने का हेतु है। अतएव सर्वदा उदार वृत्ति और हृदय निर्मल पवित्र रखना चाहिए हृदय निर्मल रखने के लिए सात व्यसनों का अवश्य त्याग करना चाहिए। जैसे जुआ, मांस भक्षण, मदिरापान, शिकार, प्राणी, हिंसा, चोरी करना और परस्त्री गमन इन्हें त्यागने वालों की सदा जय होती हैं और कीर्ति फैलती है अहिंसा रूपी सद्गुण धारण करने से सतत् श्रीवृद्धि होती है, लाखों प्राणियों का आशीर्वाद मिलता है[1]

सूरिजी के अमृतमय उपदेश सुनकर सम्राट के हृदय में अत्यन्त प्रभाव पड़ा और करुणा का बीज परिपुष्ट हुआ। सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने जीव दया के अनेक कार्य किये।

एक दिन सूरिजी ने सुना कि नौरंगखान के द्वारिका के निकट जैन मन्दिरों को नष्ट कर दिया है। सूरिजी ने जैन मन्दिरों की रक्षा के लिए सम्राट से कहा। सम्राट ने उसी समय शत्रुन्जय और अन्य जैन मन्दिरों की रक्षा के लिए फरमान लिखकर मन्त्रि कर्मचन्द्र को दे दिया। इसी तरह एक फरमान लिखकर शाही मोहर लगाकर आजम खान, खाने आजम और मिर्जा अजीज कोका को भेजा गया[2]

जब बादशाह काश्मीर विजय करने गया तब जाने से पहले उसने सूरिजी के दर्शन किये क्योंकि उसे सूरिजी पर अपार श्रद्धा थी। उस समय सूरिजी ने बादशाह को जो अहिंसात्मक उपदेश दिये उसे सुनकर बादशाह ने अषाढ़ शुक्ला नवमी से पूर्णिमा तक 12 सूबों में समस्त जीवों को अभयदान देने के लिए

---

1. युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि पृष्ठ 80
2. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 11

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

12 शाही फरमान (अमारि घोषणा) लिखकर भेजे[1] इन सात दिनों का वर्णन सूरीश्वर और सम्राट तथा भानुचन्द्र गणिचरित में भी मिलता है लेकिन दोनों में सूबों की संख्या है[2]

(युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि के लेखक का कहना है कि मुलतान के सूबे का फरमान पत्र खो जाने से उसकी पुनरावृत्ति बाद में हुई शायद इसलिए सूरीश्वर और सम्राट तथा भानुचन्द्रगणिचरित में सूबों की संख्या 11 है )

सम्राट के अमारि फरमान प्रकाशित करने के अन्य राजाओं पर बहुत प्रभाव पड़ा उन्होंने भी अपने-अपने राज्य में किसी ने 15 दिन, किसी ने 20, किसी ने 25, किसी ने एक मास तो किसी ने दो मास की अमारि पालने का हुक्म दिया।[3]

इस तरह अपने उपदेशों से सम्राट को प्रभावित कर तीर्थों की रक्षा एवं अहिंसा प्रचार के लिए आषाढ़ी अष्टान्हिका एवं स्तम्भतीर्थीय जलचर रक्षक आदि कई फरमान प्राप्त किये:[4] सूरिजी की योग्यता से प्रभावित होकर सम्राट ने उन्हें "युग प्रधान" पद से विभूषित किया। इन कार्यों के अलावा सम्राट ने जो और महत्व के कार्य किये वे इस प्रकार हैं—

1—प्रतिवर्ष में सब मिलाकर छः महीने पर्यन्त अपने समस्त राज्य में जीव हिंसा निषेध।

2—शत्रुन्जय तीर्थ का कर मोचन।

3—सर्वत्र गौ रक्षा का प्रचार।[5]

सूरिजी के उपदेश से बादशाह द्वारा किये गये जीव दया के कार्यों के बारे में नर्मदा शंकर अम्बकराम भट्ट भी लिखते हैं कि 'जिनचन्द्रसूरिजी के धर्मोपदेश से प्रसन्न होकर अकबर ने आषाढ़ अष्टान्हिका अमारि फरमान निकाला और खम्भात के समुद्रों में एक वर्ष तक कोई व्यक्ति जल चर आदि जीवों की हत्या न करें, फरमान निकाला[6]

---

1. युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि पेज 91-92
2. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पेज 155-56 भानुचन्द्र गणिचरित पृष्ठ 11
3. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास—मोहनलाल दलीचन्द पृष्ठ 575
4. युग प्रधान गुर्वावलि खरतरगच्छ का इतिहास पृष्ठ 193
5. युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि पृष्ठ 113
6. खम्भात नो प्राचीन जैन इतिहास—नर्मदाशंकर अम्बकराम पृष्ठ 14-15

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाबूपूरण चन्द्र जी नाहर एम. ए. बी. एल.एम. आर. ए. एस. महोदय के संग्रहस्थ एक गुटके में प्राचीन कवित्त का भावार्थ इस प्रकार है—"सूरिजी को वन्दनार्थ सम्राट सामने गये उनके साथ उनकी प्रजा और अनुगामी अमीर उमराव भी थे। गुरू के चरणों में सम्राट ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उनके उपदेश से सम्राट जैन धर्म का इतना आदर करने लगा कि उसके फलस्वरूप जिस किल्ले में गायें, कत्ल होती थीं, मुर्गे, हिटले आदि जानवर मारे जाते थे अब उनका कत्ल होना बन्द हो गया। इतना ही नहीं सम्राट ने मांस-भक्षण जो पहले करता था, उसका त्याग कर दिया[1]

बादशाह पर सूरिजी के प्रभाव का विवरण प्राचीन जैन लेख संग्रह में भी मिलता है[2]

बादशाह के दरबार में सूरिजी का इतना प्रभाव देखकर कुछ मौलवियों को ईर्ष्या हुई इसीलिये उन्होंने कई बार ऐसे प्रसंग उपस्थिति किये। सूरिजी को नीचा दिखाया जा सके लेकिन सूरिजी ने हमेशा अपने चरित्र और बुद्धि वैभव द्वारा जैन शासन की रक्षा की। ऐसी कई चमत्कारिक घटनाओं में एक मुख्य घटना जिसका विवरण प्रायः सम्पूर्ण खरतरगच्छ साहित्य में मिलता है कि सूरिजी का एक शिष्य आहार के लिए जा रहा था। रास्ते में एक मौलवी के तिथि पूछने पर उसने भूल से अमावस्या के बदले पूर्णिमा बता दी। मौलवी ने कहा महाराज ! सुना है कि जैन साधू झूठ नहीं बोलते लेकिन यह तो सरासर झूठ है अब देखेंगे कि पूर्णिमा का चांद कैसे प्रकाशमान होगा, बाद में साधू को भी अपनी भूल का अहसास हुआ इसलिए उन्होंने उपाश्रय में जाकर सूरिजी को सारा वृत्तान्त बता दिया। इधर मौलवी ने भी सब जगह जहाँ तक कि सम्राट के दरबार तक में भी यह खबर पहुंचा दी कि जैन साधुओं के अनुसार आज पूर्णिमा का चांद उदय होगा। जैन शासन की अवहेलना न हो, इसलिए

---

1. युग प्रधान—श्री जिनचन्द्रसूरि—अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 116-117
2. श्री अकब्बरसाहिप्रदत्तयुग प्रधान पद प्रवरैः प्रतिवर्षासाठी
   याष्टाहिकादिषा मासिकामारिप्रवर्तकैः श्री पन्त (9)
   तीर्थोदीध मीनादि जीव रक्षकैः श्री शत्रुन्जयादि तीर्थ
   करमोचकैः। सर्व्वत्र गोरक्षाकारकैः पंचनदीपीर साधकैः
   युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरिभिः।
   प्राचीन जैन लेख संग्रह, भाग 2, पृष्ठ 270

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी ने एक श्रावक के यहां से स्वर्णथाल मंगवाकर उसे आकाश में उड़ा दिया। सूरिजी के प्रताप से वह थाल पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति सर्वत्र प्रकाश करने लगा। सम्राट ने इसकी जांच करने के लिए बारह-बारह कोस तक घुड़ सवार भेजें। किन्तु सब जगह प्रकाश हुआ। सुनकर सम्राट आश्चर्य चकित रह गया।

7. श्री जिनसिंह सूरि—

अकबर के आमन्त्रण को स्वीकार कर जिनचन्द्रसूरिजी ने जिन महिमराज को गणिसमय सुन्दर आदि छः साधुओं के साथ अपने से पूर्व ही लाहौर भेजा था। ये महिमराज मानसिंह ही जिनसिंह सूरि के नाम से विख्यात हुए। सम्वत् 1649 (सन् 1593) में अपने काश्मीर प्रवास में भी धर्म गोष्ठि, धर्म चर्चा होती रहे, दया धर्म का प्रचार हो इसलिए मन्त्रि कर्मचन्द्र से मानसिंहजी को साथ ले जाने की इच्छा व्यक्त की। यद्यपि उस अनार्य देश में मानसिंह जी को आहार पानी की असुविधा थी फिर भी उस देश में विहार करने से दया धर्म के प्रचार का महान लाभ और जैन धर्म की प्रभावना का विचार कर उन्होंने जाना स्वीकार कर लिया। रास्ते में समय-समय पर धर्मगोष्ठि कर बादशाह ने मानसिंह जी के उपदेश से कई जगह तालाबों के जल-चर जीवों की हिंसा बन्द कराई। महिमरामजी की अभिलाषानुसार गजनी, गोलकुण्डा और काबुल तक अमारि उद्घोषणा बनाई।

मानसिंहजी के कहने से बादशाह जब काश्मीर विजय कर वापिस आया तो आठ दिन तक अमारि उद्घोषणा की[3]

मानसिंहजी के चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर सम्राट अकबर ने आचार्य श्री को निवेदन कर बड़े ही उत्सव के साथ सम्वत् 1649 फाल्गुन कृष्णा दशमी (सन् 1592, 16 फरवरी) के दिन आचार्य श्री के ही कर कमलों से आचार्य पद प्रदान करवाकर जिनसिंह सूरि नाम रखवाया[3] श्रीमोहनलाल देसाई ने यह तिथि फाल्गुन शुक्ला 2 सम्वत 1649 (23 फरवरी 1593) मानी है।

विद्याविजयजी लिखते हैं "मानसिंह को आचार्य पदवी दी इसकी खुशी में बादशाह ने खम्भात के बन्दरों में जो हिंसा होती थी उसको बन्द कराई थी। लाहौर में भी कोई एक दिन के लिए जीव हिंसा न करे इस बात का प्रबन्ध

---

1. युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि—अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पेज 195
2. युग प्रधान गुर्वावलि—खरतरगच्छ का इतिहास पेज 195
3. वही पेज 195

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी थी:[1] इसके विषय में भानुचन्द्र गणिचरित में लिखा है। खम्भात में एक वर्ष क मछलियां व जानवरों का वध और लाहौर में उस पर्व के दिन जानवरों के व की मनाही थी.[2]

अषाढ़ी अष्टान्हिका फरमान जो आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी ने अकबर से या था उसके खो जाने से जिनसिंह सूरिजी ने पुनः सम्वत् 1660 (सन् 1603) उसे अकबर से प्राप्त किया।

## अकबर के दरबार में अन्य जैन साधू

**पदमसुन्दर—**

हीरविजयसूरिजी से मिलने से पहले सम्राट अकबर नागापुरीय तपागच्छ के पदमसुन्दर गणिजी से मिला।[3] जिन्हें अकबर बहुत आदर देता था। जब अकबर हीरविजय सूरिजी से मिला तो पदमसुन्दरजी के बारे में इस तरह विचार प्रकट किये" कुछ समय पहले पदमसुन्दर नामक विद्वान पुरुष यहां रहते थे। वह मेरे प्रिय मित्र थे। उन्होंने बनारस में अध्ययन किया था। एक बार एक ब्राह्मण पण्डित ने गर्व में स्वयं को पण्डित राज बताया[4] उसे पदमसुन्दर ने चुनौती देकर वाद-विवाद में हरा दिया। दुर्भाग्यवश कुछ समय बाद मुझे दुख में छोड़कर वे काल कर गये। मैंने उनकी सब लिपियां सम्भालकर महल में रखी हुई है। क्योंकि मैंने पाया कि उनका कोई शिष्य इन्हें सम्भालने के योग्य नहीं है। यह मेरी इच्छा है कि आप इस संकलन को मेरी भेंट समझकर स्वीकार करें :[5] इस घटना की जानकारी हीरसौभाग्यकाव्य में भी मिलती है।[6]

**नन्दविजय—**

ये विजयसेन सूरि के शिष्य थे जब सूरिजी ने अकबर के दरबार से विहार किया तब नन्दविजयजी उनके दरबार में रहे। ये अष्टावधान साधते थे। पद्मविजयजी लिखते हैं कि "उन्होंने एक बार बादशाह की सभा में अष्टावधान

---

1 सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पेज 156
2. भानुचन्द्र गणिचरित—अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पेज 11
3. तपागच्छ पट्टावली—कल्याणविजयजी पृष्ठ 231
4. सम्भवतया ये तैलंग ब्राह्मण पण्डित राज जगन्नाथ थे, जो अकबर के समकालीन होने के साथ ही कुछ समय उनके दरबार में भी रहे थे।
5. भानुचन्द्रगणिचरित—अगरचन्द, भंवरलाल नाहटा पेज 12
6. हीरसौभाग्यकाव्य—पण्डित देवविमलगणि सर्ग 14 श्लोक 91-97

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधा। उस समय बादशाह के सिवाय मारवाड़ के राजा मालदेव का पुत्र उदयसिंह, जयपुर के राजा मानसिंह कछवाहा, खानखाना, अबुलफजल, आजमखां जालोर का राजा गजनीखां और अन्याय राजा महाराजा एवं राजपुरुष वहाँ उपस्थित थे। इन सबके बीच उन्होंने अष्टावधान साधा था। नन्दिविजयजी का इस प्रकार का बुद्धि कौशल देख कर बादशाह ने उनको "खुश-फहम" की पदवी से विभूषित किया[1]

"जैन साहित्यनों इतिहास में भी वर्णन मिलता है कि नन्दिविजयजी के अष्टावधान साधने पर बादशाह ने प्रसन्न होकर "खुश-फहम" नामक पद दिया:[2] श्री सेनप्रश्नसार संग्रह में भी इसका विवरण मिलता हैं:[3]

नन्दिविजयजी के अष्टावधान साधने का विवरण विजयप्रशस्तिकाव्य में भी है। राजा ने प्रसन्न होकर "खुश फहम" की पदवी दी:[4]

3. कविवर समय सुन्दरजी—

ये जिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य थे। जब अकबर काश्मीर यात्रा के लिए गया तो प्रथम प्रयाण सम्वत् 1649, श्रावण शुक्ला त्रयोदशी (22 जुलाई 1592) को राजा श्री रामदास की वाटिका में किया। उसी शाम वहां एक सभा हुई। जिसमें जिनचन्द्र सूरिजी को अपने शिष्य मण्डल के साथ सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया गया। इस सभा में समयसुन्दरजी ने अपने "अष्टलक्षी" ग्रन्थ को पढ़कर सुनाया। यह ग्रन्थ उन्होंने "राजानो ददते सौख्यम" संस्कृत के इस छोटे से वाक्य पर लिखा था, जिसके आठ लाख अर्थ किये थे[5] जब सम्राट को इस ग्रन्थ निर्माण की सूचना मिली तो उसने इस ग्रन्थ को देखने और सुनने की इच्छा प्रकट की। इस सभा में सम्राट ने कविवर समय सुन्दरजी से इस ग्रन्थ को पढ़कर सुनाने का आग्रह किया। इस अद्भुत ग्रन्थ को सुनकर सम्राट और उपस्थित विद्वानों को बड़ा कौतूहल हुआ। बादशाह ने प्रसन्न होकर इस ग्रन्थ की प्रशंसा की और उसे

---

1. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 160
2. जैन साहित्य नो इतिहास—मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृष्ठ 551
3. श्री सेनप्रश्नसार संग्रह—पण्डित शुभविजय गणिविरचित पृष्ठ 19
4. विजयप्रशस्तिकाव्य—पण्डित हेमविजयगणि सर्ग 12, श्लोक 133 34, 35
5. भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द, भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 13

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ल करोकरे प्रचार करने को कहा[1]

जब सम्राट ने जिनचन्द्रसूरिजी को "युग प्रधान" की उपाधि दी तब इन्हें ाध्याय पद दिया गया।[2] अगरचन्द्र भी लिखते हैं कि इन्हें लेबेरे में उपाध्याय पद ा गया।[3]

जयसोम—

ये भी खरतरगच्छ के थे। इन्होंने अकबर के दरबार में एक बार वाद-ादे में विजय पाई। जिस दिन अकबर ने जिनचन्द्रसूरिजी को "युग-प्रधान" पदवी और मानसिंह को आचार्य पदवी दी उसी दिन जयसोम को भी यानि वत् 1649 फागुन सुदी दूज (23 फरवरी 1593) के दिन पाठक पदवी दी। ये पदवी दिये जाने का उल्लेख "श्री जैन सत्यप्रकाश एव युग प्रधान "श्री चन्द्रसूरि में भी हैं।[4]

महोपाध्याय साधुकीर्ति—

ये भी अकबर की राजसभा में गये। एक बार अकबर के दरबार में ान लोगों की उपस्थिति में पौषध के विषय पर वाद-विवाद हुआ जिसमें साधु-र्ति ने भाग लेकर विजय पाई। इससे प्रसन्न होकर सम्राट ने इन्हें "वादीन्द्र" उपाधि प्रदान की।[5]

कर्ष—

जैन साधुओं ने बादशाह पर प्रभाव डालकर जन कल्याग व धर्म रक्षा आदि क कार्य करवाये। तीर्थों की रक्षा, गुजरात से जजिया उठवाना युद्ध बन्दी, और पिंजड़े में बन्द पक्षियों को छुड़ाना आदि बादशाह के जीव दया के ों की प्रेरणा में जैन मुनियों के उपदेश ही हेतु रहे हैं। जैन साधुओं बादशाह पर जो प्रभाव पड़ा। उसके विषय में प्राचीन ग्रन्थों के कुछ मत यहां धृत हैं।

बादशाह ने प्रजा को अनुचित करों से मुक्त किया और प्रजाहित के लिए सुकृत किये उनके बारे में कृपारस कोष" के रचयिता लिखते हैं कि—

---

1. युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि—अगरचन्द्र, भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 96
2. श्री जैन सत्यप्रकाश वर्ष 10, अंक 12, पृष्ठ 284
3. युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि—अगरचन्द, भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 176
4. श्री जैन सत्य प्रकाश वर्ष 10, अंक 12, पृष्ठ 284, और युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि पृष्ठ 198
5. श्री जैन सत्य प्रकाश वर्ष 10, अंक 12 पृष्ठ 284

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पहले मृतक के धन को राजा कुमारपाल ने छोड़ा था और अब इस समय अकबर बादशाह ने कर सम्बन्धित धन को छोड़ दिया है पहले गायों बन्धन मुक्त अर्जुन ने किया था, और इस समय वध-मुक्त अकबर ने किया"[1] इस कोष में आगे लिखते हैं कि—

"सब प्रकार से जिन्द्य ऐसी मुदिरा का इस बादशाह ने निषेध कर दिया बादशाह ने जुआ खेलना बन्द कर दिया।

शिकार खेलना भी छोड दिया:[2]

वीर पुरुषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि—जो अपराधी शस्त्र उठाकर बड़ा अपराध करता है उसी पर वे अपना शस्त्र चलाते हैं, औरों पर नहीं, तब मैं शूरवीरों में शिरोमणि कहलाकर इन निरपराध और भयाकुल पशुओं पर कैसे अपना शस्त्र चलाऊं ? यह विचार कर बादशाह सभी प्राणियों पर रहम करता है।[3]

अकबर द्वारा जीव हिंसा का निषेध और मांसाहार में उसकी अरुचि का उल्लेख कितने ही स्थलों पर मिलता है पट्टावली समुच्चय में लिखा है—

"छः महीने अमारि घोषणा की.[4]

---

1. "मृतस्वमोक्ता तु कुमारपालः
शुल्कस्तवमोक्ता तु फतेपुरेशः।
पुरा गवां बन्दिमपचकार
धनन्जयः साम्प्रतमेष एवं॥
कृपारस कोष—शान्तिचन्द्रजी श्लोक 98 पृष्ठ 16

2. "मद्यं सर्वनिद्य न्यतेधत्।
दयुतं स्वदेशे व्यसनं न्यषेधत्।
स्वनेन तस्मान्मुमुचे भृगव्यम्।
कृपारस कोष—शांतिचन्द्रजी श्लोक 102, 106, 107

3. शस्त्रग्रहेण धुरिलब्धसमन्तुताके
शस्त्रं विमोच्यमिति वीरजनप्रतिज्ञा।
जन्तूनन्तुदरितान् किहं निहन्मि
वीरावतंस इति धीरनुकम्पते सौ॥
कृपारसकोष—श्री शांतिचन्द्रजी श्लोक 108

4. "षाणमासिका अमारि प्रवर्तनं।
महोपाध्याय श्री धर्म सागर गणिविरचित श्री पट्टावली समुच्चय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन जैन लेख संग्रह में भी ऐसा ही विवरण मिलता है[1]

कृपारस कोष के रचयिता का कहना हैं कि श्री हीरविजय सूरिश्वर को इस राजा ने जो अमारि शासन, जीवों के वध के निषेध का शाही फरमान दिया है उसके पुण्य का प्रमाण केवल सर्वज्ञ ही जान सकता है और नहीं[2]

हीरसौभाग्यकाव्य में छः महीने अहिंसा पालने के दिन इस प्रकार से गिनाये गये हैं—"पर्यूषणों के दिन, समस्त रविवार, सोफीयान का दिन सूर्य संक्रमण का दिन, बादशाह का जन्म जिस महीने में हुआ वह पूरा महीना, बादशाह के पुत्रों का जन्म दिन, रजबमास, नवरोज का दिन, और बादशाह के गद्दी पर बैठने का दिन गुरूवार[3]

जगद्गुरूहीर में भव्यानन्द जी ने छः महीने इस प्रकार बिताये हैं। "पर्यूषण पर्व के 12 दिन, सर्व रविवार के दिन सोफियान एवं ईद के दिन संक्रांति की सर्व तिथियां, अकबर का जन्म का पूरा मास, मिहिर और नवरोज के दिन, सम्राट के तीनों पुत्रों का जन्म मास और रजब (मोहर्रम) के दिन[4]

---

1. "षाणमासिका यदुक्त्योच्चैरमारिपटह पटु"
   प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-2 आलेख संख्या 450, पृष्ठ 285
2. श्रीयुक्त हीरविजयाभिधसूरिराजां
   तेषां विशेषसुकृताय सहायभाजाम् ।
   जन्तुष्वमारिमदिशद्ययं दयार्द्र—
   स्तत्पुण्यमानमधिगच्छति सर्ववेदी ॥
   कृपारस कोष—शान्तिचन्द्र उपाध्याय श्लोक 123
3. श्रीमत्पर्यूषणादिना रविमिताः सर्वे खेर्वासराः
   सोफीयानदिना अपीददिवसाः संक्रांतिघस्त्राः पुनः
   मासः स्वीयजनेर्दिनाश्च मिहिरस्यानान्येऽपि भूमीन्दुसा
   हिन्दुम्लेच्छमहीषु तेन विहिताः कारूण्यपण्यापणाः
   तेननवरोजदिवसास्तनुजजनू रजबमासद्रिव्वसाश्य ।
   विहिता अमारिसहिताः सलतास्तखो घनेनेव ।
   गुरूवचसा नृपदत्ता साधिकषण्मास्यमारिर भवदिति ।
   तत्रनुर्जेरपि दत्ताधिकवृद्धि व्रततिद्भेजे ॥
   हीरसौभाग्यकाव्य—देवविमलगणि सर्ग 14, श्लोक 273, 74, 75
4. जगद्गुरूहीन—मुमुछुभव्यानन्दजी पृष्ठ 95

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिमनलाल डाह्या भाई ने अपने लेख (हीरविजयसूरि और द जैटीचर्स एट द कोर्ट ऑफ अकबर) में छः महीने इस प्रकार बताये हैं— "पर्यूषणों के दिन, समस्त रविवार, सोफीयान का दिन, ईद, बादशाह के जन्म का महीना, मिहिर और नवरोज का दिन, रजबमास, और उसके पुत्रों जन्म दिन:[1]

इसी लेख में जैन सन्तों के प्रभाव के बारे में आगे लिखते हैं कि—"इसके अलावा गायों, बैलों, भैंसों, नर, मादा, दोनों ही प्रकार के जानवरों को कसाईघर नहीं ले जाया जाता था मृतक कर पूर्णतः समाप्त कर दिया, तथा क़ैदी भी नहीं बनाये जाते थे:[2]

मोहनलाल दुलीचन्द देसाई का कहना है कि "अकबर सत्य का साधक था। जहां से सत्य मिलता था। वहीं से ग्रहण कर लेता था। जैन धर्म में से प्राणी वध त्याग, जीवित प्राणियों के प्रति दया, मांसाहार, के प्रति अरुचि, पुनर्जन्म की मान्यता, कर्म सिद्धान्त इन वस्तुओं को स्वीकार किया जैन धर्म के तीर्थों को उनके अनुयायियों को सौंप दिया। उनके आचार्यों एवं साधुओं के प्रति उदारता बताई[3]

यह जैन सन्तों का ही प्रभाव था कि अकबर ने अपने राज्य में एक वर्ष में छः महीने, छः दिन तक जीव-हिंसा का निषेध किया था। यद्यपि इन दिनों का ठीक-ठीक गिनती करना कठिन है क्योंकि उनमें कई महीने मुसलमानी त्यौहारों के होने से यह निर्णय होना कठिन है कि उन महीनों के कितने-कितने दिन गिनने चाहियें लेकिन इतना निश्चित है कि जो महीने गिनाये गये हैं उनमें व

---

1. The days of Purshanda all sundays, clays of sofiam, Ida equinox, month of his birth, days of Mihira and Navroz month of Rajab and the birth days of his sons.
   जैन शासन दिवाली अंक, वीर सम्वत् 2438 पृष्ठ 122
2. More over that cows and bulls and buffaloes, both male and female should never be lad to the house of death, that the whole tax upon the dead should be remitted and that prisoners also should not be made.
   जैन शासन दिवाली अंक, वीर सम्वत् 2438 पृष्ठ 128
3. जैन साहित्य नो इतिहास—मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृष्ठ 557

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

■नमें से अमुक अमुक दिनों में बादशाह ने अपने समस्त राज्य में जीव-हिंसा का ■षेध किया था और स्वयं भी इन दिनों मांसाहार नहीं करता था। न केवल जैन ■पितु जैनेतर लेखकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। अकबर का सर्वस्व ■माना जाने वाला शेख अबुलफजल लिखता है—

"सम्राट अपने ज्ञान के कारण मांस से बहुत कम अभिरुचि रखता है, ह; और बहुधा मोतियों से भरी हुई जुबान से कहा करता है कि यद्यपि मनुष्य के लिए भांति-भांति के व्यंजन विद्यमान हैं तथापि वह अपनी अज्ञानता और निर्दयता से प्राणियों के सताने में मन लगाता है तथा उनकी हत्या करने और खाने से हाथ नहीं खींचता। कोई व्यक्ति पशुओं के न सताने की खूबी पर अपनी आंखें नहीं खोलता वरन् अपने को जानवरों की कब्र बनाता है। यदि उसके कन्धों पर संसार का बोझ न होता तो एक दम मांस खाना छोड़ देता, तथापि उसका विचार यह है कि शनैः शनै उसे नितान्त त्याग दे। कुछ दिनों तक वह अपने समय के लोगों की चाल पर चलता रहा, परन्तु बाद को उसने पहले कुछ शुक्रवारों को मांस खाना बन्द किया और फिर रविवारों को। किन्तु अब प्रत्येक और मांस की प्रतिपदा रविवार, सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दिन, संयम वाले दो दिवसों के बीच का दिन रजबमास के सोमवार, हरइलाही महीने के उत्सव का दिन फरवरीदीन का पूरा महीना और समस्त आबान मास जो कि सम्राट का जन्म मास है। संयम के दो दिनों में और बढ़ा दिये गये हैं। आबान मास के लिए यह निश्चय हुआ था कि सम्राट की अवस्था के जितने साल हों, उतने दिन वह उक्त महीने में मांस न खाये, परन्तु अब उसकी अवस्था के साल आबान मास के दिनों से अधिक हो गये हैं, इसलिए आजुर महीने के भी कुछ दिनों में उसने व्रत रखा परन्तु इस समय उक्त मांस के सभी दिन सूफियाना (सयमवाले) हो गये। ईश चिन्तन की अधिकता के कारण उनमें प्रतिवर्ष वृद्धि होती जा रही हैं और वह पांच दिन से कम नहीं होती:[1]

अकबर द्वारा राज्याभिषेक के पूरे महीने मांसाहार निषेध का जो वर्णन ■न ग्रन्थों में मिलता है उसकी पुष्टि आइने अकबरी से भी होती है, अकबर कहा ■रता था "मेरे राज्याभिषेक की तारीख के दिन, प्रतिवर्ष ईश्वर का उपकार ■ानने के लिए किसी भी मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये, जिससे सारा वर्ष

---

1. आइने अकबरी हिन्दी अनुवादक—रामलाल पाण्डेय अंक 20 पृष्ठ 123-124

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द के साथ निकले:[1]

अकबर कहा करता था कि यह उचित नहीं है कि एक आदमी अपने पेट को पशुओं की कब्र बनाये:[2]

इसी तरह एक अन्य स्थान पर अकबर ने कहा है कि "यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि मांसाहारी जीव सिर्फ मेरे शरीर को खाकर ही तृप्त हो जाते और दूसरे जीवों के भक्षण से दूर रहते तो मेरे लिए यह बात बड़े सुख की होती। या मैं अपने शरीर का एक अंश काटकर मांसाहारियों को खिला देता और फिर से वह अंश प्राप्त हो जाता, तो मैं बड़ा प्रसन्न होता[3]

अकबर के उपरोक्त विचारों से उसके दया संबंधित विचारों का पता चलता है मांसाहारियों को अपना शरीर खिलाकर तृप्त करने और दूसरे जीवों को बचाने की भावना उच्चकोटि की दयालु वृत्ति रखने वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं, यह सब जैन सन्तों का ही प्रभाव था। जैन सन्तों के इस महत्व को अकबर के दरबार में रहने वाला कट्टर मुसलमान बदायूंनी भी स्वीकार करता है अकबर की मांस और पशु-वध में अरूचि के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि "इस समय बादशाह ने अपने कुछ नवीन प्रिय सिद्धान्तों का प्रचार किया था। सप्ताह के पहले दिन में प्राणी वध निषेध की कठोर आज्ञा थी कारण कि यह सूर्य पूजा का दिन है। फरवरदीन महीने के पहले 18 दिनों में आबान के पूरे महीने में (जिसमें बादशाह का

1. Men should annually refrain from eating meat on the anniversary of the month of my accassion as a thanks giving to the almighty, in order that the year may pass in prosperity.

   आइने अकबरी—एच. एस. जैरेट भाग 3 पृष्ठ 446

2. It is not right that a man should make his stomach the grave of animals.

   आइने अकबरी एच. एस. जैरेट भाग 3 पृष्ठ 443

3. Would that my body were so vigorous as to be of service to eaters of meat who would this forego other animal life, or that as I cut of a piece for their mourishment, It night he replaced by another.

   आइने अकबरी अनुदित एच. एस. जैरेट भाग 3 पृष्ठ 445-46

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म हुआ था) और हिन्दूओं[1] को प्रसन्न करने के लिए और भी कई दिनों प्राणी वध का निषेध किया था। यह हुक्म सारे राज्य में जारी किया गया था इस हुक्म के विरुद्ध चलने वाले को सजा दी जाती थी। इससे अनेक कुटुम्ब बर्बाद हो गये थे और उनकी मिल्कियतें जब्त कर ली गई थीं। इन उपवासों के दिनों में बादशाह ने धार्मिक तपश्चरण की भांति मांसाहार का सर्वथा त्याग किया था। क्रमशः वर्ष में छः महीने और उससे भी ज्यादा दिन तक उपवास करने का अभ्यास वह इसलिए करता गया कि अन्त मांसाहार का वह सर्वथा त्याग कर सके[2]

एक अन्य स्थान पर बदायूंनी ने यह भी लिखा है कि "यदि कोई कसाई के साथ बैठकर खाता था तो उसका हाथ काट लिया जाता था और यदि कोई कसाई के साथ सम्बन्ध रखता था तो उसकी केवल छोटी ऊंगली काटी जाती थी:[3]

जैन श्रमणों (साधुओं) के महत्व को बदायूंनी ने इस प्रकार भी स्वीकार किया है कि "सम्राट अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा श्रमणों और ब्राह्मणों से एकान्त में विशेष रूप से मिलता था। वे नैतिक शारीरिक धार्मिक और आध्यात्मिक शास्त्रों में, धर्मोन्नति की प्रगति में और मनुष्य जीवन की सम्पूर्णता प्राप्त करने में दूसरे (समस्त सम्प्रदायों) विद्वानों और पण्डित पुरुषों की अपेक्षा हर हरह से उन्नत थे। वे अपने मत की सत्यता और हमारे (मुसलमान) धर्म के दोष बताने के लिए बुद्धिपूर्वक परम्परागत प्रमाण देते थे वे ऐसी दृढ़ता और युक्ति से अपने मत का समर्थन करते थे कि उनका कल्पना तुल्य मत स्वतः सिद्ध प्रतीत होता था। उसकी सत्यता के विरुद्ध नास्तिक भी कोई शंका नहीं उठा सकता था[4]

इस तरह जैन लेखकों के कथन की सत्यता अबुलफजल और बदायूंनी

1. बदायूंनी ने जो हिन्दू शब्द का उपयोग किया है उसे जैन ही समझना चाहिये क्योंकि बादशाह को उपदेश देकर पशु-वध निषेध, मांसाहार, त्याग और जीव दया सम्बन्धित कार्य करवाने में यदि कोई प्रयत्नशील हुए तो वे जैन साधु ही है।
2. अलबदायूंनी—डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 331
3. वही पृष्ठ 388
4. वही पृष्ठ 264
   'श्रमणों' शब्द के पूर्ण विवरण के लिए देखिये परिशिष्ट नं. 4

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कथनों से पक्की होती है। जैन लेखकों ने बादशाह के छः महीने तक मांसाहार त्याग की और छः महीने छः दिन तक समस्त देश में जीव-हिंसा निषेध के जो दिन गिनाये हैं। लगभग वे ही दिन अबुलफजल और बदायूनी ने भी गिनाये हैं।

आइने अकबरी के भाषान्तरकार पण्डित रामलाल पाण्डेय ने अपने लेख — "अकबर की धार्मिक नीति" में लिखा है कि "सम्राट ने पशुओं और पक्षियों को बन्दि से मुक्त कर दिया था। सम्राट की नीति में अहिंसा और दया का जो पुट है उसका विशेष श्रेय इन्हीं जैन महात्माओं को है:[1]

जैन सन्तों के प्रभाव से अकबर ने वर्ष में छः महीने छः दिन तक जीव हिंसा का निषेध ही नहीं किया था बल्कि जीव-हिंसा करने वाले को दण्ड देने का भी विधान था। इस बात को तो बदायूनी ने भी स्वीकार किया है। (जैसा कि हम पहले कह चुके हैं) और रामलाल पाण्डेय ने भी अपने लेख में लिखा है कि—

"गौ-वध तो बराबर बन्द रहता था ही पर उसके बधिक के लिए प्राण दण्ड तक की सजा थी।" यह राजाज्ञा शब्दों तक ही सीमित नहीं थी, वरन् उसे कार्य रूप में परिणित करके दिखलाया गया। "महाभारत" के भाषान्तरकार शेख सुल्तान थानेसुरी ने जब गौ-हत्या की तो थानेश्वर के हिन्दुओं की शिकायत पर उसे देश-निर्वासन दण्ड दिया गया था उसकी महान विद्यता और प्रभाव उसे इस दण्ड से न बचा सके:[2]

बादशाह पर जैन सन्तों के प्रभाव के बारे में ए. एल. श्रीवास्तव लिखते हैं कि "जैन मुनियों के उपदेशों का अकबर के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने शिकार खेलना जिसका कि वह बेहद शौकीन रहा था। बन्द कर दिया और मांस खाना भी लगभग बन्द कर दिया। साल के आधे दिनों में तो उसने जानवरों और पक्षियों की हत्या करना तो बिल्कुल बन्द करवा दिया। निषेध दिनों पर पशु-पक्षियों को मारने काटने पर मौत की सजा देने का विधान था। इन आज्ञाओं का कठोरतापूर्वक पालन करने के लिए सभी प्रान्तों, गवर्नरों और स्थानीय अधिकारियों के नाम "फरमान" जारी कर दिये गये थे:[3]

प्रोफेसर ईश्वरीप्रसाद का कहना है "वे जैन गुरू जिनके विषय में किम्वदन्ती

---

1. विश्ववाणी 1942 नवम्बर+दिसम्बर संयुक्त अंक पृष्ठ 346
2. वही पृष्ठ 349
3. द मुगल एम्पायर—आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव पृष्ठ 171

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि उन्होंने सम्राट के धार्मिक विचारों पर भारी प्रभाव डाला, हीरविजयसूरि, विजयसेन, भानुचन्द्र उपाध्याय और जिनचन्द्र थे। सन् 1578 के बाद एक या दो जैन गुरु सम्राट की राजसभा में सदैव रहा करते थे। प्रारम्भ में उसने (अर्थात् सम्राट अकबर ने) जैन सिद्धान्तों की शिक्षा फतेहपुर सीकरी में प्राप्त की थी और जैन गुरुओं का वह अत्यन्त श्रद्धा और आदर के साथ स्वागत करता था।[1]

जयचन्द्र विद्यालंकार लिखते हैं—"जैन और हिन्दुओं के प्रभाव से उसने (सम्राट ने) गौ-हत्या की मुमानियत कर दी, विशेष अवसरों पर उसने कैदियों को छोडना शुरू किया:[2]

बंकिम चन्द्र लाहिड़ी ने अपने "सम्राट अकबर"[3] नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "सम्राट रविवार में दिन, चन्द्र और सूर्य ग्रहण के दिन और अन्य भी कई त्यौहारों के दिनों में किसी प्रकार का मांस नहीं खाता। रविवार तथा त्यौहारों के दिनों में पशु-हत्या की खास मनाही करवा दी थी।

न केवल भारतीय लेखकों ने अपितु अंग्रेजी लेखकों ने भी अकबर पर जैन सन्तों के प्रभाव को स्वीकार किया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंन्ट स्मिथ ने स्पष्ट लिखा है कि "अकबर का लगभग पूर्ण रूप से मांस का परित्याग करना एवं अशोक के समान क्षुद्र जीव हिंसा का निषेध करने के लिए सख्त आज्ञाओं का जारी करना अपने जैन गुरुओं के सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने के ही परिणाम थे:[4] एक अन्य स्थान पर भी स्मिथ ने लिखा है "मांसाहार पर बादशाह की बिल्कुल रूचि नहीं थी। और अपनी पिछली जिन्दगी में तो जब से वह

1. ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया—ईश्वरीप्रसाद पृष्ठ 406
2. इतिहास प्रवेश—श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार पृष्ठ 353
3. सम्राट अकबर गुजराती अनुवाद पृष्ठ 274
4. Akbar's action in abstaining almost wholly from eating meat and issuing stringent prohibitions, resembling those of Ashoka, restricting to the narrwrest possible limits the destruction of animal life, certainly was taken in obedience to the doctrine of his Jain teachers.

   अकबर द ग्रेट मुगल—विन्सेंट-ए-स्मिथ पृष्ठ 168

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनों के समागम में आया। तभी से उसने इसका सर्वथा ही त्याग कर दिया:[1]

डॉक्टर ज्हॉन्नेस क्लाट बर्लिन ने अपने लेख में लिखा है कि हीरविजयसूरि ने अकबर को जैन बनाया:[2]

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि बादशाह से जीवदया के कार्य करवाने में और मांसाहार छुड़वाने में जैन साधुओं के धर्मोपदेश ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। जिस गौ-वध को बन्द करने में आज सारा भारत त्राहि-त्राहि कर रहा है फिर भी उसमें सफलता नहीं मिल रही उसी पशु वध को मुगल बादशाह अकबर ने जैन सन्तो के प्रभाव से वर्ष में छः महीने के लिए पूर्णतः बन्द कर दिया था।

बादशाह पर जैन धर्म का इतना अधिक प्रभाव देखकर कुछ लोग तो उसे जैनी समझने लग गये थे, यहाँ तक कि कई विदेशी मुसाफिर जो उस समय अकबर के दरबार में आये, उसका आचरण देखकर उसे जैनी समझने लगे। इसका एक प्रमाण हमें स्मिथ की "अकबर" नामक पुस्तक से मिलता है। स्मिथ ने इस पुस्तक में पिनहरो नाम के एक पोर्टुगीज पादरी के पत्र के उस अंश को उद्धृत किया है जिससे इस कथन की प्रमाणिकता सिद्ध होती है पत्र में पादरी ने लिखा है—

"वह जैन मत का अनुयायी है"[3]

इस तरह विदेशियों को भी अकबर के व्यवहार से लगा कि वह जैन सिद्धांतों का अनुयायी है।

अन्त में अकबर द्वारा स्वयं मांसाहार का त्याग और सारे राज्य में जीव-हिंसा निषेध की पुष्टि के लिए हम यहां वैराट के शिला-लेख को उद्धृत करेंगे। राजस्थान में दिल्ली से 105 मील दक्षिण-पश्चिम तथा जयपुर से 41 मील उत्तर में वैराट नामक एक ग्राम है, इस ग्राम में पार्श्व नाथ का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के कम्पाउण्ड की दीवाल में शक सम्वत् 1509 (ईसवी सन् 1587)

---

1. He Cared little for flesh food and gave up the use of it almost entirely in the later years of his life, when he came under Jain influence.
   अकबर द ग्रेट मुगल—विन्सेन्ट-ए-स्मिथ पृष्ठ 335
2. जैन गुर्जर कवियों भाग 2—मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृष्ठ 725
3. अकबर द ग्रेट मुगल—स्मिथ पेज 262

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का एक शिलालेख हैं, जो हमारे विचारों की पुष्टि करता है। उस शिलालेख का मूल पाठ इस प्रकार है—

1. ।।ई।। श्री हीरविजय सूरीश्वर गुरुभ्यो नमः।।
   स्वस्ति श्री मन्नट........
2. शाके 1509 प्रवर्तमाने फाल्गुन शुक्ल द्वितीयां 2 (वौ)....
3. अखिल प्रतिपक्षक्ष्मापाल चक्रवालतमोजालरूचितर
   चरण कम (ल)........
4. प्रसरतिलकित प्रश्रीभूत भूपाल भाल प्रबलबल प्राक्रम
   कृत चतुर्दिग (विजय)........
5. न्यायैक धुराधरण धुरीण दुरपासर मदिरादिव्यसन
   निराकरण प्रवीण........
6. ण गोचरीकृत प्राक्तन नल नरेन्द्र रामचन्द्र धुष्टिर
   विक्रपादित्य प्रभृति मही महे (न्द्र)........
7. कीर्ति मौमुदी निस्तन्द्र चन्द्र श्री हीरविजय सूरीन्द्र चन्द्र चातुरी
   चंचुर चतुर निरा निर्वच (नी)......
8. न प्रोदभूत प्रभूत तर दयार्द्रता परिगणि प्रणीतात्यीय समग्र देश
   प्रतिवर्ष पर्यूषणा पर्व........
9. जन्म मास 40, रविवार 48, सम्बन्धित षडाधिकशतदिनावीध
   सर्वजन्तु जाता अभयदान फुर (मान)........
10. बली वर्ण्यमान प्रधान पीयूष........देदीप्यमान विशदतम
    निरपवाद शोवाद धर्मकृत्य........
11. श्री अकबर विजयमान राज्ये उद्येह श्री वइराट नगरे।
    पांडुपुत्रीय विविधावदात श्रवण........
12. भाद्यनेक गौरिक खानिनिधानी भूत समग्रसागरांबरे श्रीमाल
    ज्ञातीय राक्याणा गोत्रीय संनालूहा........
13. श्री देल्हीपुत्र सं. ईसर भार्या पुत्र स. रतनपाल
    भार्या मेदाई पुत्र स. देवदत्त भार्या धम्मूपुत्र पातस........
14. टोडरमल सबहुमान प्रदत्त सुबहुग्राम स्वाधिपत्याधिकारी
    कृत स्वप्रजापाल नानेक प्रकार सं. भारमल्ल भा........
15. इन्द्रराज नम्ना प्रथम भार्या जयवन्ती द्वितीय भार्या दमा तत्पुत्र
    सं. चूहृडमल्ल। स्व प्रथम लघु भ्रातृ सं. अज (यराज)......

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16. रीनां पुत्र सं. विमलदास द्वितीय भार्या नगीनां स्व द्वितीय लघु भातृ सं. स्वामीदास भार्या.....

17. का. पुत्र स. जगजीवन भार्या मोतां पुत्र स. कचरा स्व. द्वितीय पुत्र स. चतुर्भुज प्रभृति समस्त कुटुंबयु.....(ब)

18. इराट द्रंग स्वाधिपत्याधिकारं बिभ्रता स्वपितृनाम प्राप्त शैलमय श्रीपार्श्वनाथ ? रीरीभय स्वनाम धारित श्री श्री.....

19. चन्द्रप्रभं 2 भ्रातृ अजयराज नाम धारित श्री ऋषवदेव 3 प्रभृति प्रतिमालं कृतं मूलनायक श्री विमलनाथ बिबि

20. स्व. श्रेयसे कारितं बहुलतम वित्तव्ययेन कारिते श्री इन्द्र बिहारा पर नाम्नि महोदय प्रसादे स्व. प्रतिष्टा (ष्टा) यां

21. प्रतिष्टि (ष्टि) तं च श्री तपागच्छे श्री हेमविमल सूरि तत्पट्टलक्ष्मीकमला श्री कण्ठस्थलालंकार हारकृत स्व. गुर्वाज्ञाप्ति.....

22. सहकृत कुमार्ग पारावारपतज्जंतु समुदरण कणधाराकार

23. सुविहित साधुमार्ग क्रियोद्धार श्री आणंद.....

24. विमलसूरि पट्ट प्रकृष्टतम महामुकुट मण्डन चूडामणीयमान श्रीविजयदानसूरि तत्पट्टपूर्वाचल तटीय.....

25. .....करण सहस्त्र किरणानुमारिभि स्वकीय वचन चातुरी चमत्कृत कृत काश्मीर कामरूप—

26. स्ता (न) काबिल बदकता दिल्ली मरूस्थली गुर्जर त्रामालव मण्डल प्रभृतिकानेक जनपद.....

27. आचरण नैक मण्डलाधिपति चतुर्दशच्छत्रपति संसेव्यमान चरण हमाउ नन्दन जलालु..

28. दीनपातसहि श्री अकबर सुरत्राण प्रदत्त पूर्वोपवर्णितामारि फुरमानं पुस्तक भांडागार प्रदान बन्दि.....

29. .....दि बहुमान संवेदोपगीयमान सर्वत्र प्रख्यात जगद्गुरु विरूदधारिभिः । प्रशांतता निःस्पृहता

30. .....तांसंविज्ञता युग प्रधानता ध्येनगुण गणानुकृत प्राक्तन व्रज स्वाम्यादि सुरभिः सुवि—

31. (हितसिरोम) णिमुग्रहीत नामधेय भट्टारक पुरन्दर परमगुरु मच्छाधिराज श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

32. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री
(हीरविजय) य सूरिभिः स्वशिष्ट सौभाग्य भाग्य वैराग्य.....
33 (औदार्य) प्रभृति गुण ग्राम.....हनीयमहामणिगुण
रोहण क्षोणी—
34. (तलमण्ड) ण गुर्वाज्ञा पालनैक.....वनीकृतानेक मण्डल
महाडम्बर पुरस्सर—
35. .....प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा पृष्ठ.....क्षी वशीकर कार्मण प्राज्य
प्रवृज्या प्रदा—
36. .....कर्म्म निर्माण.....क.....माणभव्य जनमन
पवित्र क्षैम ओधिबीजवपन प्रधान—
37. .....तिरस्कृत सुधार सबांखिलास राजमान तत्तदेशीय
दर्शनस्पृहया—
38. .....मनोरथ प्रथा प्रतिथ कल्पलता प्रबर्दन सुपर्व—
पर्वतायमान विवुध जन—
39. .....कीर्ति.....पुरन्दर महोपाध्याय श्री 5 श्री
कल्याण विजयगणि परिवृतै—
40. .....श्री इन्द्र बिहार प्रसाद प्रशस्तिः पण्डित लाभविजयगणि
कृता लिखिता पण्डित सोमकुशल (ग. णिना)
41. भइरव पुत्र मसरफ भगतू महवाल 2

यह शिलालेख 1 फुट, 7½ इन्च लम्बे और 1 फुट 7½ इन्च चौड़े पत्थर पर उत्कीर्ण हैं। दाहिने ओर के ऊपर के पत्थर के टूट जाने से और नीचे के भाग के बायीं ओर के भाग के अक्षर नष्ट हो जाने के कारण अब यह खण्डित रूप में ही हमें उपलब्ध है।

इसकी प्रथम पंक्ति के नष्ट भाग में विक्रम सम्वत् दिया था, दूसरी पंक्ति में शक सम्वत् 1509 दिया है, इससे यह शिलालेख वि. सम्वत् 1644 का निश्चित होता है।

इस शिलालेख में तीसरी से दसवीं पंक्ति तक तत्कालीन बादशाह अकबर की प्रशंसा की गई है। इस प्रशंसा में अकबर से श्रीहीरविजयसूरि की भेंट से लेकर अकबर द्वारा जीव-रक्षा के लिए निकाले गये फरमानों तक का उल्लेख है। नवीं पंक्ति से ज्ञात होता है कि अकबर ने वर्ष में 106 दिन जीव-हिंसा न करने की आज्ञा निकाली थी। इनमें 40 दिन बादशाह के जन्ममास सम्बन्धि, 48 दिन रविवार के और 12 दिन पर्यूषण पर्व के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अकबर पर जैन सन्तों का इतना प्रभाव प्रकट हो जाने के बाद इस विषय में किसी को सन्देह नहीं रह जाता कि यद्यपि अकबर ने कभी अपने आपको जैन कहकर नहीं पुकारा था, तो भी वह आचरण से जैनी जरूर था। जो व्यक्ति जन्म से मांसाहारी रहा था जिसका प्रत्येक अवयव बाल्यावस्था ही से मांसाहार से परिपुष्ट हुआ था, उसी व्यक्ति ने जैन साधुओं के सहवास में आकर जैन साधुओं के उपदेशानुसार और खास "ईद" के दिन भी पशु-हिंसा बन्द कर दी थी, मांसाहार त्याग दिया था और वर्ष भर में छः महीने छः दिन तक पशु-हिंसा नहीं करने का ढिंढोरा पिटवा दिया था, उस शख्स के लिए जैन होने में शंका करना स्वयं को जैन धर्म से अजान जाहिर करना है जैन धर्म का मूल सिद्धान्त "अहिंसा धर्म" जो व्यक्ति पालता ही नहीं था। बल्कि औरों से भी अपनी सत्ता के आधार पर पलवाता था। उसको जैनी सिद्ध करने के लिए शायद अब और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# चतुर्थ अध्याय

## जहाँगीर की धार्मिक नीति

### (अ) जहांगीर की नीतियों को प्रभावित करने वाले तत्व

विरासत—

जहाँगीर धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक अकबर महान का पुत्र था। अतः के प्रति सम्मान की भावना रखते हुए दरबार में अकबर के द्वारा स्थापित राओं को मान्यता देते हुए गुण ग्राहिता के स्वभाव के कारण जहाँगीर ने त धार्मिक सम्प्रदायों तथा उनके आचार्यों के प्रति सम्मान का भाव पूर्ववत् ो रखा। जहाँगीर की धमनियों में हिन्दू माता का रक्त प्रवाहित था जिसके नुगत संस्कारों से वह अप्रभावित नहीं रह सकता था। अतः अपने दरबार सने हिन्दू मनसबदारों के प्रति पूर्ववत् विश्वास व सहानुभूति का भाव रखा। सम्प्रदायों के पूजा-स्थलों के रख-रखाव तीर्थयात्रा कर की माफी, पशु-वध ध जैसे अकबर के आदेशों को जहाँगीर ने यथावत् जारी रखा। अकबर के न काल में जहाँगीर उसके अनुकूल व्यवहार नहीं कर सका किन्तु अकबर मृत्यु के पश्चात् नीतियों के पालन में वह अकबर के प्रतिकूल भी नहीं जा जैसा कि मांसाहार व जीव-हिंसा निषेध के बारे में अकबर के समय से आ रही है कि "रविवार तथा वृहस्पतिवार को कोई पशु न मारे जायें न हम मांस खायें। विशेषकर सूर्यवार को इसलिए कि हमारे आदरणीय ा का उस दिन पर इतना सम्मान था कि उस दिन वे मांस खाने में अरूचि ा थे। और उन्होंने किसी जीव की हत्या करने को मना कर दिया था। के सूर्यवार की रात्रि को उनका जन्म हुआ था। वह कहा करते थे कि वह अच्छा रहता है कि लोगों को हत्याकारिणी प्रकृति से सभी पशुओं को कष्ट टकारा मिल जाता हैं। वृहस्पतिवार हमारी राजगद्दी का दिन है इस दिन के हमने आज्ञा दे दी कि जीव हत्या न की जावे"[1]

---

1. जहांगीरनामा—हिन्दी अनुवाद ब्रजरत्नदास पृष्ठ 254

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह तुलादान प्रथा के बारे में लिखा है कि सम्राट अकबर जो तथा उदारता के प्रकट करने के स्रोत थे, इस प्रथा के समर्थक थे वर्ष में दो अनेक प्रकार के धातु, सोना, चांदी तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं से तुलाद करते थे, एक बार सौर तथा एक बार चान्द्र के अनुसार और कुल मूल्य को एक लाख रुपये होता था। फकीरों तथा दीनों में बंटवा दिया करते थे। हम यह वार्षिक प्रथा पालन करते है। और उसी प्रकार तौलवाते तथा फकीरों बंटवा देते हैं:[1]

यह जहांगीर का सौभाग्य का कि उसे एक शान्त एवं समृद्ध शासन राज करने के गिए मिला था। डॉक्टर एस. आर. शर्मा के शब्दों में—"इसको सम्मि लित करते हुए यह कहना चाहिए कि राजा अकबर ने जो शान्ति व वैभव अप उत्तराधिकारी को समर्पित किया वह हम जहांगीर के जीवन को देखते हुए पू तरह जान सकते हैं:[2]

(ब) शिक्षा—

अन्य धर्मो के प्रति उदारदृष्टिकोण बनाये रखने के लिए जहांगीर के श अब्दुल रहीम खान का भी कम महत्व नहीं है। अब्दुल रहीम अरबी, फारस तुर्की, संस्कृत तथा हिन्दी के बहुत अच्छे विद्वान थे तथा साहित्यिक अभिरुचि व्यक्ति थे। डॉक्टर एस. आर. शर्मा ने उन्हें अपने युग के श्रेष्ठ विद्वानों में माना अपनी किशोरावस्था में सलीम (जहांगीर) ने अब्दल रहीम के चरित्र एवं बुद्धि परिष्कार पाया:[3]

(स) पत्नी—

जिस राजपूत घराने की जहांगीर की माता थी उसी घराने की उसे पा भी प्राप्त हुई। परिणामतः हिन्दू धर्म उसके जहन तथा हरम दोनों में प्र कर गया था। इस आम्बेर की राजकुमारी मानबाई के अलावा जहांगीर

---

1. वही पृष्ठ 299
2. Add to this, the lagary of peace and wealth that Aka had bequeathed to his immediate successor and have a fairly complete picture of the favour auspices under which Jahangir opened his prospe Career.
   मुगल एम्पायर इन एण्डिया—श्रीराम शर्मा पृष्ठ 264
3. मुगल एम्पायर इन इण्डिया—एस. आर. शर्मा पृष्ठ 265

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयसिंह की पुत्री जोधाबाई तथा कुछ अन्य हिन्दू स्त्रियों से विवाह किया था हिन्दू राजकुमारियों ने जहांगीर के हृदय से हिन्दू मुसलमान के भेद को या था तथा परिणामस्वरूप उसके दरबार में कई हिन्दू मनसबदारों को पदो- भी प्राप्त हुई। ओरछा वीरसिंह बुन्देला को 3000 घुड़सवारों का सेना- क बनाया गया किन्तु जहांगीर की एक पत्नी ने ही उसके इस उदारवादी र्मिक दृष्टिकोण को परिवर्तित भी किया और वह थी बेगम नूरजहां। नूरजहाँ र्जा गियास बेग, जो बाद में एतमादुद्दौला के नाम से विख्यात हुए, की पुत्री थी था इसने जहांगीर के जीवन में आकर उसके धार्मिक दृष्टिकोण को सनकी बना या इसके विषय में डॉक्टर एस. आर. शर्मा लिखते हैं कि "जहांगीर के ासन की कोई घटना इतनी आकर्षित नहीं है। जितनी कि नूरजहां से ादी की[1]

इलियट एण्ड डाउसन ने इकबाल नामा-इ-जहांगीरी का हवाला देते ए लिखा है। कि "बेगम नूरजहां के प्रभाव में जहांगीर इतना अधिक था कि पनी राजसत्ता उसने यर्थाथ में नूरजहां को ही सौंप दी थी। तथा वह स्वयं वल नाम-मात्र का बादशाह रह गया था:"[2] बेगम नूरजहां दयालु हृदय की ी तथा इस्लाम का पालन करते हुए उसने बहुत से दयालुता के कार्य किये ब रवाये।

ख) मुस्लिम मनसबदार—

अकबर के शासनकाल में ही बहुत से कट्टर पन्थी मुस्लिम मनसबदार उसकी ार्मिक उदारता की नीति से प्रसन्न नहीं थे तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् दरबार धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के अवसर की प्रतीक्षा में थे। उस समय एक बड़े इस्लामी नेता मुल्लाशाह अहमद ने दरबार के कई मनसबदारों को त्र द्वारा प्रेरित किया था कि जहांगीर के शासनकाल के प्रारम्भिक काल में ही स्लाम को राज्य धर्म घोषित कराया जाये:[3]

ग) धर्म गुरुओं से सम्पर्क—

अकबर की भांति जहाँगीर का भी भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मों व म्प्रदायों के आचार्यों से सम्पर्क रहा। दोनों के स्वभाव व रूचिओं में भेद था।

---

1. वही पृष्ठ 286.
2. द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ऑन हिस्टोरियन्स — इलियट एण्डडाउसन पृष्ठ 402
3. द रिलिजियस पॉलिसी ऑफ मुगल एम्परर्स— आर. एस. शर्मा 61

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः इस सम्पर्क में भी विशेष अन्तर यह देखा जा सकता है कि अकबर धर्म गुरूओं को अपने दरबार में स्वयं आमन्त्रित करता था तथा अनेक धर्म तथा सम्प्रदाय की अच्छी बातें जानने के लिए उत्सुक रहता था, जबकि जहांगीर भेंट करने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य एव गुरू उत्सुक रहते थे ताकि वे भारत में अपने धर्म या सम्प्रदाय के लिए राजकीय संरक्षण प्राप्त कर सकें और कम से कम उसे राजकीय प्रकोप से बचा सकें क्योंकि जहांगीर पर कट्टर पन्थी मुसलमानों का प्रभाव सुविदित हो गया था।

ईसाइयों के जहांगीर से मैत्री सम्बन्ध बहुत प्रगाढ़ थे अकबर के दरबार प्रथम ईसाई प्रतिनिधि मण्डल के नेता फादर रिडोल्फो एक्वाबिकी ने जहांगीर से मित्रता स्थापित कर ली थी जहांगीर ईसाइयत से इतना प्रभावित हो गया था। कि उसने ईसाई प्रतीकों को अपने गले में पहिन रखा था। तथा अपने पत्रों पर भी अंकित करता था। ईसाइयों के प्रति पक्षपात के लिए स्पेन के राजा फिलिप तृतीय ने जहांगीर को धन्यवाद का एक पत्र भी लिखा था:[1]

इसके विपरीत सिख गुरू अर्जुनदेव के साथ जहांगीर के सम्बन्ध कटुता के थे, जिसका मूल कारण विद्रोही शहजादा खुसरो की सहायता थी इस राजनैतिक कारण ने जहांगीर की धार्मिक सम्मान व सहिष्णुता की भावना को दबा दिया। तथा उसने "गुरू ग्रन्थ साहब" से ऐसे पदों को हटाने का आदेश दिया। जिनमें हिन्दू अथवा इस्लाम धर्म की मान्यताओं के विपरीत बातें हों।

जैन आचार्यो के प्रति सन्देह तथा कुटिल दृष्टि का कारण भी खुसरो ही था जैन मानसिंह ने इस समय बीकानेर के राजा रामसिंह को भविष्यवाणी के रूप सूचित किया कि जहांगीर दो वर्ष पश्चात् दुनियां से विदा हो जायेगा इससे निर्भय होकर राजारामसिंह ने शहजादा खुसरो की मदद की किन्तु न केवल रामसिंह व मानसिंह अपितु जैन सम्प्रदाय के दुर्भाग्य से जहांगीर ने लम्बी उम्र पाई थी तथा राजनैतिक दखलंदाजी के लिए उसने मानसिंह को तो दण्डित किया ही साथ ही अन्य जैन आचार्यो को भी सन्देह की दृष्टि से देखने लगा विरोधी कट्टरपन्थियों को जहांगीर के कान भरने का अच्छा अवसर मिल गया तथा उसे समझाया गया कि जैन मन्दिर राजनीतिक षडयन्त्र के केन्द्र हैं। जैन मुनियों का दिगम्बर रहना सामाजिक मर्यादा के विपरीत हैं। सम्राट के इ

1. मुगल एम्पायर इन इण्डिया—एस. आर. शर्मा पृष्ठ 307

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारों से जैन सम्प्रदाय पर विपरीत प्रभाव पड़ा कुछ लोगों ने तो मानसिंह को सम्प्रदाय का नेता मानने से इन्कार कर दिया:[1] श्रीराम शर्मा ने तुजुक-ए जहांगीरी का हवाला देते हुए लिखा है कि सम्राट ने जैनियों को राज्य की सरहद से बाहर निकल जाने के आदेश दिये थे परिणामस्वरूप इस काल में जैनियों ने राजपूताने में राजपूत राजाओं के आश्रम में शरण प्राप्त की:[2] किन्तु अन्य किसी स्रोत से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती इसके विपरीत जिस समय (जहांगीर के अभिषेक के 12 वें वर्ष) इस प्रकार के आदेश दिये जाने की बात कही गई है उस समय जहांगीर के यहां मुनि सिद्धिचन्द्र जी का निवास था जिसे सम्राट ने "खुशफहम" की उपाधि दी थी। यहां यह उल्लेखनीय है श्री चिमनलाल डाहया भाई दलाल ने अपने एक लेख हीरविजयसूरि और "द जैन एट द कोर्ट ऑफ अकबर" में सम्राट अकबर द्वारा मुनि सिद्धचन्द्र को "खुशफहम" की उपाधि से विभूषित किया गया बतलाया है "महामहोपाध्याय सिद्धिचन्द्र ने कादम्बरी उत्तरार्ध की टीका की जिस पर राजा अकबर ने उन्हें "खुश-फहम" की उपाधि दी वह उनके एक सौ आठ बातों (अष्टावधान) एक समय में करने से बहुत प्रसन्न हुआ:[3] जबकि डाक्टर हीरानन्द शास्त्री ने एन्शिएन्ट विज्ञप्ति पत्र की प्रस्तावना में जहांगीर द्वारा सिद्धिचन्द्र को "खुशफहम" नादर जमां" उपाधि दिये जाने का उल्लेख है:[4] तथा इसकी पुष्टि डाक्टर बेनीप्रसाद ने भी की है—"यह वस्तुतः अब भी विवाद का विषय है क्योंकि दोनों पक्षों से सम्बन्धित अभिलेखीय प्रमाण है मालपुर के चन्द्रप्रभ मन्दिर के मकराना पत्थर के शिलालेख में उस मन्दिर हेतु भूमि प्राप्त करने के सिद्धिचन्द्र के प्रयास के आलेख के साथ लिखा है "श्री अकबर प्रदत्त खुशफहमादिनाम्बां पण्डित सिद्धिचन्द्राण्य इस उपाधि से साफ जाहिर होता है कि बादशाह अकबर मुनि सिद्धिचन्द्र जी के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित था बादशाह पर जैन मुनियों के प्रभाव को डॉ. हीरानन्द शास्त्री

---

1. द शिलिजियस पॉलिसी ऑफ मुगल एम्परर—एस. आर. शर्मा पृष्ठ 67
2. वही पृष्ठ 67
3. "Thus ends the Commentary of the latter half of Kadanbary composed by Mahamahopadhyaya Siddhichandra on whom the title of khushfahm was comferved by the emperor Akabar, who was pleased with him by his feats of performing 108 thing at a time.

   जैन शासन दीवाली नो खास अंक पृष्ठ 122-23
4. एन्शिएन्ट विज्ञप्ति पत्र पृष्ठ 20

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है" जैन साधुओं का राजा पर बहुत अधिक प्रभाव था जिसका कारण उपदेशों के साथ प्रमाण भी थे:[1]

यह विज्ञप्ति पत्र 1610 ईशवी में लिखा गया था तथा इसके अनुसार आचार्य विजयदेवसूरि के दो शिष्यों विवेक हर्ष एवं उदयहर्ष ने राजा रामदास के साथ सम्राट जहांगीर से भेंट की तथा पर्यूषण पर्व के दिनों में पशु वध निषेध का फरमान निकलवाने में समर्थ हुए:[2]

इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसकी धार्मिक नीतियों की मुस्लिम लोग अवहेलना करने लगे थे, अतः पुराने आदेशों के नवीनीकरण अथवा नये सिरे से निकलवाने की आवश्यकता महसूस की गयी।

जिस प्रकार मुनि सिद्धिचन्द्रजी ने सम्राट जहांगीर को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित किया था उसी प्रकार विजयदेवसूरिजी ने अपने तप से श्री विजयसेन-सूरिजी के कारण से सम्राट ने आचार्य विजयदेवसूरिजी का पट्टाभिषेक कराया था तथा सम्राट ने उन्हें महातपा की उपाधि से सम्मानित किया था श्री विजयदेव जी ने अनेक स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा उनमें जिन प्रतिमायें प्रतिष्ठित करायी थी:[3]

सम्राट जहांगीर जैन आचार्यों को आमन्त्रित कर उनसे धार्मिक विषय

---

1. That there were Jain teacher who exercised considerable influence on Jahagir is demonstrated not only by this epistle but by other evidences as well.
   एन्शिएन्ट विज्ञप्ति पत्र पृष्ठ 20
2. वही पृष्ठ 23
3. अथ श्री विजयदेवसूरयाडहम्मदावादे प्रतिष्ठाद्वयं, पत्तने प्रतिष्ठाचतुष्टयं स्तम्भतीर्थे प्रतिष्ठात्रयं बहुद्रव्यव्ययपूर्वकं कृत्वा स्वजन्म भूमौ श्रीइलादुर्गे चतुर्मासी चक्रः। ततोऽन्यदा श्रीमण्डपाचले श्री अकब्बरपातिशाहिपुत्रा जिहांगारिश्रसिलेमशाहिः श्रीसूरीन स्तम्भतीर्थतः सबहुमानमाकार्य गुरूणां मूर्ति रूपस्फूर्तिं च वीक्ष्य वचनागोचरं चमत्कारमाप्वान्।
   विजयदेव माहात्म्यम्—श्री वल्लभपाठक पृष्ठ 131

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र वार्तालाप करता था तथा जैन साधुओं को यथोचित सम्मान प्रदान रता था:[1]

ईसाई लोग जहांगीर के पास धार्मिक संरक्षण के लिए उतना ही नहीं जितना इंग्लैंड अथवा पुर्तगाल के व्यवसाय को प्राप्त करने के लिए गये थे। इन दोनों ही शों में भारत में व्यावसायिक केन्द्र स्थापित करने की स्पर्धा थी। पुर्तगाली लोग अंग्रेजों से पहले ही गोआ में जम चुके थे अंग्रेजों ने गुजरात में सूरत को चुना था। जहांगीर के काल में इस कार्य हेतु इंग्लैंड से विलियम हॉकिन्स गये थे, जिसने जहां गीर से मित्रता कर सूरत में अपना मुख्यालय कायम करने की इजाजत प्राप्त की थी हॉकिन्स की जहांगीर से मुलाकात के बारे में एच. जी. रॉबिन्स ने लिखा है— राजा बिल्कुल शान्त दिखाई देता था उसने अपने हाकिम और दरबारियों को एक सील बन्द पत्र लिखकर सूरत में भेजा जिसका जिकर हमें मुकराबखान का अंग्रेजों के प्रति व्यवहार प्रदर्शित करता है:[2] किन्तु हॉकिन्स अधिक समय तक बादशाह का कृपापात्र न रह सका। गोआ के पुर्तगालियों ने जहांगीर के दरबार में ऊंचे पद के लोगों से मित्रता कर रखी थी तथा वे सदा अंग्रेजों के प्रति ईर्ष्यालु रहते थे इन लोगों ने अवसर पाकर हॉकिन्स की शिकायत कर दी तथा उसे जहांगीर का कोपभाजन बनकर देश छोड़ना पड़ा।

किन्तु यह मामला युद्ध व्यावसायिक था। इसमें धार्मिक प्रेरणा कतई नहीं थी। दूसरी ओर डाक्टर शर्मा पाश्चात्य लेखकों के हवाले से लिखते हैं कि— "बादशाह जहांगीर की ओर से ईसाई पादरियों को तीन से सात रुपये तक

---

1. ततः समये श्रीगुरूभिःसमं धर्मगोष्ठीक्ष्ण विचित्रधर्मवाताः पृष्ठा साक्षाद गुरूस्वरूपं निरूपम द्रष्टा च स्वपक्षीयैः परैं प्राक् किन्चिद व्युदग्राहितडपि शाहिस्तदा तत्पुण्य प्रकर्षेण हर्षितःसन श्रीहीरसूरीणां श्री विजयसेन सूरीणां च पट्टे एत एव पट्टधराःसर्वाधिपत्यभाजो भवन्तु,
विजयदेव माहात्म्यम्—श्रीवल्लभपाठक पृष्ठ 131

2. "The king now seemed quite won over. He gave Hawkings his commission, written under his golde. Seal to be sent to Surat, together with a stinging reprorf to Mukarrable Khan for his bad behaviour to the English."
सम नोटस ऑन विलियम हॉकिन्स—आर. जी. भण्डारकर कममरेटिव ऐस्सेज पृष्ठ 285

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिदिन भत्ता दिया जाता था तथा उनके धार्मिक पर्वों पर विशेष राशि स्वीकृत की जाती थी। एक ईसाई गरीब को जहांगीर ने पचास रुपये मासिक की अनुग्रह राशि स्वीकार की थी।

यह अन्तिम तथ्य तो जहांगीर के हृदय की उदारता एवं कोमलता है, इससे कोई धार्मिक पक्षपात प्रभावित नहीं होता।

**(ब) जहांगीर का धार्मिक दृष्टिकोण —**

जहांगीर के काल में भारत में हिन्दू धर्म तथा इस्लाम का तो प्रमुख रूप से प्रसार हो ही रहा था। दिल्ली में आगरा तथा राजस्थान होकर गुजरात तक जैन मत का भी बहुत प्रचार हो चुका था तथा इस क्षेत्र में अनेक जैन आचार्य चातुर्मास व्यतीत करते हुए जैन धर्म के लोगों को दीक्षित कर रहे थे। उधर उत्तर में गुरु अर्जुन देव के द्वारा सिख धर्म का जोरों से प्रचार किया जा रहा था। सूफी सन्त भी धार्मिक उदारता के साथ लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। यह सब अकबर की उदार धार्मिक नीति का ही परिणाम नहीं था अपितु यह समाज में धार्मिक चेतना का प्रतीक प्रमाण भी था। जहांगीर मन से भी अकबर से ज्यादा धार्मिक था तथा धर्म गुरूओं की आध्यात्मिक शक्तियों पर भी विश्वास करता किंतु इस चतुर्दिक धार्मिक चेतना की प्रतिक्रिया से वह बच न सका। जहां शंकालु स्वभाव का व्यक्ति था वह सभी धर्म गुरूओं को प्रसन्न भी रखना चाहता था वह इन धर्म गुरूओं को अपने पक्ष में रखने के लिए उनके तथा उनके सम्प्रदाय के प्रति विशेष उदारता भी प्रकट करता था। उसकी इन शंकाओं के पीछे राजनीतिक कारण थे। स्वयं सत्ता प्राप्त करने के लिए उसका हृदय साफ नहीं रहा था तथा उसके उत्तराधिकारियों में भी यही भावना रही थी। अतः वह अपने को तथा अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए धर्म गुरूओं का सहारा लिया करता था जब वह इलाहाबाद में सूबेदार की हैसियत से रह रहा था उस समय उसने बनारस में हिन्दू मन्दिरों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। उसके गद्दी सम्भालने पर उसके मित्र वीरसिंह बुन्देला ने मथुरा में मन्दिर बनवाया उसने ईसाइयों को भी सूरत तथा अन्य स्थानों पर गिरजाघरों का निर्माण की अनुमति दी लाहौर एवं आगरा में उसने ईसाइयों के कब्रिस्तान भी सुरक्षित घोषित किये। सभी धर्मों के सार्वजनिक उत्सवों को मनाये जाने की जहांगीर ने खुली इजाजत दे रखी थी। किन्तु जहांगीर के कुछ मनसबदार असहिष्णु स्वभाव के भी थे। वे मन्दिरों को तुड़वाकर मस्जिद बनवा देने में अपनी शक्ति की सार्थकता मानते थे। राज्याभिषेक के 8 वें वर्ष में जहांगीर के अजमेर जाने पर वहां स्थित वराह मन्दिर को उसकी सेना ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ दिया था:[1] जहांगीर स्वयं दूसरों के धर्म में दखलंदाजी अच्छी नहीं मानता था तथा उसने धर्म परिवर्तन कराने के खिलाफ फरमान जारी किया था:[2] फिर भी वह स्वयं एक सच्चा मुसलमान रहना चाहता था। वह इस्लाम की विनम्रता का पक्षधर था। अतः धार्मिक श्रेष्ठता के बल पर अपने को बहुत ऊंचा बतलाने वाले काजी मुल्लाओं को दण्डित करने में नहीं हिचकिचाता था।

राज्य पर आसीन होने के प्रारम्भिक दिनों में जहांगीर ने अकबर के काल से चली आ रही इबादतखाना में धार्मिक चर्चा की प्रथा को कायम रखा। इसमें हिन्दू, ईसाई, जैन तथा मुस्लिम सभी आमन्त्रित रहते थे। किन्तु जैसा कि वर्णन में मिलता है जहांगीर के अतिरिक्त कई मुसलमान इस चर्चा में भाग नहीं लेता था। तुजुक-ए-जहांगीरी के अनुसार उसने गुजरात के सूबेदार को पत्र लिखकर वाजिदुद्दीन के पुत्र से खुदा के नामों की सूची मंगवाई थी जिनकी वह जांच कर सके:[3]

मथुरा में जहांगीर ने वैष्णव महन्त जदरूप से भेंटकर वेदान्त का परिचय प्राप्त किया तथा उसे सूफी विचारों के अनुसार ही माना। इस सम्बन्ध में जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—"इस समय गोसाईं जदरूप ने मथुरा में निवास स्थान बनाया था हम उसके सत्संग के महत्व को समझते थे इसलिए उससे मिलने गये और बहुत देर तक उसके सत्संग का लाभ उठाया सत्यतः उसका अस्तित्व हमारे लिए बड़े लाभ का है:[4]

सम्राट किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय को कमजोर नहीं देखना चाहता था। आचार्य हीरविजयसूरिजी के पश्चात् उनके प्रधान शिष्य मुनिविजयसेन सूरिजी ने आचार्य पद प्राप्त किया तथा उनके पश्चात् मुनिविजयदेवजी ने। किन्तु मुनिविजयदेवजी की धार्मिक मान्यतायें आचार्य श्रीहीरविजयजी से कुछ भिन्न थी अतः सम्प्रदाय के अन्य मुनियों ने आचार्य मानना स्वीकार न करते हुए मुनिविजय तिलकजी को आचार्य बना दिया। सम्प्रदाय के अनुयायियों के इस प्रकार दो भागों मे बंट जाने पर धर्म प्रचार को आघात् लगाना स्वाभाविक था। जब बादशाह को

---

1. द रिलिजीमय पोलिसी ऑफ द मुगल एम्पायर—एस. आर. शर्मा पृष्ठ 62
2. वही पृष्ठ 62
3. तुजुक-ए-जहांगीरी—अनुवाद डॉ. बेनीप्रसाद पृष्ठ 243
4. जपांगीरनामा—अनुवादक ब्रजरत्नदास पृष्ठ 615

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ह विदित हुआ तो उसने अहमदाबाद से दोनों आचार्यों को बुलाकर उनकी लतफहमी दूर करने तथा सहिष्णुता का व्यवहार करने का परामर्श दिया निजिनविजयजी ने जहांगीर द्वारा आचार्य विजयदेवसूरिजी से भेंट की घटना ांडू में बतलाई है:[1] तथा बेचरदासजी ने दिल्ली में:[2]

मुनिभानुचन्द्र पूर्व से ही सम्राट के सम्पर्क में थे, विजयदेवसूरिजी के ठोरतप के साथ सुन्दर स्वास्थ्य को देखकर बादशाह ने उन्हें महातपा की पाधि दी बादशाह ने स्वयं आचार्य विजयदेव से तर्क करते हुए कहा कि गुरूजनों ी विद्यता में सन्देह न करना तथा उनके सिद्धान्तों का अनुसरण एवं पालन ाष्य का प्रथम कर्त्तव्य है। इसके विपरीत आचरण होने पर वे स्वयं अपनी ोंव खोद रहे हैं इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों को एक करने में बादशाह ने अत्यधिक रुचि ली।

इसी प्रकार गुजरात में खरतरगच्छ सम्प्रदाय के साधुओं का प्रभाव बढ़ने र बादशाह ने आचार्य हीरविजयजी तथा भानुचन्द्रजी के तपागच्छ सम्प्रदाय को वशेष संरक्षण देने के लिए गुजरात के सूबेदार को आदेशित किया।

**ांस्कृतिक एकता—**

धार्मिक भेद रखते हुए भी जहांगीर भारतीय जनता में सांस्कृतिक एकता नाये रखना चाहता था। दशहरा जैसे सांस्कृतिक उत्सवों में वह स्वयं शाही मले के साथ शामिल होता था। दीपावली उत्सव में अपने सामने जुआ खेले जाने में उसे आपत्ति नहीं होती थी। सम्राट के इस रुख के कारण बहुत से मुसलमान हिन्दू त्यौहारों में शरीक हुआ करते थे।

मुसलमानों को हिन्दू धर्म का परिचय कराने तथा इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों को समीप लाने की दृष्टि से जहांगीर ने भी हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तकों का फारसी में अनुवाद कराया। बाल्मीकीय रामायण का अनुवाद राम नाम के शीर्षक से किया गया:[3] ईसाई पादरियों ने जहांगीर की प्रेरणा से बाइबल के अरबी तथा फारसी में अनुवाद किये थे जहांगीर के गुरू अब्दुल रहीम खान खाना ने हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने का महत्वपूर्ण तथा सफल प्रयास किया। सूरसागर का संकलन भी जहांगीर के समय ही तैयार हुआ था। डॉ. शर्मा ने यह माना है कि सूरदास के प्रत्येक पद के लिए बादशाह उन्हें एक स्वर्ण मुद्रा देता था।

---

1. देवानन्द महाकाव्य प्रास्ताविक 3
2. वही पृष्ठ 14
3. स्टडीज इन मेडीवल इण्डियन हिस्ट्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहांगीर ने अपने राज्य में धार्मिक भेद-भाव को कतई पसन्द नहीं किया तथा हिन्दुओं को भी बड़े और ऊंचे मनसब दिये इससे बहुत से मुसलमान नाराज रहते थे किन्तु वह किसी धर्म की बुराई भी सहन नहीं करता था। सती प्रथा उसने एकदम बन्द कर दी थी। मादक द्रव्यों की खुलेआम बिक्री रोक दी गई थी धर्म परिवर्तन कराने को भी उसने अपराध घोषित किया था।

**साम्राज्य विस्तार में हिन्दू सामन्तों का योगदान—**

जहांगीर को विश्वस्त एवं बहादुर हिन्दू सामन्त मिले थे, जो केवल राज्य संचालन में ही उचित परामर्श नहीं देते थे अपितु उसके मनचाहे साम्राज्य विस्तार में भी सहयोगी बन गये थे। मेवाड़ के युद्ध में राजा वसु अहमद नगर के युद्ध में राजा मानसिंह ने उसको सहयोग दिया था। उत्तर पूर्व पंजाब की विजय जहांगीर को राजा विक्रमजीत ने ही दिलाई थी। राजा टोडरमल के पुत्र राजा कल्याण ने उड़ीसा को बादशाह के साम्राज्य में शामिल कराया था। राजा विक्रमजीतसिंह ने कच्छ प्रदेश की जन-जातियों के विप्लव को दबाकर वहां बादशाह का राज्य कायम कराया था। राजा विक्रमजीत का राजा विक्रमार्क के नाम से भी उल्लेख मिलता है। ये अकबर के काल में गजशाला के अध्यक्ष थे, किन्तु चित्तौड़ तथा बंगाल की विजय में अकबर का साथ देने के कारण उनको पांच हजार सेना देकर राजा की उपाधि दे दी गई थी। तुजुक-ए जहांगीर के अनुसार इनका मूल नाम पत्रदास था जिसे अकबर ने राम-रामा की उपाधि दी थी तथा जहांगीर ने ही राजा विक्रमाजीत की उपाधि से विभूषित किया था। रत्नमणि राव ने जाति से खत्री इन राजा विक्रमजीत को ओसवाल जैन माना है तथा उन्हें कुनपाल अथवा उनके भाई सोनपाल से अभिन्न माना है।[1]

सम्राट अकबर तथा जहांगीर दोनों के दरबार में मुस्लिम से भिन्न सम्प्रदायों के भी बहुत से मन्त्री तथा अन्य उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति थे, जैन सम्प्रदाय के मन्त्री कर्मचन्द्र का जितना प्रभाव सम्राट अकबर पर था उतना ही सम्राट जहांगीर पर भी। इनके कारण अनेक जैन आचार्यों, जिनका उल्लेख अगले अध्याय में किया जायेगा, जहांगीर से सम्पर्क करने का अवसर प्राप्त किया था।

1. जैन साहित्य संशोधक खण्ड 3, अंक 4 पृष्ठ 393

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# पंचम अध्याय

## जहाँगीर का जैन सन्तों से सम्पर्क

### 1. उपाध्याय भानुचन्द्रजी—

भानुचन्द्रजी जब से अकबर के सम्पर्क में आये लगातार उसके दरबार में रहे इस कारण जहांगीर उनसे परिचित था ही। अकबर के देहान्त के बाद भानुचन्द्र जी आगरा गये और जहांगीर से उन परवानों का, जो अकबर से लिए थे, अमल कायम रखने के लिए हुक्म लिया था।

जब बादशाह जहांगीर मांडवगढ़ गया उस समय वहां विजयसेनसूरि के शिष्य नन्दिविजय थे, वे जहांगीर से मिलने गये उन्हें देखकर जहांगीर को भानुचन्द्रजी का स्मरण हो आया उन्होंने नन्दिविजयजी से भानुचन्द्रजी को बुलाने का निवेदन किया और स्वयं एक मेवडा को फरमान देकर अहमदाबाद के सूबेदार मकरूबखां के पास भेजा। भानुचन्द्रजी उस समय सिरोही में थे, जैसे ही उन्हें बादशाह के निमन्त्रण की सूचना मिली तो उन्होंने मांडवगढ़ के लिये बिहार कर दिया। भानुचन्द्रजी को देखते ही बादशाह बहुत प्रसन्न हुए उनका यथोचित सत्कार कर अपने पुत्र क पढ़ाने का निवेदन किया:[1]

1. मिल्या भूपनइं भूप आनन्द पाया,
भलइं तुमे भलइं अहीं भाणचन्द आया,
तुम पसिथिइं मोहि सुख बहूत होवइ,
सहरिआर भणवा तुम वाट जोवइ।
पढावो अहम पूतकु धर्म्मवात
जिउं अवल सुणता तुझ पासितात
भाणचन्द कहीम तुमे हो हमारे
सबही थकी तुझ हो हम्महि प्या
श्रीविजयतिलक सूरिरास—पन्यास दर्शन विजय (एतिहासिक रास संग्रह) श्लोक नं. 1309, 1310

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह जहाँगीर के कहने पर भानुचन्द्रजी शहरयार को नियमित रूप से पढाने लगे।

बादशाह ने भानुचन्द्रजी से पूछा कि मेरे लायक कोई सेवा हो तो बतायें। इस पर भानुचन्द्रजी से कहा—"आपके पिताजी के पास हीरविजयसूरि आये थे उन्हें "जगद्गुरू" की पदवी से विभूषित किया था, उनके पीछे विजयसेनसूरि आये उन्होंने मोहवश विजयदेवसूरि को आचार्य पद दे दिया वे गुरू वचन को खोकर सागर शाखा में मिल गये, वे बहुत क्लेश कर रहे हैं, गुरू के वचनों को नहीं मानते और मनमानी करते हैं, इसलिए हमने उनको छोड़कर दूसरा आचार्य बना लिया है किन्तु वे पूर्वाचार्यों की निन्दा न करें आप ऐसा प्रयत्न करें।"[1] बादशाह ने आश्वासन देकर अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा आदि सभी स्थानों पर साधुओं को समझाकर पत्र लिखे बादशाह के प्रभाव से सब ठीक हो गया। जहांगीर के शासन काल में भी भानुचन्द्रजी ने वैसी ही प्रतिष्ठा पाई जैसी कि अकबर के शासनकाल में पाई थी।

**१. उपाध्याय सिद्धिचन्द्रजी—**

भानुचन्द्रजी के साथ सिद्धिचन्द्रजी भी 23 वर्ष तक के लम्बे समय तक शाही दरबार में रहे। विजयसेनसूरिजी के सम्मान में सिद्धिचन्द्रजी अहमदाबाद से खंभात आये फिर सूरिजी के आदेश से वापिस अहमदाबाद चातुर्मास करने गये वहां उपाश्रम में गवर्नर विक्रमर्क ने सिद्धिचन्द्रजी के साथ बड़े जोर शोर से भगवान पूजा की और सम्पूर्ण राज्य में पशु-वध निषेध का फरमान निकाला। अहमदाबाद चातुर्मास के बाद सिद्धिचन्द्रजी पाटन आये जब जहांगीर को सिद्धिचन्द्रजी पाटन पहुंचने का समाचार मिला जो उसकी इच्छा सिद्धिचन्द्रजी को आगरा लाने की हुई इसलिए वहां के गवर्नर ने अपने अंगरक्षक माधवदास को शाही समाचार के साथ सिद्धिचन्द्रजी के पास भेजा। सिद्धिचन्द्रजी ने अपनी लम्बी यात्रा की और रास्ते में धर्मोपदेश देते हुए शाही दरबार में पहुंचे। जहांगीर ने उनका यथोचित सत्कार किया और उनके तेजस्वी चेहरे से प्रभावित होकर प्रतिदिन कुछ समय के लिए दरबार में आने को कहा बादशाह की प्रार्थनानुसार सिद्धिचन्द्रजी प्रतिदिन दरबार में आने लगे जिससे बादशाह उनके उपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। इस तरह सिद्धिचन्द्रजी के लगातार बादशाह से मिलते रहने के कारण उनका यश चारों ओर फैल गया।

एक दिन बादशाह ने सिद्धिचन्द्रजी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर सोचा कि

---

1. एतिहासिक रास संग्रह पृष्ठ 74

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी स्थिति तो इस तरह की है जैसे कोई पुंस कोयल जंगल में आम के पेड़ पर धार्मिक तपस्या कर रही हो इसलिए उसने सिद्धिचन्द्रजी से कहा कि आप तो अभी युवा हो और राजा बनने के योग्य हो तब तुम अपने को तपस्या रूपी रेगिस्तान में क्यों बर्बाद कर रहे हो ?

इस पर सिद्धिचन्द्रजी ने जबाव दिया कि अमृत पीने में बुद्धिमान कभी देर नहीं करते, कौनसी उम्र तपस्या के लिए होती है जवानी अथवा बुढ़ापा ? मृत्यु के लिए तो जवान अथवा वृद्ध एक समान हैं। ओ राजा। वृद्धावस्था में तो इतनी शक्ति नहीं होती इसलिए तपस्या कैसे पूरी होगी ? धर्मरूपी तपस्या तो सारे शत्रुओं का नाश कर देती है, पूर्वजन्म के अनगिनत दुष्कर्मों के साथ-साथ वर्तमान जीवन के दुष्कर्मों का भी नाश हो जाता हैं। बादशाह ने पूछा तुम अपने दिमाग को इस उम्र में कैसे स्थिर रख लेते हो जबकि इस उम्र में तो गुस्सा बहुत जल्दी आ जाता है ? सिद्धिचन्द्र ने जबाव दिया—"ज्ञान के साधनों द्वारा"। ज्ञान आता है धार्मिक चिन्तन द्वारा आदमी को स्वयं की प्रकृति समझना सिखाता है इससे दिमाग ऐसे नियन्त्रित हो जाता है जैसे हाथी को हूक (चाबुक) से नियन्त्रित किया जाता है।

सिद्धिचन्द्रजी का इस तरह जबाव सुनकर बादशाह ने क्रोधित होकर कहा कि ज्ञान के बिना जो कुछ आप कह रहे हैं मैं इसे कैसे समझ सकता हूं। सिद्धिचन्द्र जी ने कहा इसे समझने के लिए ज्ञान की जरूरत नहीं जैसे आपको जिस चीज में आनन्द मिलता है एक ब्राह्मण को उसमें नहीं मिल सकता उसी तरह हमारा दिमाग सांसारिक खुशियों की ओर नहीं झुकता क्योंकि हमने कभी उनका स्वाद नहीं लिया। लोग जानते हैं कि एक औरत जो अपने मृत पति की चिता में गिरने के लिए उसका पीछा करती है, अन्य सारे रिश्तों से और समस्त सांसारिक वस्तुओं से मुक्त होती है उसी तरह एक तपस्वी जो तपस्या का अभ्यास करता है सांसारिक खुशियों से अप्रभावित रहता है तपस्वी हमेशा आत्मिक विचारों की उन्नति में डूबे रहते हैं। राजा भी उन्हें भयभीत नहीं कर सकते वे तो इस तरह आजाद और प्रसन्न रहते हैं जैसे मछलियां समुद्र में। सत्कार्यों में लगे रहते हैं अधिकारों के लालच के दास नहीं होते। नियमों के पालन के साहसी होते हैं और सदा स्वतन्त्र होते हैं।

बादशाह ने सिद्धिचन्द्र के विद्वतापूर्ण तर्कों से प्रभावित होकर उन्हें "नादिरा जमां" (युग के बेजोड़, अद्वितीय) और "जहांगीर पसन्द" उपाधियों से विभूषित किया:[1]

---

1. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका अमरचन्द भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 65

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे राजाओं का वास्तविक धर्म बताते हुए सिद्धिचन्द्रजी ने बादशाह से कहा कि राजन। राजा-महाराजाओं के ऊपर प्रजा के रक्षण का उत्तरदायित्व आता है उनमें कितनी दयालुता, न्यायप्रियता और उदारता होनी चाहिए सहज में ही समझा जा सकता है। यदि राजा लोग शिकार आदि व्यर्थ के कामों में समय नष्ट करें तो वे प्रजा का रक्षण क्या करेंगे। मनुस्मृति में राजाओं के धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

"राजा अपनी इन्द्रियों को बस में रखे, जिस राजा का अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण होगा, वही अपनी प्रजा को नियन्त्रण में रख पायेगा राजा को काम से उत्पन्न होने वाले 10 और क्रोध से उत्पन्न होने वाले 8 व्यसनों को यत्नपूर्ण छोड़ देना चाहिए।

काम जन्य व्यसनों में आसक्त रहने वाला राजा धर्म और अर्थ से हीन होता है, और क्रोध जन्य व्यसनों से जीवन का भी नाश हो जाता है।

काम जन्य दस व्यसन इस प्रकार गिनाये हैं –शिकार करना, जुआ खेलना, दिन में सोना, दूसरे का अवगुण देखना, स्त्रियों में आसक्त रहना, नशा करना, बजाना, नाचना, गाना और आकरण घूमते रहना।

क्रोध से उत्पन्न आठ व्यसन इस प्रकार हैं—चुगली, दुःसाहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरे के गुणों में दोष निकालना, दूसरे के द्रव्य छीन लेना, कटु वचन बोलना, निर्दोष व्यक्तियों को प्रताड़ित करना:[2]

---

1. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 65
2. इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवा निशम्।
   जितेन्द्रियों हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥
   दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
   व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥
   कामजेषु प्रसक्तो हिव्यसनेषु महीपतिः।
   वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥
   मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
   तौर्यत्रिकं वृथाटया च कामजो दशको गणः॥
   पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
   वाग्दण्डजं च पारूष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥
   मनुस्मृति अध्याय 7, श्लोक 44, 45, 46, 47, 48

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन व्यसनों से सहज ही जान सकते है कि ये व्यसन सामान्य मनुष्य का भी महान अनर्थकारी हो सकते हैं तो फिर राजा जैसे महान व्यक्ति जिन पर लाखों मनुष्यों की प्रजा की जिम्मेंदारी हो उसके लिए अनर्थकारी हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? इन व्यसनों में आसक्त रहने वाला राजा कभी भी अपनी प्रजा के अथवा राज्य के रक्षण करने में समर्थ नहीं हो सकता । इसलिए शास्त्र कारों के वचनों को ध्यान में रखकर राजा को इन व्यसनों से दूर ही रहना चाहिए ।

सिद्धचन्द्रजी के उपदेशों का बादशाह पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने अकबर के समय से चली आ रही परम्पराओं को जारी रखा ।

### 3. आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी—

आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी जिस समय लाहौर में अकबर के दरबार में गये थे शहजादा सलीम उसी समय उनका भक्त हो गया था । अकबर की मृत्यु के बाद सलीम "नूरुद्दीन जहांगीर" के नाम से गद्दी पर बैठा तब भी सूरिजी को पूर्ववत् सम्मान की दृष्टि से देखता था । जहांगीर का चारित्रिक दोष था कि वह अत्यधिक मद्यपान के साथ-साथ अति क्रोधी स्वभाव का था । यही कारण था कि मद्य के नशे में कई बार वह ऐसे आदेश प्रसारित कर देता था कि निर्दोष लोग भी उसकी चपेट में आ जाते थे ।

सम्वत् 1668 (सन् 1611) में एक शिथिलाचारी वेषधारी दर्शनी को अनाचार करते हुए देखकर सम्राट ने उसे तो देश निकाला दिया ही, साथ ही साथ सब यति साधुओं के चरित्र के विषय में शंकित होकर यह हुक्म जारी कर दिया कि राज्य में जहां कहीं दर्शनी सेवडे हैं या तो वे ग्रहस्थ वेश धारक बन जायें या राज्य से बाहर निकल जायें । जहांगीर ने अपनी आत्म कथा में लिखा है—"हमने आज्ञा दी कि ये सेवडे निकाल दिये जायें और हमने फरमान भी चारों ओर भेज दिये, सेवडें जहां भी हों वहां से हमारे साम्राज्य के बाहर निकाल दिये जायें:[1]"

इस घटना का विवरण विजय तिलक सूरिरास में भी मिलता है:[2]

---

1. जहांगीर नामा—हिन्दी अनुवाद ब्रजरत्नदास पेज 500
2. "गच्छनायकना बोल उथापि निजमत परूपई आपो आपि ।
   एहवई पृथ्वीपति जहांगीर, दोषी वचने लागो वीर ॥
   वेषधारी ऊपर कोपियो, मुतकलनई देसोटो दियो ।
   मलेछ न जाणई तेह विचार, आचारी मोकल अणगार ॥
   विजयतिलकसूरि रास—पन्यास दर्शन विजयजी पृष्ठ 33

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कठोर आज्ञा को सुनकर दर्शनी लोग इधर उधर भागने लगे, कुछ तलघरों में छिप गये यानि जैसी जिसे सुविधा मिली उसने वैसा ही कर लिया। जिन्हें कोई ठिकाना न मिला उन्हें यवनों ने पकड़कर काल कोठरी में बन्द कर दिया जहां उन्हें अन्न जल भी नहीं मिलता था। इस घटना का विस्तृत विवरण युग प्रधान निर्वाण रास में मिलता है:[1]

जिस समय बादशाह ने इस प्रकार की अन्यायपूर्ण आज्ञा निकाली उस समय यानि सन् 1611 में सूरिजी का चातुर्मास पाटण में था। इस प्रकार की विकट परिस्थितियों में आगरा श्रीसंघ ने सूरिजी को विज्ञप्ति पत्र लिखकर संकट निवारण की विनती की। चातुर्मास पूर्ण होते ही सूरिजी ने आगरा की ओर बिहार कर दिया। शीघ्र ही बिहार करते हुए अपनी शिष्य मण्डली के साथ सम्वत् 1669 (सन् 1612) में आगरा पहुंचे। सूरिजी के दर्शन मात्र से ही बादशाह का क्रोध शान्त हो गया। उसने सूरिजी से पाटण से अचानक ही आने का कारण पूछा, इस पर सूरिजी जिस समस्या को सुलझाने आये थे, बादशाह को बताकर साधु-बिहार को मुक्त करने के लिए कहा। बादशाह का कहना था कि भुक्त भोगी होकर साधू बनना निरापद होता है। इस पर सूरिजी ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में बादशाह को सम्बोधित कर कहा—

ब्रह्मचर्य को जैन दर्शन में बहुत ही ऊंचा स्थान दिया गया है, उसके पालन तथा रक्षा के हेतु नौ कड़ी आज्ञायें शास्त्रकारों ने बतला दी हैं जिनसे सुखपूर्वक निर्विघ्नतया ब्रह्मचर्य व्रत स्थिर रह सके वे इस प्रकार हैं—

(1) जहां स्त्री-पुरुष, पशु और नपुंसक निवास करते हों, उस स्थान में नहीं रहना।

(2) विषय विकारों की जागृति और अभिवृद्धि करने वाली बातें न करना और न सुनना।

(3) जहां स्त्री बैठी हो उस स्थान व उस आसन पर दो घड़ी तक न बैठना।

(4) दीवाल की ओट में भी जहां स्त्री-पुरुष काम-क्रीड़ा और प्रेम वार्ता करते हों वहां न ठहरना और न उसे सुनना।

(5) पूर्वावस्था के भुक्त भोगों को स्मरण तक न करना।

1. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—युग प्रधान निर्वाण रास—अगरचन्द नाहटा पृष्ठ 81-82

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(6) सरस स्निग्ध भोजन और कामोद्दीपक पदार्थों का उपभोग नहीं करना।

(7) स्त्री-पुरुष किसी को भी सराग दृष्टि से न देखना।

(8) सर्वदा आवश्यकता से भी कम भोजन करना जिससे आलस्य और विकार उत्पन्न न हों।

(9) शरीर पर किसी भी प्रकार से श्रंगार या शोभा न करना ताकि सराग दशा जाग्रत न हो।

सब तुम स्वयं विचार कर देखो कि इन प्रतिज्ञाओं को निभाने वाला किस प्रकार आचारच्युत हो सकता हैं हां जो भृष्ट हुए हैं वे इन नियमों को यथावत पालन न करने के कारण ही। जैन शासन उन्हें किसी भी हालत में उपादेय नहीं समझता और न सहानुभूति ही रखता है। अतः समस्त साधुओं पर अश्रद्धा लाकर उन्हें कष्ट पहुंचाना तुम्हारे जैसे विचारशील, न्यायवान, और प्रजा हितेच्छु सम्राट के लिए उचित नहीं कहां जा सकता:[1]

सूरिजी के मुखारविन्द से इस प्रकार धर्मोपदेश सुनकर बादशाह ने बेरोक-टोक साधू बिहार करने का फरमान जारी कर दिया। इससे श्रीसंघ को अपार खुशी हुई। श्रीसंघ के कहने से सूरिजी ने सम्वत् 1669 (सन् 1612) का चाबुर्मास आगरा में ही किया। इस प्रकार सूरिजी ने सम्राट को प्रतिबोधित कर साधू बिहार प्रतिबन्धक हुक्म का उन्मूलन करवाके साधू संघ की महान रक्षा के साथ जैन शासन की अपूर्व सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त किया। वास्तव में सम्राट का एक व्यक्ति के अनाचार से सारे साधू संघ को अनाचारी मान सबको देश निर्वासन का हुक्म देना अन्यायपूर्ण था। सूरिजी ने सम्राट को उसकी इस गहरी भूल का एहसास करवाकर उस अन्यायपूर्ण हुक्म को रद्द करवाने का जो गौरव प्राप्त किया उसका विवरण एतिहासिक जैन काव्य संग्रह[2] और भानुचन्द्रगणिचरित में भी मिलता है[3] शिलालेखों में भी इसकी पुष्टि

---

1. युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि—अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 148 149
2. एतिहासिक जैन काव्य संग्रह—अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 179
3. भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 20

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है।[1]

जैन शासन की प्रभावना के कारण सूरिजी की प्रसिद्धि सवाई युग प्रधान के नाम से हुई। खरतरगच्छ पट्टावली में भी इसका विवरण मिलता है:[2] इसी समय एक विद्वान ने बादशाह के दरबार में आकर गर्वपूर्वक शास्त्रार्थ करने की उद्घोषणा की। बादशाह ने सूरिजी को समर्थ समझकर शास्त्रार्थ करने के लिए कहा। सूरिजी ने असाधारण प्रतिभा द्वारा शास्त्रार्थ में भट्ट को पराजित कर युग प्रधान भट्टारक पद की ख्याति प्राप्त की।

इस तरह हम कह सकते हैं कि जहांगीर ने भी अपने पिता की तरह ही आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी को सम्मानित किया और सूरिजी ने भी अकबर की तरह ही जहांगीर पर भी अलौकिक प्रभाव डाला।

4. आचार्य श्री जिनसिंह सूरिजी—

अकबर अपने काश्मीर प्रवास के समय मानसिंह (आचार्य जिनसिंह सूरि) को धर्मोपदेश के लिए साथ ले गया था। शाहजादा सलीम भी साथ ही था इसलिए वह जिनसिंहसूरि से अच्छी तरह से परिचित था। सूरिजी ने भी जिस तरह अकबर को प्रतिबोधित कर जीव दया के कार्य करवाये थे उसी तरह जहांगीर को भी अपनी अलौकिक प्रतिभा से प्रतिबोधित किया था। बादशाह को धर्मोपदेश देकर अभयदान का पटह बजवाया था। एतिहासिक जैन काव्य संग्रह में विवरण मिलता है :[3]

बादशाह सूरिजी के गुणों से इतना प्रभावित हुआ कि मुकरबखान को भेजकर श्रीसंघ द्वारा उन्हें "युग प्रधान" की पदवी प्रदान कराई:

1. श्री साहि सलेम राज्ये तादृयकृत श्री जिनशासन मालियन्तः श्रीसाधू विहारो निषिद्धः साहितना : तत्रावसरे श्री उग्रसेनपुरे गत्वा साहि प्रतिबोध्य च साधूनां बिहारः स्थिरीकृतः। तदा लब्धः सवाई युग प्रधान बड़ागुरू रितिबिरूदो येन गुरूणा।
   प्राचीन जैन लेख संग्रह—सम्पादक जिनविजयजी, भाग 2, लेखांक 17 पृष्ठ 20
2. खरतरगच्छ पट्टावली—सम्पादक जिनविजयजी पृष्ठ 56
3. "वचन चातुरी गुरू प्रतिबूझवि साहि "सलेम" नरिंदो जी
   अभयदान नउ पडहो वजाविउ, श्री जिनसिंह सूरिंदो जी॥
   एतिहासिक जैन काव्य संग्रह—सम्पादक जिनविजयजी पृष्ठ 132
4. श्रीसंघ रे युग प्रधान पदवी लही, आया मुकरबखान रे।
   साजन मन चिंत्या हुआ, मल्या दुरजन माण रे॥
   एतिहासिक जैन काव्य संग्रह—सम्पादक जिनविजयजी पृष्ठ 132

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी को युग प्रधान पद दिये जानने का विवरण शिलालेखों में भी मिलता है:[1]

सूरिजी को युग प्रधान पद दिये जाने का वर्णन तो भानुचन्द्रगणिचरित में भी मिलता है। लेकिन इस पुस्तक के भूमिका लेखक नाहटा आगे लिखते हैं कि जब से सं 1674 (सन् 1617) में सूरिजी बादशाह के दरबार में आ रहे थे तो मेडता में उनका स्वर्गवास हो गया जब बादशाह को पता चला तो उसने सूरिजी की मृत्यु का स्वागत किया:[2] इसका कारण नाहटा की समझ में नहीं आया वास्तव में इसका कारण मानसिंह द्वारा जहांगीर के विषय में की गई भविष्य-वाणी थी। बीकानेर के राजा रायसिंह भुरटिया ने मानसिंह से जहांगीर के राज्य के बारे में पूछा, मानसिंह ने बताया कि बादशाह का राज्यकाल अधिक से अधिक दो वर्ष रहेगा। बादशाह ने क्रोधित होकर मानसिंह को बुलवाया। मानसिंह बीकानेर से बिहार कर मेड़ता आये वहां शायद मानसिंह को पता चल गया कि बादशाह ने किस कारण से बुलाया है इसलिए विष खा लेने पर अस्वस्थ हो जाने के कारण काल कर गये यही कारण था कि जब बादशाह को इस घटना का पता चला तो उसने मानसिंह की मृत्यु का स्वागत किया। जहांगीर ने अपनी आत्म-कथा में इस घटना का जिक्र किया है:[3]

**5. आचार्य श्री विजयदेव सूरि—**

जिस प्रकार मुगल सम्राटों में अकबर, जहांगीर और शाहजहां तीनों सम्राट भारत के गौरव के उत्कर्ष हुए उसी प्रकार जैनाचार्यों में भी हीरविजयसूरि, विजयसेनसूरि और विजयदेवसूरि जैन समाज के गौरव के उत्कर्ष हुए। इन तीनों आचार्यों का मुगल सम्राटों ने खूब सत्कार किया था, इनके ज्ञान और चरित्र से प्रभावित होकर उन्होंने भी जैन धर्म के प्रति अपना ऊंचा आदर भाव व्यक्त किया था।

जिस तरह सम्राट अपने साम्राज्य की रक्षा और वृद्धि के प्रयत्न में आजीवन तल्लीन रहते थे। और देश में एक कोने से दूसरे कोने में घूमकर अपने

---

1. "नूरदीन जहांगीर सवाई प्रदत्त युग प्रधान पद धारक
सकलविद्या प्रधान युग प्रधान श्री जिनसिंहसूरि।
प्राचीन जैन संग्रह लेखांक 19 पृष्ठ 27
2. भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई पृष्ठ 20
3. जहांगीरनामा—हिन्दी अनुवाद ब्रजरत्नदास पृष्ठ 499

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन की सुव्यवस्था में व्यस्त रहते थे उसी तरह ये आचार्य भी जैन धर्म और जैन संघ की रक्षा और वृद्धि के प्रयत्न में आजीवन दत्तचित्त रहते थे अपने धर्म और समाज की उन्नति और प्रतिष्ठा के निमित्त ये राजाओं के दरबार में उपस्थित होते थे। उन्हें प्रतिबोधित करते थे। और बदले में सिर्फ प्राणी रक्षा और अहिंसा का उनसे प्रचार और पालन करवाते थे। अधर्मी और अत्याचारी द्वारा सताये जाने वाले प्रजाजनों और धर्मनिष्ठ मनुष्यों की रक्षा करवाते थे। धर्म स्थानों की पूजा और पवित्रता का सुप्रबन्ध करवाते थे।

आचार्य हीरविजयसूरि और विजयसेन सूरि ने बादशाह अकबर पर जो प्रभाव डाला वह तो हमें विदित हो ही गया है यहां हम आचार्य विजयदेवसूरि और जहांगीर के बारे में देखेंगे।

हीरविजयसूरिजी के समय में ही उनके शिष्यों में कुछ विचार भेद हो जाने से विरोध पैदा हो गया था जो कि विजयदेवसूरि के समय में ज्यादा बढ़ गया। गच्छ के इस विरोधी वातावरण का प्रतिबोध जहांगीर के दरबार तक जा पहुंचा। हीरविजयसूरि के शिष्यों में से कइयों के साथ जहांगीर का बचपन से ही परिचय था वह अपने पिता के धर्मोपदेश के साथ वाली नीति का पालन भी करना चाहता था इसलिए जब बादशाह ने सुना कि हीरविजयसूरिजी के शिष्य आपस में अनबन हो जाने के कारण परस्पर एक दूसरे के विपक्षी बन रहे हैं जिनविजयदेवसूरि को हीरविजयसूरि के पट्टधर विजयसेनसूरि ने अपना पट्टधर घोषित किया है उनके बारे में कई शिष्य अपना विरोध व्यक्त कर रहे हैं तब बादशाह के मन में विजयदेवसूरि से मिलने की उत्कण्ठा पैदा हुई (इस समय भानुचन्द्र उपाध्याय बादशाह के पास मांडू में ही थे। उन्होंने भी बादशाह से इस घटना की चर्चा करते हुए आग्रह किया था कि वे विजयदेवसूरि को समझावें) बादशाह इस समय मांडू में था और विजयदेवसूरि का चातुर्मास खम्भात में था बादशाह ने मांडू जैन श्रीसंघ के नेता चन्द्रपाल को बुलाया और एक फरमान लिखकर, जिसमें सूरिजी से दरबार में आने का निवेदन किया गया था, खम्भात भेजा:[1] जैसे ही सूरिजी को फरमान मिला, उन्होंने खम्भात से बिहार कर दिया और आश्विन सुदी तेरस सम्वत 1674 (सन् 1617) को मांडू पहुंचे। चन्द्रपाल ने बादशाह को समाचार दिया कि जिनविजयदेवसूरि के दर्शनों के लिए आप लालायित थे वे मांडू पधार चुके हैं। अगले दिन अर्थात् आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को सूरिजी बादशाह के दरबार में

---

1. विजयदेव—माहात्म्यम्—श्री श्रीवल्लभपाठक सर्ग 17 पद 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुंचे। बादशाह ने तीन पग आगे बढ़कर सूरिजी का स्वागत किया:[1] सूरिजी के प्रभावशील चेहरे और व्यक्तित्व को देखते ही बादशाह ने सूरिजी से धर्मगोष्ठी की जिसमें उनसे रात्रि आहार परित्याग के बारे में पूछा ? सूरिजी ने रात्रि आहार-परित्याग का सुफल बताया कि न केवल जैन अपितु वैदिक ग्रन्थों के अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि रात्रि भोजन का सभी में निषेध किया गया है क्योंकि दिन की अपेक्षा रात्रि में सूक्ष्म जीव अधिक उड़ते हैं जिस तरह वे हमारे शरीर पर बैठते हैं उसी तरह भोजन पर भी। अतः रात्रि भोजन करने वालों के पेट में इन सूक्ष्म जीवों का जाना स्वाभाविक है। इसी कारण शास्त्रकारों ने रात्रि भोजन का निषेध किया है। कर्मपुराण में लिखा है—"हरेक प्राणी पर प्रेम भाव रखें, द्रोह नहीं करे, निर्द्वन्द्व, निर्भय रहे और रात्रि भोजन न करे, रात्रि को ध्यान में, लीन रहे।" इसी पुराण में आगे चलकर लिखा है कि "सूर्य की विद्यमानता में पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके भोजन किया जाये।"[3]

रात्रि भोजन निषेध के बारे में मार्कंण्डेय पुराण में लिखा है कि सूर्यास्त के बाद पानी रुधिर के समान और अन्न मांस के समान है। योगशास्त्र में भी कहा गया है कि यदि भोजन में कीड़ी आ जाये तो बुद्धि का नाश करती है, जूं आये तो जलोदर हो जाता है, मक्खी आने से उल्टी हो जाती है, मकड़ी आये तो कोढ़ हो जाता है, तिनका गले में आ जाये तो दर्द होता है सांग आदि में बिच्छु आ जाये तो तलुए को तोड़कर प्राणों का नाश कर देती और यदि गले में बाल आ जाये तो स्वर भंग हो जाता है, इत्यादि शरीर सम्बन्धि अनेक भय रात्रि भोजन में हैं। बादशाह सूरिजी की विद्वता, तेजस्विता और कर्तव्यनिष्ठा को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ सूरिजी के विपक्षियों ने जो जो बातें सूरिजी के विषय में बादशाह से कही थी उनका सूरिजी में विपरीत भाव जानकर बादशाह ने सूरिजी को खूब सत्कृत किया और यह जाहिर किया कि हीरविजयसूरिजी के ये ही यथार्थ उत्तराधिकारी हैं इसलिये उनको "जहांगीर महातपा" की उपाधि देकर गच्छ के सच्चे अधिनायक प्रणाणित किया:[4] मोहनलाल दलीचन्द भी लिखते हैं कि बादशाह सूरिजी से बहुत प्रभावित हुआ "जहांगीर महातपा" (जहांगीर द्वारा पहचाना गया

---

1. वही, पद्य 24
2. कर्मपुराण अध्याय 27 पृष्ठ 645
3. वही, पृष्ठ 653
4. विजयदेवसूरि महात्मय वर्ग 17, पद्य 32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक महान तपस्वी) की उपाधि दी:[1]

रेजी को महातपा की उपाधि दिये जाने का विवरण शिलालेखों से भी मिलता है:[2]

सूरिजी के व्यक्तित्व व तप से प्रभावित होकर बादशाह ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर कहा हैं कि—"इस लोक के मान्य पुरुषों में आप सर्व श्रेष्ठ हैं अपने व पराये सभी की उन्नति में रत है। बादशाह ने बार-बार अपनी ओजस्वी वाणी में कहा कि आप जैसे तेजस्वी के आगे मैं नतमस्तक हूं कोई भी प्राणी क्रोध चरिज होने पर भी अगर आपका परोक्ष रूप में भी अपमान करता है तो वह आत्मिक रूप से दुखी होता है। मैं धन्य हूं कि आप जैसे तेजस्वी पुरुष के दर्शन किये जिससे मुझे सुख की अनुभूति हुई इस प्रकार बादशाह ने सभी लोगों की उपस्थिति में गुरूदेव की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की: [3]

बादशाह जहांगीर के अलावा मेवाड़पति राणाजगतसिंह, जामनगराधीश लाखा जाम, ईडरनरेश रायकल्याणमल आदि बहुत से राजा महाराजा भी सूरिजी का बहुत अच्छा सत्कार करते थे। उदयपुर के महाराणा जगतसिंह पर सूरिजी ने जो प्रभाव डाला इसके लिए देखिये परिशिष्ट नं. 5

---

1. भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक मोहनलाल दलीचन्द पृष्ठ 21
2. "श्री जालोर नगरे प्रतिष्ठितं व तपागच्छधिराज भ. श्रीहीरविजय सूरिजी पट्टालंकार भ. श्री विजयसेनसूरि पट्टालंकार पातशाहि श्री जहांगीर प्रदत्त महातपाविरुदधारक—भा. श्री विजयदेवसूरिभि—
   प्राचीन जैन लेख संग्रह—भाग 2—लेखांक 367, पृष्ठ 319
3. अतः समस्ता भोलोका मन्यन्तामिममुक्तमम, समस्तरि समस्तानं मामिव प्रभुक्तोत्तम।
   पातिसाहिरभाषिष्ट बारं वारमितिस्फुटम, मत्तोऽप्यीधकतेजस्वीयद्धतं वशवर्त्यहम
   कुपितःकांडपि पापीयानकोपतःकोपपूरित, भविष्यति सदादुखी सए- तस्मात्परा ड. मुख
   धन्योऽयं कृतपुण्योऽयं तपस्तेजःसमुच्चयः, दर्शनेषुत्तमचास्यदर्शनं सुख- कारियत। एवं प्रशंसतानेकभूपलोक सभास्थितः पातिसाहि-जहांगीर शिलेम साहिर हो गुरूम।
   विजयदेव महात्म्यम सर्ग 17 पद्य 51, 52, 53, 54, 55

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**उपाध्याय विवेकहर्ष, परमानन्द, महानन्द, उदयहर्ष –**

उपाध्याय विवेकहर्षजी आचार्य आनन्दविमलसूरि के प्रतापी शिष्यों में से थे। ये अष्टावधान साधते थे। बादशाह जहांगीर से मिलने से पहले इन्होंने अनेक हिन्दू राजाओं और मुगल सूबेदारों को प्रतिबोधित कर जीव-हिंसा बन्द कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इनका सम्बन्ध कोंकण का राजा बुरहानशाह, महाराज श्री रामराजा, कच्छ का राजा भारमल, खानखाना और नौरंगखान आदि से था कच्छ देश के खाखर में जो शिलालेख है उसे पढ़ने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि राजा भारमल तो विवेकहर्ष के प्रभाव से जैन ही हो गया था क्योंकि उनका बनवाया हुआ भुज नगर में राजबिहार नाम का ऋषभनाथ जैन मन्दिर है जो सम्वत् 1658 (सन् 1601) में बनवाया और तपागच्छ संघ के अधीन कर दिया। जो आज भी कायम हैं। भारमल को प्रतिबोध देकर उनसे अनेक राज्य में जीव-हिंसा निषेध का लिखित रूप में भी प्रचार करवाया जो शिलालेखों के रूप में खाखर के मन्दिर में, जो आज भी विद्यमान है, उसमें वर्णन है कि उनके राज्य में हमेशा के लिए गाय वध का मुमानियम (मनाही) कर दी गई थी। ऋषि पंचमी सहित पर्यूषणों के आठ दिनों को मिलाकर नौ दिन श्राद्ध पक्ष, सब एकादशी के दिन, रविवार, अमावस्या के दिनों में, महाराज का जन्म दिन तथा राज्याभिषेक के दिन राज्य में किसी जीव की हिंसा न की जाये। शिलालेख के लिए देखिये परिशिष्ट नं. 6

इस तरह जगह-जगह धर्मोपदेश देते हुए अपने शिष्यों परमानन्द, महानन्द और उदयहर्ष के साथ विवेकहर्ष बादशाह जहांगीर के दरबार में पहुंचे। और बादशाह से विनती कर 12 दिन वाले फरमान की (जो अकबर ने हीरविजयसूरि जी को दिया था) एक नकल प्राप्त की।

## जहांगीर के दरबार में अन्य जैन साधू

**1. नेमीसागर उपाध्याय—**

जिस समय विजयदेवसूरि मांडू में बादशाह के पास थे, उन्होंने राधनपुर से नेमीसागर जी को बुलाया। सूरिजी की आज्ञानुसार नेमीसागर जी राधनपुर से विहार कर मांडू आकर बादशाह जहांगीर से मिले।

**2. दयाकुशल—**

दयाकुशलजी ने बादशाह जहांगीर से भेंट की बादशाह उनसे इतना प्रभावित हुआ कि एक अगस्त सन् 1618 को दयाकुशलजी के गुरू विजयदेवसूरि को एक पत्र लिखा—"हमने आपके शिष्य से जो कुछ सीखा उससे हम बहुत प्रसन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय विवेकहर्ष बादशाह जहांगीर से पशु-वध
निषेध का फरमान प्राप्त करते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ं बहुत अनुभवी और बुद्धिमान हैं। जो कुछ वे कहेंगे हम सब करेंगे। सम्पूर्ण
के लिए देखिये परिशिष्ट नं. 7

**धर्ममूर्ति और कल्याणसागर—**

कुनपाल और सोनपाल ओसवाल के दो धनाढ्य जैन भाई जहांगीर के
बार में उच्च पद पर सम्मानित थे। उन्होंने आगरा में एक विशाल मन्दिर
वाया जिसमें धर्ममूर्ति और उनके शिष्य कल्याणसागर के द्वारा वैशाख
ी तीज सम्वत् 1671 (सन् 1614) को श्रेयांसनाथ और महावीर की प्रतिमायें
ापित की गईं। इससे प्रकट होता है कि धर्ममूर्ति कल्याणसागर ने बादशाह से
की।

**नन्दविजयसूरि—**

वर्ष 1617 ईसवी में आचार्य विजयसेनसूरिजी के शिष्य एवं उत्तराधिकारी
चार्य विजयतिलकसूरिजी के आदेश से मुनि नन्दविजय धर्म प्रचारार्थ मांडू गये।
न दिनों वहां सम्राट जहांगीर का पड़ाव था। सम्राट ने मुनिजी का बहुत
म्मान किया तथा उन्हें मुनि श्री भानुचन्द्रजी का स्मरण हो आया उन्होंने तत्काल
ने श्री भानुचन्द्रजी को मांडू के लिए निमन्त्रण भेज दिया। सम्राट अकबर के
क्ष लाहौर में इन्होंने अष्टावधान का प्रदर्शन किया था[1] सम्राट मुनि की इस
द्धता पर बहुत मुग्ध हुआ इस समय मुनि नन्दविजय के साथ आचार्य श्रीविजय-
सूरि भी थे।

**विजयतिलकसूरि—**

आचार्य विजयदेवसूरिजी जिनका उल्लेख पूर्व में हो चुका है, ने आचार्य
रविजयसूरि की मान्यताओं के विपरीत प्रवचन परीक्षा ग्रन्थ के मुनि धर्मसागर
त नवीन संस्करण सर्वसप्ततक को जैन धर्म का प्रमाणिक ग्रन्थ मानना प्रारम्भ
र दिया था तथा इस प्रकार वे मुनि हीरविजय तथा उनकी शिष्य परम्परा मुनि
जयसेनसूरि, मुनि भानुचन्द्रगणि आदि से पृथक हो गये थे, परिणामस्वरूप
ाचार्य हीरविजयसूरिजी के शिष्यों ने जिनमें मुनि सोमविजय मुनिनन्दि विजय,
तिविजयराज, मुनिभानुचन्द्र तथा सिद्धिचन्द्र सम्मिलित थे, अहमदाबाद में
-1-1617 ईसवी में एकत्रित होकर रामविजय नामक एक विद्वान सन्यासी
ो सम्प्रदाय के आचार्य की पदवी के योग्य घोषित किया तथा मुनि विजयसुन्दर
रि भट्टारक के द्वारा उन्हें विजयतिलकसूरि के नाम से अभिषिक्त करवाकर उन्हें
ाचार्य विजयसेनसूरि का उत्तराधिकारी स्वीकार किया। मुनि सिद्धिचन्द्रजी को
स अवसर पर उपाध्याय की पदवी दी गयी।

---

1. विजयप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग 12 श्लोक 91

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. विजयप्रभसूरि—

ये श्री विजयदेवसूरिजी के पट्टधर थे तथा श्री मेघविजय उपाध्याय ने इनकी प्रशस्ति में दिग्विजय महाकाव्य:[1] की रचना की है जैसा कि इस महाकाव्य शीर्षक से स्पष्ट है। इन आचार्यजी ने भारत में चतुर्दिक विहार करके जैन धर्म क प्रचार किया था। सर्वत्र संघ के अनुयायियों ने इनका अत्यधिक सम्मान किय तथा इनके उपदेश से मन्दिर आबि बनवाये। विभिन्न स्थानों पर राजाओं ने इन उपदेश से पशु-वध निषेध करवाया। उदयपुर बुरहानपुर, ईडर तथा बीजापुर इनका विहार इस दृष्टि से अधिक सफल रहा अन्तिम दिनों में ये आगरा जहांगी से भेंट करने भी गये थे:[2]

7. अन्य आचार्य—

सम्राट अकबर तथा सम्राट जहांगीर का जैन धर्म की दोनों प्रसिद्ध गच्छ तपागच्छ एवं खरतरगच्छ के आचार्यों से घनिष्ठ सम्पर्क रहा था। किन्तु कु प्रमुख आचार्यों के उल्लेख ही बादशाहों से सम्पर्क का मिलता है। जब मु हीरविजयजी आगरा से वापिस गुजरात से चले गये थे तब अकबर की प्रार्थ पर उन्होंने मुनि भानुचन्द्रजी को उनके पास भेज दिया था। मुनि भानुचन्द्रज के साथ सिद्धिचन्द्रजी भी आ गये थे। किन्तु ये जब वापिस गये तो अपने स्था पर किसी जैन मुनि को बादशाह के सम्पर्क में रहने को न छोड़ गये हों य सम्भव नहीं। आचार्य हीरविजयजी ने अकबर के बुलाने पर आना इसी विचा से स्वीकार किया था। कि बादशाह के सम्पर्क में रहने से जैन धर्म के लि शासकीय संरक्षण प्राप्त हो सकेगा। यह सत्य सम्भावना अन्य आचार्यों के मन भी रही होगी।

कर्मचन्द्र जैसे कर्मठ मन्त्रि सम्राट अकबर तथा जहांगीर दोनों दरबार में रहे। ये खरतरगच्छ सम्प्रदाय के थे। इनके कारण इस सम्प्रदाय आचार्यों मुनि जिनचन्द्र तथा मुनि जिनसिंह को भी अकबर से सम्मान प्राप हुआ था।

इन दोनों ही सम्प्रदायों की शिष्य परम्परा में जिन प्रसिद्ध आचार्यों क उल्लेख मिलता है उनका अवश्य ही सम्राट अकबर तथा जहांगीर से सम्पर्क रह होगा। ये आचार्य हैं—मुनिविजयराज, मुनिधर्मविजय, मुनिसोमविजय, मु नेमीसागर, भानुचन्द्र के शिष्य उदयचन्द्र, सिद्धिचन्द्र के अग्रज भावचन्द्र, मु

---

1. भारतीय विद्या भवन द्वारा 1945 में प्रकाशित
2. दिग्विजय महाकाव्य सर्ग 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयसेनसूरि के शिष्य देवचन्द्र एवं विवेकचन्द्र, इसी परम्परा के मुनि गुणचन्द्र, तेजचन्द्र, जिनचन्द्र, जीवनचन्द्र, ज्ञानचन्द्र, दीपचन्द्र, दौलतचन्द्र तथा प्रतापचन्द्र सभी सम्राट जहांगीर के समकालीन थे।

खरतरगच्छ सम्प्रदाय के मुनि श्री जिनराजसूरि, श्रीजिनसागरसूरि, श्री जयसोम, महोपाध्याय, श्रीगुणविनयोपाध्याय, श्रीधर्मविधानोपाध्याय, श्रीआनन्द-कीर्ति, श्रीभद्रसेन, श्रीकल्याण समुद्रसूरि, श्रीभावसागरसूरि, श्रीदेवसागरगणि श्री विजयमूर्ति गणि, श्रीविजयसिंहसूरिजी आदि-आदि।

उक्त सभी आचार्यों एवं मुनियों के नामों का उल्लेख तत्कालीन मन्दिरों के शिलालेखों में मिलता है जो एपिग्राफिया इण्डिका तथा प्राचीन जैन संग्रह में प्रकाशित है।[1] शिष्य परम्परा के विद्वान कवि मेघविजयगणि ने श्रीविजयदेवसूरि की प्रशस्ति में देवानन्द महाकाव्य की रचना की तथा इनके शिष्य श्रीविजयदेवसूरि की प्रशस्ति में दिग्विजय महाकाव्य की रचना की। इन दोनों महाकाव्यों के प्रारम्भिक पद्यों में भी ऊपर वर्णित प्रत्येक जैनाचार्यों का उल्लेख आया है।

1. प्राचीन जैन संग्रह लेख पृष्ठ 25-40

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# षष्टम अध्याय

## शाहजहां की धार्मिक नीति एवं जैन धर्म

यदि अकबर धार्मिक मामलों में उदार था, जहांगीर उससे अभिन्न था। तो शाहजहां में इस मामले में अपने पूर्वजों से विपरीत भाव पाया जाता हैं। यद्यपि शाहजहां की मां और दादी मां राजपूत घराने से सम्बन्धित थी लेकिन वह अपने पूर्वजों के लक्षणों से प्रभावित नहीं हुआ। उसने अपने पिता व पितामह की तरह हिन्दू राजकुमारियों से विवाह नहीं किया, अत हरम में हिन्दू प्रभाव कम होना स्वाभाविक था। अकबर व शाहजहां दोनों में विपरीत भाव होने के कारण जहां अकबर ने सब धर्मों की उन्नति में सहयोग दिया वहां शाहजहां ने अन्य धर्मों को दबाकर इस्लाम धर्म की उन्नति में विशेष रूचि ली। इसलिए हिजरी सन राजकीय कैलेन्डर घोषित किया, सिजदा अथवा जमीबोस जो अकबर, जहांगीर के समय अनिवार्य नहीं था, अनिवार्य कर दिया गया, दरबार में सारे मुस्लिम त्यौहार नियमित रूप से मनाये जाने लगे जिसमें हिन्दू मुसलमान समान रूप से बादशाह को उपहार देते थे, श्रीराम शर्मा लिखते हैं कि 12 वें वर्ष में ईद के अवसर पर राजा जसवन्तसिंह और राजा जयसिंह ने बादशाह को हाथी भेंट किया।[1]

शाहजहां की धन लोलुप प्रवृत्ति ने उसे हिन्दुओं पर अनुचित कर लगाने को बाध्य किया जिनमें तीर्थ यात्री कर प्रमुख है जो कि हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर एक गहरी चोट थी यद्यपि बनारस के कविन्द्राचार्य के कहने पर बाद में बादशाह ने इस कर को हटा दिया।

हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर कुठाराघात करते हुए पुराने मन्दिरों के जीर्णोद्धार की मनाही कर दी गई। नये मन्दिर बनाने की इजाजत न दी गई यहां तक कि उसके पूर्वजों के समय से जो मन्दिर बन रहे थे, उनका निर्माण कार्य भी रुकवा दिया।

---

1. रिलीजियस पोलिसी ऑफ द मुगल एम्पररस—श्रीराम शर्मा पृष्ठ 96

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात में तीन मन्दिर, बनारस और उसके आस-पास के 72 मन्दिर और चार मन्दिर अहमदाबाद में तोड़े गये काश्मीर के कुछ मन्दिर भी उसकी धार्मिक कट्टरता का शिकार हुए। इन मन्दिरों की सामग्री मस्जिदें बनाने के काम में ली गई। इच्छाबल के हिन्दू मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया गया:[1]

इस तरह शाहजहां ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर ऐसा कुठाराघात किया जिसकी आज के आशावादी, देशभक्त, कल्पना भी नहीं कर सकते।

इतना होने पर भी शाहजहां में कहीं कहीं सहिष्णुता का पुट भी पाया जाता है जैसा कि उसने पूर्वजों से चली आ रही झरोखा दर्शन तुलादान व हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त करने की प्रथा को जारी रखा। राजा जसवन्तसिंह, जगतसिंह, जयसिंह, बिट्ठलदास पांच हजारी मनसब पर थे।

यद्यपि उसने मुसलमानी त्यौहारों को राजकीय सज्ञा देकर अधिक रूचि के साथ मनाया। और इस अवसर पर मुसलमानों को एक बड़ी राशि दान में दी जाती थी। हिन्दू त्यौहारों को मनाने में व्यक्तिगत रूचि नहीं ली। लेकिन बसन्त, दशहरा, रक्षा बन्धन आदि त्यौहार भी खुले आम मनाये जाते थे।

शाहजहां ने अपने पिता व पितामह की तरह धार्मिक वाद-विवाद में रूचि नहीं ली फिर भी जैसा कि कानूनगो लिखते हैं कि 18 दिसम्बर 1634 को राजा लाहौर के पास प्रसिद्ध सन्त मेन मीर के घर उससे मिलने गया और सत्य व ईश्वर विषय पर चर्चा की:[2]

शाहजहां के समय में फारसी तथा हिन्दी साहित्य में विशेष उन्नति हुई। सुन्दरदास और चिन्तागणि हिन्दी के दो प्रसिद्ध कवि इसी काल में हुए जिन्होंने कई विषय लिखे जिनमें धार्मिक विषय भी शामिल थे संस्कृत साहित्य भी उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। बादशाह ने स्वयं उपनिषद का अनुवाद किया और उसे कुरान के समान ही बताया:[3]

जहां तक पशु-वध निषेध का प्रश्न है, कट्टर मुसलमान होते हुए भी उसने पशु-वध निषेध को जारी रखा हां अपने पूर्वजों द्वारा घोषित किये गये दिनों में कुछ कटौती जरूर कर दी गई। अकबर और जहांगीर की हिन्दुओं के प्रति सम्मान की भावना के कारण निश्चित क्षेत्रों में पशु-वध निषेध जारी रखा।

---

1. रिलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्परस—श्रीराम शर्मा पृष्ठ 103
2. जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री पृष्ठ 49
3. रिलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पररस—श्रीराम शर्मा पृष्ठ 112

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैनरिक जो उस समय भारत में आया उसने यह देखा कि बंगाल में पशु-बलि जो कि पवित्र मानी जाती थी शाहजहां द्वारा दण्डनीय अपराध घोषित की गई:[1]

जैन धर्म के प्रति बादशाह की नीति की बहुत कुछ झलक मेंडलस्लो के पश्चिमी भारत भ्रमण वृतान्त से मिलती है जो कि शाहजहां के काल में भारत आया। वह लिखता है कि जब मैं अहमदाबाद में पहुचा तो वहां का गवर्नर औरंगजेब था उसने कट्टर धार्मिक मुस्लिम नेताओं के प्रभाव में आकर सेठ शान्ति-दास, जो मुगल दरबार का खास जौहरी था, उन्हीं के द्वारा निर्मित कराया श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन मन्दिर जो सरसपुर मुहल्ले में स्थित था, तुड़वा दिया सेठ शान्तिदास ने आगरा आकर बादशाह से शिकायत की कि मेरा बनवाया हुआ मन्दिर शाहजहां औरंगजेब ने तुड़वाकर उस स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवा दिया है। मीराते अहमदी कहते हैं कि राजकुमार ने उस मस्जिद का नाम कुवत-उल-इस्लाम रखा। और उस जगह पर गाय मारने का आरोप लगाया। सेठ की फरियाद सुनकर बादशाह ने वहाँ का सूबेदार बदल दिया और शान्तिदास को फरमान दिया जिसके परिणामस्वरूप सन् 1648 में शाही गवर्नर तथा अहमदा-बाद के अधिकारियों को सम्बोधित किया गया कि राजकुमार औरंगजेब द्वारा निर्मित मस्जिद तथा शेष मन्दिर के बीच एक दीवार खड़ी कर दी जाये और उस इमारत को सेठ शान्तिदास के सुपुर्द कर दिया जाये ताकि वह अपने धर्मा-नुसार पूजा कर सके इसके अलावा उन फकीरों को जिन्होंने मन्दिर के अन्दर अपना घर बना लिया है, हटा दिये जायें और जो सामग्री मन्दिर से बाहर ले जाई गई हो वह वापिस कर दी जाये ये कीमती और वास्तविक फरमान 50 वर्ष पुराना था जो अहमदाबाद के नगर सेठ के परिवार के मुखिया के आधिपत्य में था:[2]

1. रिलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्परस—श्रीराम शर्मा पृष्ठ 112
2. मेंडलस्लो ट्रेवल्स इन वैस्टर्न इण्डिया पृष्ठ 101-102

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# सप्तम अध्याय

## "उपसंहार"

**1. जैन साधुओं का राजनीति को प्रभावित करने का उद्देश्य—**

जैन धर्म साधु का पर्याय हैं अर्थात् जैन वही है। जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर मन का दमन कर लिया है। और सांसारिकता से विरक्त तथा परमार्थ में आसक्त है। ऐसा व्यक्ति रात दिन मानव कल्याण में रत रहकर आत्म कल्याण के साथ-साथ लोक कल्याणकारी कार्यों में प्रवृत रहता है।

जैन धर्म की विचार धारा धर्म विशेष से ही सम्बन्धित नहीं, अपितु वह मानव मात्र के कल्याणार्थ विकसित हुई विचार धारा है जिसका अनुयायी कोई भी हो सकता है जिसके व्रत, नियम एवं उपासना पद्धति के द्वारा अपना आत्मकल्याण कर सकता है।

जैन धर्म में दीक्षित साधुओं की परम्परा साधना, त्याग, अन्य साधु परम्पराओं से भिन्न है। इस परम्परा के साधुओं के प्रधान लक्ष्य जीव कल्याण है जैन साधुओं की तपश्चर्या एवं उपासना, उपदेश आदि का प्रमुख आधार स्वान्तः सुखाय नहीं अपितु बहुजनहिताय एवं बहुजन सुखाय था। उनका कार्य क्षेत्र वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से परिपूरित था तथा इसका निर्वाह आज भी यथा सम्भव किया जा रहा हैं और इस पथ के अनुयायी अपनी अथक साधना में अनवरत अग्रसर हो रहे हैं।

साधु को धर्म का आधार माना जाता है और धर्म राजनीतिक को इसी भावना से अभिप्रेरित होकर जैन साधुओं ने मुगल बादशाहों के दरबारों में पहुंचकर उन्हें अपने उपदेशों से प्रभावित कर उनसे लोक कल्याणकारी कार्य करवाये ऐसे कार्य जिन कार्यों को लोक में शरीर बल, सैन्यबल एवं धनबल के प्रयोग से नहीं करवाया जा सकता था। इन सब कार्यों के पीछे साधुओं का उद्देश्य था— मानव मात्र के प्रति शासकवर्ग के मन में कल्याण की भावना जागृत करना। आचार्य हीरविजयसूरिजी से लेकर मुगलकाल में होने वाले सभी आचार्यों एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनियों ने मुगल बादशाहों को प्रभावित किया अपने तपबल से आचार्य हीरविजय-जी ने तो अपने मानवरूप में अलौकिक तत्वयुक्त व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय देकर अकबर को अपने तप साधना से प्रभावित किया एवं ऐसे असम्भाव्य कार्य करवाये जो कार्य आज भी शासन से आये दिन आन्दोलन करने पर भी बन्द नहीं करवाये जा रहे हैं उनमें प्रमुख हैं—गौ-वध पर पाबन्दी। अकबर ने अपनी धार्मिक नीति से मात्र इस्लाम को ही नहीं बढ़ाया बल्कि उसने सर्व धर्म समन्वय की भावना से इबादतखाने का निर्माण कराया, दीन इलाही धर्म का प्रचार किया जिसमें सभी धर्माचार्यों को बुलाकर वह धर्म चर्चा करता था और सभी धर्मों के रहस्यों को जानना चाहता था इतना ही नहीं उसने हिन्दू समाज में फैली दास प्रथा, बाल-विवाह आदि कुरीतियों को समाप्त किया उनकी दशा में सुधार किया करों की समाप्ति की घोषणा की और समय-समय पर होने वाले हिन्दुओं के सभी धार्मिक उत्सवों में वह स्वयं सम्मिलित होता था। इससे उसने हिन्दुओं के मनोबल को बढ़ाया।

हम देखते है कि ये सब जैन साधु समाज के उपदेशों का परिणाम रहा है, जिससे प्रेरित होकर अकबर जहांगीर जैसे बादशाह हिन्दू धर्म की ओर आकर्षित हुए और हिन्दुओं से सामाजिक सम्बन्ध बढ़ाये जजियाकर जिसे मृत्यु दण्ड की संज्ञा दी गई थी अकबर ने समाप्त कर दिया।

राजपूत काल में हेमचन्द्राचार्य ने कुमारपाल को प्रबोध दिया। जिस प्रबोध से उसने गौ वध, मांसभक्षण का निषेध कर दिया। इन सब बातों का प्रभाव सामान्य जन समाज पर पड़ता गया और अपने शासक वर्ग को धर्म की ओर झुकता हुआ देखकर जनता के मन में भी इसी प्रकार की भावनायें आती गई, क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा का सिद्धान्त मानकर ही जैन साधुओं ने राजाओं और बादशाहों को अपने उपदेशों से प्रबोध दिया इस विषय में आचार्य श्रीहीर-विजयसूरिजी का स्पष्ट मत था कि—

हजारों बल्कि लाखों मनुष्यों को उपदेश देने में जो लाभ होता है। उसकी अपेक्षा कई गुना ज्यादा एक राजा या सम्राट को प्रतिबोध देने में मिलता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही जैनाचार्यों ने राजा एवं सम्राटों को अपना शिष्यत्व प्रदान किया। क्योंकि उनके सम्मुख शासन सेवा ही सच्ची सेवा थी। इसके लिए उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों की उपासना पद्धति और उसमें आने वाले संघर्षों को सहन करने की प्रवृत्ति का ही अनुसरण किया—सहे धर्म हेतु कोटि कलेशू।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**जनकल्याण की भावना—**

राजनीति का मुख्य आधार जनकल्याण होता है, शासन सत्तासीन होते ही जा का अपना कुछ नहीं रहता। वह अपना जीवन जन कल्याण के लिए सम- त कर देता है। ऐसी भावना ही राजनीति को धर्म से जोड़ती है और ऐसा धर्म जनीति का मूल आधार है जिसे राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। न साधू अपने पद यात्रा के दौरान जन सामान्य से मिलते थे उन्हें उपदेश देते ए आगे बढ़ते थे।

जब साधुओं को सम्राट ने अपने दरबार में आमन्त्रित किया तब उन्होंने ए समय इसी जनकल्याण की भावना को अपने धर्मोपदेश का मुख्य आधार नकर बादशाह को जन-कल्याणकारी कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

जैन साधु पूर्ण विरक्त एवं अपरिग्रह होते हैं, परिग्रह उन्हें जन कल्याण के र्ग में बाधा है और इसी अपरिग्रह प्रवृत्ति, त्याग, संयम और नियम ा कठोर साधना से ही शासक वर्ग इनसे प्रभावित होकर इनके उपदेशों को ृण करता था तथा वह कार्य करता था जो आशीर्वाद के रूप में इनसे प्राप्त रते थे।

अकबर ही नहीं जहांगीर भी अपने पिता की धार्मिक नीति का अनुसरण रता रहा, अन्तर केवल इतना था कि अकबर स्वयं धर्माचार्यों को आमन्त्रित रता था लेकिन जहांगीर के दरबार में धर्माचार्य स्वयं जाने को उत्सुक रहा रते थे, उसने हिन्दू धर्म ग्रन्थों वाल्मिकी रामायण सिक्ख गुरू ग्रन्थ साहब ा कई भाषाओं में अनुवाद करवाया। ईसाइयों से प्रगाढ़ मैत्री की तथा बाइबिल अनुवाद के लिए प्रेरणा दी। इससे लगता है कि यह उसकी धमनियों में दौड़ते ए हिन्दू रक्त का प्रभाव था, क्योंकि उसकी माता भी हिन्दू थी, और पत्नी भी न्दू। और इन सब जनकल्याणकारी कार्यों के प्रति प्रमुख शक्ति कार्य कर रही ा जैन साधुओं की उपदेशमयी वाणी।

**ब) भारतीय संस्कारों की स्थापना—**

धर्म के मूल में पार्थक्य की भावना नहीं हुआ करती क्योंकि धर्म की दृष्टि कोई भेद नहीं होता इसी भाव से प्रेरणा पाकर धर्मपालक सम्राटों ने धर्मध्वजा ारक धर्मगुरूओं से प्रतिबोध प्राप्त कर अपने शासनकाल में समाज को श्रेष्ठ स्कारों से संस्कारित किया और यह सिद्ध कर दिया कि धार्मिक संकीर्णता मानव कुत्सित संस्कारों का परिणाम है। जजियाकर की समाप्ति, तीर्थयात्रा कर का षेध यह भी सम्राट की त्यागी वृत्ति का प्रतीक है जो उन्हें जैन साधुओं के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संग और समागम से प्राप्त हुआ। जब ऐसा प्रभाव शासक वर्ग पर पड़ा क्यों न जनता पर पड़े अर्थात् जैन साधुओं ने अपने कार्य एवं संस्कारों से प्रजा को तो प्रभावित किया ही शासक वर्ग को विशेष और शासक वर्ग का प्रभाव स जनता पर पड़ा। इस प्रकार जैन साधू भारतीय संस्कारों की पूर्ण रूप से स्था करने का अनवरत प्रयास करते रहे जिसका प्रमाण है कि जहांगीर स्वयं प्रतीकों को धारण किये रहता था।

**2. राजकीय संरक्षण—**

मुस्लिम शासकों ने जितना राजकीय संरक्षण जैन साधुओं को दिया उत अन्य किसी सम्प्रदाय के साधुओं को नहीं। हम प्रारम्भ से देखते हैं कि आच हीरविजयसूरिजी को अकबर ने आमन्त्रित किया और उनके उपदेशों से जीव-हि को बन्द किया।

हीरविजयसूरिजी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके स्तूप के लिए 22 बी जमीन और विजयसेनसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् 10 बीघा जमीन उनके स्तूप लिए जैन श्रीसंघ को दी।

हीरविजयसूरिजी को अकबर ने पत्र भेजा जिसमें विजयसेनसूरि को लाह भेजने का निवेदन था उनके कार्य कर जाने के बाद अकबर (खम्भात के पा सूरिजी के नाम 10 बीघा जमीन भी दानस्वरूप दी।

विजयदेवसूरिजी को जहांगीर ने अपने दरबार में आमन्त्रित किया' उ उपदेशों से अनेक दया के कार्य किये। तीर्थ रक्षा के फरमान जारी किये त बन्दियों को मुक्त किया।

अकबर जब 1556 में सिंहासनारूढ़ हुआ तब उसकी राज्य सीमा विश नहीं थी लेकिन उसकी धार्मिक नीति के कारण अपनी मृत्यु तक अपने राज्य पूर्ण विस्तार प्रदान किया।

अकबर धर्म तत्व जिज्ञासु था इसी कारण उसने इबादतखाने जैसे स्थान का निर्माण कराया। जहां बैठकर वह सभी धर्म के आचार्यों से धर्म करता था इस धर्म सभा के सदस्यों का पांच श्रेणी में विभाजन किया इनमें प्रमुख जैन साधुओं के नाम आते हैं—हीरविजयसूरिजी, विजयसेनसूरि एवं चन्द्र उपाध्याय।

पिता की धार्मिक नीति एवं व्यवहार का अनुसरण जहांगीर ने किय क्योंकि उसकी धमनियों में हिन्दू रक्त प्रवाहित था। उसने अपने दरबा सभी धर्मों से सहानुभूति रखी। पिता के फरमानों को यथावत जारी रख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था सभी को संरक्षण प्रदान किया। वह भी समय समय पर धर्म गुरूओं से स्पर्क करता रहता था। वह अपने दृष्टिकोण में मन से अकबर से भी अधिक र्मिक था। आध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास करता था। सभी धर्म गुरुओं । प्रसन्न रखने का भरपूर प्रयास करता था। उसने अपनी सत्ता को सुरक्षित बने के लिए धर्म गुरूओं को आश्रय दिया। अकबर की इबादतखाने की धर्म र्चा को यथावत् कायम रखा तथा जद्रूप से वेदान्त का ज्ञान प्राप्त किया। ालमीकी रामायण का अनुवाद "राम नाम" शीर्षक से फारसी में कराया। रसागर के पदों के संकलन के लिए एक पद के लिए एक स्वर्ण मुद्रा पुरुस्कार रूप देने की घोषणा की।

आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी ने जहाँगीर से ऐसे फरमानों को रद्द करवाया जिन्हें उसे अपने नशे की मदहोशी में जारी किया था। तथा वे जनता के लिए ही नहीं अपितु उसके हित में भी घातक थे। यह सब साधुओं के राजकीय संरक्षण का परिणाम था, जिससे वह बादशाह की हर अच्छी-बुरी गतिविधि पर ध्यान रखा करते थे। तथा उसे समय-समय पर प्रतिबोध देकर उन गल्तियों से होने वाले परिणामों से अवगत करा दिया करते थे। सभी कार्यो में हम देखते है कि उन्हें उचित मार्ग दर्शन धर्म गुरूओं से ही प्राप्त होता था। जो उनकी राजकीय संरक्षण की नीति का परिणाम था।

### 3. जैन साधुओं का सामाजिक योगदान का स्वरूप

जैन साधुओं की अपरिग्रहि प्रवृत्ति होने के कारण उनका समाज एवं राज्य में श्रेष्ठ स्थान रहा है। उन्होने संग्रही प्रवृत्ति को महत्व नहीं दिया तथा अहिंसा पर आधारित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। साधू प्रचारक एवं समाज सुधारक दोनों का कार्य करता है, साधू का स्वभाव ही ऐसा होता है। कि वह विगत मान-अपमान छोड़कर सुख दुख, सम-भाव, पूर्ण विचारों से समाज को सद्उपदेशों से प्रतिबोध देता है। और सभी को समान रूप में देखता हुआ एकांकी रूप में विचरण करता है जैन साधुओं ने समाज को संगठित करने का प्रयास किया और केवल सम्प्रदाय विशेष को ही नहीं अपितु सर्व धर्म समन्वय की भावना से। उनके अन्दर था धार्मिक संकीर्णता नहीं, अपितु धर्म व्यापकता थी और इसी गुण से मुसलमानी शासक उनके द्वारा प्रभावित हुए और उन्हें विनती पत्र लिखकर अपने दरबारों में आमन्त्रित किया उनका सामाजिक संगठन सकारात्मक वृत्ति को जन्म देता है। उनका लक्ष्य था, धार्मिक एकता एवं समानता के साथ राष्ट्रीय एकता की स्थापना, क्योंकि उनका प्रमुख उपदेश था "आत्मः प्रतिकूलानि परेषां समाचरेत्"।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जो अपनी आत्मा के विपरीत है वह व्यवहार दूसरों के साथ मत करो यानि जियो और जीने दो। यह उपदेश समाजवादी सिद्धान्त और राष्ट्रीय एक का द्योतक है, जिसे हम राजनीति में नेहरूजी के पंचशील की समानता में सकते हैं तथा इन्हीं जैन आदर्शों के आधार पर यदि हम आज के परिपेक्ष्य में दे तो विश्व शान्ति के सपने को साकार कर सकते हैं तथा सारे विश्व को निरस्त्री करण की विचारधारा से प्रेरित कर सकते हैं, इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन अ इन्हीं सिद्धान्तों से निर्मित समाज को साकार रूप में देखने का लक्ष्य जैन साधु का था। उनको उपदेश देने की भावना के पीछे सामाजिक एकता एवं राष्ट्रीय की प्रेरणा थी वे धर्म को राष्ट्र एवं राजनीति से जोड़ना चाहते थे और वह उन धर्म था—मानव धर्म।

सर्व धर्म समन्वय से जैन साधुओं में समत्व की भावना थी, जिसे हम हिन्दू धर्म ग्रन्थों में योग की संज्ञा दी गई है। "समत्व योग उच्चते"। जहां य होता है वहां वियोग को स्थान नहीं, जहां वियोग नहीं वहां भेद नहीं, जहां नहीं वहां विग्रह नहीं। ऐसे विग्रह हीनसमाज की स्थापना करना चाहते थे साधू अपने धर्म मय उपदेशों के द्वारा।

देश के उत्थान के लिए अच्छे समाज का होना आवश्यक होता है। अ अच्छे समाज के लिए श्रेष्ठ नागरिकों का, क्योंकि व्यक्तियों से समाज का निम होता है और व्यक्ति का निर्माण सद्गुणों से। हमारे धर्म ग्रन्थों में वर्णित कि मानव जन्म से शूद्र पैदा होता है संस्कार ही उसे श्रेष्ठ बनाते हैं इन संस्क को देने का दायित्व हमारे जैन समाज ने अपने ऊपर लिया और अपनी पद य वृत्त को धारण करते हुए समाज को संस्कारित कर श्रेष्ठ समाज की स्थापन सहयोग दिया।

जैन साधू देश सेवा में अग्रणी रहे इस बात का निवेदन मैंने पूर्व के अध्य में भली भांति किया है तथा उन्होंने हर सम्भव प्रयत्न के द्वारा परोक्ष रूप में सेवा में अपना जीवन लगाया। उन्होंने अपने चरित्र बल, तपशक्ति के प्रभाव मुगल बादशाहों को प्रभावित किया, प्रजा कल्याण के कार्य करवाये, वे कार्य जै के लिए ही नहीं अपितु सभी जैनेतर समाज के लिए थे।

**4. राजनीतिक आदर्श की स्थापना—**

प्रकृति का यह नियम है, कि समाज में श्रेष्ठ लोग जैसे आचरण करते समाज उन्हीं का अनुसरण करता है सामाजिक इकाईयों से राज्य का निम होता है और राज्य शासन व्यवस्था की प्रक्रिया को राजनीति कहा जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन व्यवस्था में आदर्श स्थापित करना सामान्य शासक का कार्य नहीं अपितु असामान्य गुणों का द्योतक होता है। शासन सत्ता को अधिग्रहण कर शासक व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता है। उसका अपना व्यक्तित्व जीवन नहीं। बल्कि प्रजा रंजन ही उसका मुख्य लक्ष्य माना जाता हैं। प्रारम्भ से हम देखते है कि तपागच्छ और खरतरगच्छ दोनों सम्प्रदायों के जैन साधुओं ने राजनीति में प्रवेश नहीं किया, अपितु राजनीति के धारक सम्राट स्वयं उनके आचरणों से उनकी ओर आकर्षित हुए। उनके आशीर्वाद प्राप्त करने, उन्हें प्रसन्न करने तथा आध्यात्मिक तुष्टि के लिए बादशाहों ने वे कार्य किये जिन्हें लोक कल्याणार्थ जैन साधु चाहते थे।

साधू के पास कोई भौतिक बल नहीं होता, उसे केवल तपबल का आधार होता है और उसी से वह अपने सभी कार्य जिन कार्यों से लोकोपकार्य होता है, की पूर्ति करता है।

जैन साधु अपने धर्म के प्रचार प्रसार के लिए ही पद यात्रा करते हैं, व्रतों का पालन करते हैं। उन्होंने अपने प्रज्ञाबल से ऐसे मुगल बादशाहों को आकृष्ट किया जिनका एक छत्र राज्य भारत पर था। तथा उन्होंने राजनीति में धर्म का समावेश कराकर अपने आदर्शों की स्थापना की आचार्य हीरविजयसूरिजी एवं अन्य जैनाचार्यों जो मुगल दरबारों में पहुंचे उनका लक्ष्य था कि अगर शासन को अपने ज्ञान के प्रतिबोध से आकृष्ट कर लिया तो वह अपनी राजनीति में उस प्रतिबोध के प्रभाव से अवश्य ही धर्म का समावेश करेगा, जिससे एक व्यक्ति का नहीं, अपितु समूचे राष्ट्र का हित होगा। इसी भाव से उन्होंने मुगल बादशाहों को प्रतिबोध दिया क्योंकि उस समय भारत पर मुगल सम्राटों का ही आधिपत्य था।

राजपूत काल में हम देखें तो इससे भी यह स्पष्ट होता है कि जैन साधुओं ने केवल मुगल बादशाहों को ही नहीं, अपितु अन्य सम्राटों को भी अपने सदुपदेशों से प्रभावित किया। हेमचन्द्राचार्य ने चौलुक्य वंश के चन्द्रमा कुमारपाल को सत्य अहिंसा आदि गुणों को ग्रहण कर दुर्गुणों के त्याग का उपदेश दिया तथा उससे व्रत पालन की प्रतिज्ञा की। विशेष तिथियों पर पशु-वध निषेध कर दिया इस प्रकार जैन धर्म की शिक्षा का सबसे अधिक प्रभाव राजाओं पर ही हुआ।

जिनप्रभसूरि, जिनदेवसूरि, रत्नशेखर, जैनाचार्यों ने सल्तनत युग में तत्कालीन सुल्तानों पर अपना प्रभाव डाला इनमें मुहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक, अलाउद्दीन खिलजी के नाम आते हैं जिनप्रभसूरि ने 14 वीं शताब्दी में तुगलक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुल्तान मुहम्मदशाह के दरबार में गौरव प्राप्त किया एवं सेवा कार्य के फलस्वरूप अनेक फरमान जारी किये।

जैन साधुओं का प्रभाव मुगल सम्राटों पर भी हुआ यह सर्व विदित है लेकिन ऐसा नहीं कि उनका प्रभाव किसी एक ही पीढ़ी पर हुआ हो यह प्रभाव परम्परागत बना रहा क्योंकि अकबर ने अपने पुत्रों को शिक्षा दिलाने के लिए जैन साधुओं को रखा एवं जहांगीर ने भी अपने पुत्रों को शिक्षा दिलाने के लिए भानु-चन्द्रजी को गुजरात से मांडू बुलाया, क्योंकि जहांगीर ने स्वयं जैन साधुओं से शिक्षा ग्रहण की थी इसी शिक्षा एवं पारिवारिक परम्परा का प्रभाव है, कि मुगल सम्राटों ने अपने शासनकाल में जैन साधुओं को सम्मानित कर अपने दरबार में बुलवाया तथा उनसे धर्मोपदेश ग्रहण कर लोक कल्याण कारी कार्य किये। इन धर्मप्रदेशों का प्रभाव क्रमशः इतना प्रगाढ़ होता गया कि सम्राटों की अभिरूचि जैन उपदेशों के श्रवण, मनन एवं चिन्तन में अधिक हो गई। ऐसा पता उस समय के विदेशी पर्यटकों के विवरण से भी मिलता है। पिनहरो नाम के पुर्तगीज पादरी ने लाहौर से 3 सितम्बर 1595 के दिन एक पत्र लैटिन भाषा में अपने देश में लिखा जो अकबर के जैन सम्प्रदाय के अनुसार आचरण करने की पुष्टि करता है। जिसका अंग्रेजी अनुवाद करके डॉ स्मिथ ने अपने 2-11-1918 के पत्र के साथ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरिजी को भेजा सम्पूर्ण पत्र के लिए देखिये परिशिष्ट न. 8.

जैनाचार्यों का समन्वयवादी दृष्टिकोण राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक उत्थान की भावना से प्रेरित था क्योंकि हम देखते हैं कि उन्होंने मुगल शासकों से मिल-कर उन्हें प्रतिबोध दिया। समाज कल्याण के कार्य करवाये, मगर ऐसा कोई काय नहीं करवाया जिसका विरोध समाज के किसी भी वर्ग ने किया हो यानि उनके कार्य जैन, अजैन, हिन्दू, मुस्लिम सबके हित की दृष्टि से किये गये। राजनीति में पारंगत शासक की बुद्धि का क्षेत्र व्यापक होता है तथा वे जो भी कार्य करते हैं उसे राष्ट्र के परिपेक्ष्य में देखकर ही करते हैं, इसी कारण जैन साधुओं ने जो काय मुगल बादशाहों से करवाये उनका किसी ने विरोध नहीं किया।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि जैन आचार्यों एवं मुनियों का मुगल बादशाहों को प्रभावित करने का मुख्य लक्ष्य समाज एवं राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधना एवं शान्ति स्थापित करना था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट I

**महाराणा प्रताप का श्री हीरविजयसूरिजी को पत्र—**

"स्वस्त श्री मगसुदाग्रह महासुभस्थानै सरव औपमालाअंक भट्टारकजि महाराज श्री हीरवजेसूरजि चरणकुमला अणे स्वस्तश्री वजेकटक चांवडरा डेरा सुथाने महाराजाधिराज श्रीराणा प्रतापसिंहजी ली, पगे लागणो बंचसी। अठारा समाचार भला है आपरा सदा भला छाईजे। आप बड़ा है, पूजनीक है, सदा करपा राखे जीसु ससह (श्रेष्ठ) रखावेगा अप्रं आपरो पत्र अणा दनाम्हे आया नहीं सो करपा कर लषावेगा। श्रीबड़ा हजुररी वमत पदारवो हुवो जीमें अठासुं पाछा पदारता पातसा अकब्रजीने जेनाबादम्हे ग्रानरा प्रतिबोद दीदो जीरो चमत्कार मोटो बताया जीवहंसा (हिंसा) छरकली (चिड़िया) तथा नामपषेरू (पक्षी) बेती सो माफ कराई जीरो मोटो उपगार किदो सो श्री जेनरा ध्रममें आप असाहीज अदोत-कारी अबार कीसे (समय) देखता आपजु फेर वे न्हीं आवी पूरव हीदुसस्थान अत्र-वेद गुजरात सुदा चारू हसा म्हे धरमरो बडो अदोतकार देखाणो, जठा पछे आपरो पदारणों हुवो न्हीं सो कारण कहं वेगा पदारसी आगे सु पटाप्रवाना कारणरा दस्तुर माफक आप्रे हे जी माफक तोल मुरजाद सामो आवो सा बतरेगा श्री बडाहजुररी वषत आप्री मुरजाद सामो आवारी कसर पडी सुणी सो काम कारण लेखे भूल रही वेगा जीरो अदेसो नहीं जाणेगा। आगेसु श्रीहेमाआचरणजी ने श्री राजम्हे मान्या हे जीरो पटो करदेवाणो जिमाफक अरो पगरा भटारषगादीप्र आवेगा तो पटा माफक मान्या जावेगा। श्रीहेमाचारजी फेलां भी बडगच्छरा भटारषजी ने बडा कारणसुं श्रीराजम्हे मान्य जि माफक आवेगा श्री हेमाचारजी पगरा गादी प्रपाटहवी तपगच्छराने मान्या जावेगारी सुवाये देसम्हे आप्रे गच्छरो देवरो तथा उपासरो वेगा जीरो मुरजाद श्रीराजसु वा दुआ गच्छरा भटारष आवेगा सो राषेगा श्रीसमरणध्यान देव जात्रा जठे साद करावसी भूल सी नहीं ने वेगा पदारसी"[1]।

प्रवानगी पंचोली गोरो सम्वत् 1635 रा वर्ष आसोज सुद 5 गुरूवार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 2

**खम्भात में विजयसेनसूरिजी की पादुकाएं वाले पत्थर का लेख—**

1160 सम्वत् 1672 वर्षे माघसितत्रयोगश्यां रवी वृद्ध-शाखीय। स्तम्भतीर्थनगरवास्तव्य उसवालज्ञातीय सा० श्री मल्ल भार्या मोहणदे लघुभ्रतु सा० जगसी भर्या तेजलदे सुत सा० सोमा नाम्ना भगिमी धर्माई भार्या सहजलदेव वयजलदे सुतः सा० सूरिजी स (रा) मजी प्रमुख कुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्री अकब्बर-सुरत्राणदत्त बहुमान भट्टारक, श्रीहीरविजय सूरिपट्टपूर्वाचल तटीसहस्त्रकिरणानु-कारकांणां। ऐदंयूगीनराधिपति चक्रवर्तिसमान श्री अकब्बर छत्रपति प्रधान पर्षदि प्राप्त प्रभूतभट्टाचार्या दिवादिवृदंज यवादलक्ष्मीधारणकांणा। सकलसुविहितभट्टार-कपरंपरापुरं दराणां। भट्टारक श्रीविजयसेनसूरीश्वराणां पादुका: प्रोत्तुगस्तूपसहिता: कारिता: प्रतिष्ठापिताश्च महामहः पुरः सरं प्रतिष्ठिताश्च श्रीतपागच्छे। भट श्रीविजयसेनसूरिपट्टालंकार हार सौभाग्यादिगुणाधारसुविहित सूरिशृंगार भट्टारक श्रीविजयदेवसूरिभिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 3

**सूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम् —**

आदिदेव, आदित्य, आदितेजा:, आप, आचारतत्पर:, आयु: आयुष्मान्, आकाश, आलोककृत, आमुक्त, ऊंकार, आरोग्य, आरोग्यकारण, आशुग आतप, आतपी, आत्मा, आत्रेय, असह, असंगगामी, असुरांतक, उस्त्रपति, अहस्पति, अहिसमान् (पा० अहिमान्) अहिमांशुभृत:—ति:, अहिमकर: अहिमरूक्, अहिमर्चि: अहिसक, अहम्मणि, उदाकर्म्मा, अद्वितीय, उदीच्यवेश, अपांपति: अभयप्रद:, अभिनन्दित, अभिष्टुत:, अब्जहस्त:, अब्जबांधव:, अपराजित, अप्रमेय, उच्चैरच्युत:, अजय, अचल, अचिन्त्य, अचिन्त्यात्मा, अचर, अजित, अविचिन्त्यवपु: अव्यय, अव्यंगधारी, ऊर्जित, अयोनिज, ऐंधन, एक एकाकी, एकचक्ररथ, एकनाथ, ईश, ईश्वर, अविष्टकर्मकृत उग्ररूप, अग्नि, अकिंचर, अक्रोधन, अक्षर, अलंकार, अलंकृत (पा० अलंकृत) अगाध, अमेयात्मा, अमरप्रभु, अमरश्रेष्ठ, अमित, अमितात्मा, अणु, इन अनाद्यन्त, अंधकारापह, इन्द्र, अंभ, अंभोजबन्धु, अंबुद, अंबरभूषण, अनेकगाढ़क, अंगिरा, अनल, अनलप्रभ, अनिमित्तगति, अनंग, अन्न, अन्नत, अनिर्देश्य, अनिर्देश्यवपु, अंशु, अंशुमान, अंशुमाली, अनुत्तम, अरिहा (100) अरहन् अरविंदाक्ष, अर्यमा, अर्क, अरिमर्दन, अरूणसारथि, अश्वत्थ, अशीतरश्मि, उष्णकर, अश्विन, अशिशिर, अतुलद्युति, अतीन्द्र, अतीन्द्रिय, उत्तम, उत्तर, साधु, सार्वर्णो, आविश्री, सविता, (पा० साविता) सायन, सौष्य (रुय) सागर, साम, सामवेद, सारंगधन्वा, सहस्त्राक्ष, सहस्त्रांशु, सहस्त्रधामा, सहस्त्रदीधिति:, सहस्त्रपात्, सहचक्षु:, सहस्त्रक्षोत्र:, सहस्त्रकर:, सहस्त्रकिरण, सहस्त्ररश्मि, सदयोगी, सदागति, धर्मा, सिद्ध:, सिद्धकार्य, सभाजित्, सुप्रभ, सुप्रदीपक, सुप्रभावन, सुप्रभावकर, प्रिय, सुपर्ण, सप्तार्चि:, सप्ताश्व, सप्तजिह्व, सप्तलोकनमस्कृत, सप्तमीप्रिय, प्तिमान सप्तप्ति, सप्ततुरग, स्वस्वाहाकार, सुवाहन, स्वाहाभुक, स्वाचार, वाक्, सुसंयुक्त, सुस्थित, स्वजन, सुवेश, सूक्ष्म, सूक्ष्मधी, सोम, सूर्य, सुवर्चा, सुवर्ण, र्ण, स्वर्णरेता, सुविषिष्ट, सुवितान, सैंहिकेयरिपु, स्वयंविभु, सुखद, सुखप्रद, सुखी, खसेव्य, सुकेतन, स्कंद, सुलोचन, समाहितमति, समायुक्त, समाकृति, सुमहाबल, सुद्र, सुमूर्ति: सुमेधा, सुमना:, सुमनोहर, सुमंगल, सुमति, सुमत, सुमतिजय, नातन, संसारार्णवतारक (200) संसारगतिविच्छेत्ता, संसारतारक, संहर्त्ता, पूरण, सम्पन्न, सम्प्रकाशक, सम्प्रतापन, सन्चारी, सन्जीवन, संयम, संविभाग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवर्त्तक, संवत्सर, संवत्सरकर, सुनय, सुनेत्र, संकल्प, संकल्पयोनि, संतापन, संताप कृत, संतपन, सुराध्यक्ष, सुरावृत, सुरारिह, सुरारि, सर्वसद, सर्वभानु, सर्वद सर्वदर्शी, सर्वप्रिय, सर्ववेदप्रगीतात्मा, सर्ववेदालय, सर्वरत्नमय, सुरपूजित, सर्वलोक प्रकाशक, सुरपति, सर्वशत्रुनिवारण, सर्वतोमुख, सर्व, सर्वात्मा, सर्वस्व, सर्वस्वी, सर्वदयोत्, सर्वदयुतिकर, सर्वजितांबर, सर्वोदधिस्थितिकर, सर्ववृत्त, सर्वमदन, सर्वप्रह रणायुध, सर्वप्रकाशक, सर्वग, सर्वज्ञ सर्वकल्याणभाजन, सर्वसाक्षी, सर्वशस्त्रभृतांवर, सुरेश, सर्ग, सर्गादिकर, सुरकार्यज्ञ, स्वर्णकार, स्वर्गप्रतर्दन, सुरवी, सुरमणि, सुरनिभाकृतिसुरेश्रेष्ठ, सृष्टि, स्त्रष्टा, श्रेष्ठात्मा, सृष्टिकृत, सृष्टिकर्ता, सुरथ, सित, स्थावरात्मक, स्थानस्थूलदकू, स्थविर, स्थेय, स्थितिमान्, स्थितिहेतु, स्थिरात्मक, स्थितिस्थेय, स्थितिप्रिय, सुतप, सत्व, स्त्रोत, सत्यवान, सत्य, सत्यसन्धि, हुव, होम, होमांतकरण, होता, हयग, हेलि, हिमद, हंस, कर, हरि, हरिहृष्य (300) हरिप्रिय, हर्यश्रय, हरी, हिरण्यगर्भ, हिरण्यरेता, हरिताश्व, हेत, हुताहुति, द्यौः, दुःस्वप्नापशुभनाशन, धराधर, धाता, ध्वांतापह, ध्वांतसूदन, ध्वांतविद्वेषी, ध्वांतहा, धूमकेतु, धीमान्धीर, धीरात्मा, धन, धनाध्यक्ष, धनद, धनंजय, धन्वन्तरि, धन्य, धनुर्धर, धनुष्मान् ध्रुव, धर्म्म, धर्म्माधर्म्म, प्रवर्त्तक, धर्माधर्म्मवरपद, धर्म्मद, धर्म्मध्वज, धर्म्मवृक्ष, धर्म्मवत्सल, धर्मकेतु, धर्मकर्ता, धर्म्मनित्य, धर्म्मरत, धरणीधर धर्म्मराज, धृतातपत्राप्रतिम (पत्राग्रप्रतिम) धृतिकार, धृतिमान्, दिवा, द्वादशात्मा, द्वापर, दिवापुट, दिवापति, दिवाकर, दिवाकृत, दिवसपति, दिविस्थत, दिव्यवाह, दिव्यवपुः, दिव्यरूप, दयुवृक्ष, दयालु, देहकर्ता, दीधितिमान्, दीप दीप्तांक्षु, दीप्तदीधित, देव, देवदेव, द्योत, द्योतितानल, दिक्पति, दिग्वासा, दक्ष दिनाधीश, दिनबन्धु, दिनमणी, दिनकृत, दिनानाथ, दुराराध्य, पापनाशन, पावन भास्वान्, भास्कर, ससंत, भासत, भासित, भावितात्मा, भाग्य, भानु, भानेमि भानुकेसर, भानुमान् (?) भानुरूप, बहुदायक, भूधर, भवद्योत् भूपति, भूध (400) भूवणोन्दासी, भोगी, भोक्ता, भुवनपूजित, भुवनेश्वर, भूष्णु, भूतादि, भूतां तकरण, भूतात्मा, भूताश्रय, भूतिद, भूतभव्य, भूतविभु भूतप्रभू, भूतपति, भूतेश, भयांतकरण, भीम, भीमत, भग, भगवान् भक्तवत्सल, बहुमंगल, बहुरूप, भृताहार, भिषग्वर, बुद्धिबुद्धिवर्द्धन, बुद्धिमान, ब्रन्ध, पदमहस्त, पद्मपाणि, पद्मबन्धु, पद्म योगी, पद्मयोनि, पदमोदरनिभानन, पदमेक्षण, पदमावली, पदमनाभ, पदिमनीश, विभावस, विचित्ररथ, पवित्रात्मा, पूषा, व्योममणि, पीतवासा, पक्षबल, बलभृत, बलप्रिय, बलवान, बली, बलिनांवर, पिनाकधृक्य, बिन्दु, बन्धु, बन्धहा, पुंडरीकाक्ष, पुण्य, संकीर्तन, पुण्यहेतु, पर, प्राप्तयान, परावर, परावरश्र, परायण, प्राज्ञ, पराक्रम, प्राणधारक, प्राणवान्, प्रांशु, प्रसनात्मा प्रसन्नवदन, ब्रह्मा, ब्रह्मचर्यवान्, प्रद्योत्, प्रदयोतन, प्रदयोत, प्रभावन, प्रभाकर, प्रभंजन, परप्राण, परपुरंजय, प्रजाद्वार, प्रजापति, प्रजन, प्रजन्यप्रिय, प्रियदर्शन, प्रियकारी, प्रियकृत, प्रियंवद, प्रियंकर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत, प्रीति, प्रयतात्मका, प्रीतात्मा, प्रयतानन्द, प्रीतिमना, प्रकाश (500) पुरुषोत्तम, प्रकृति, प्रकृतिस्थिति, पृथ्वी, प्रथित, प्रत्यूह, वृषाकपि, परमोदार, परमेष्ठी, पुरन्दर, प्रणतार्तिहा, प्रणार्तिहर, परंतप, प्रेरेता, प्रशान्त, प्रशम, प्रतापन, प्रतापवान पुरुष, वृषध्वज, विश्व, विश्वमित्र, विश्वंभर, पशुमान, विश्तापन, पिता पितामह, पतग, पतंग, पितृद्वार, पुष्कलनिभ, वषट्कार, ज्यायानजा, जामदग्न्यजित्, चारुचरित, जाठर, जातवेदा, छन्दवेदा, छन्दवाहन, योगी, योगीश्वरपति, योगानित्य, योगतल्पन, यो (ज्यो) तिरीश, जयजीव, जीवानन्द, जीवन, जीवनाथ, जीमूत जनप्रिय, जेता-जगत् युगादिकृत, युग, युगावर्त, जगदाधार, जगदादिज, जगदानन्द जगदीप, जगज्जेता, चक्रसन्धु, चक्रवर्ति, चक्रपाणि, जगन्नाथ, जगत्, जगतामंतकरण, जगतापन्ति, जगत्साक्षी, जगत्पति, जगत्प्रिय, जगत्पिता, यम, जनार्दन, जनानन्द, ईशकर, जनेश्वर, जंगम, जनयिता, चराचरात्मा, यशस्वी, जिष्णु, जितावरीश, जितवपु:, जितेन्द्रिय, चतुर्भुज, चतुर्वेद, चतुर्वेदमय, चतुर्मुख, चित्रांगद, वासुकि, वासरेशिता, वासरस्वामी, वासरप्रभु, वासरप्रिय, वासरेश्वर, वाहनार्तिहर, वायु, वायुवाहन, वायुरत, वाग्विशारद, वाग्मी, वारिधि (600) वारण, वसुदाता, वसुप्रद, वसुप्रिय, वसुमान, विसृज, विहारी, विहगवाहन, विहं, विहंगम, विहित, विधिविधाता, विधेय, वदान्य, विद्वान, विद्योतन, विद्या, विद्यावान, विद्याराज, विद्युत, विद्युतमान, विदिताशय, विपाप्मा, विभावसु, विभवचसांपति, विजय, विजयप्रद, विजेता, विचक्षण, विवस्वान्, विविध, विविधासन, वज्जधर, व्याधिहा, व्याधिनाशन, व्यास वेदांग, वेदपारग, वेदभृत, वेदाहवाहन, वेदवेद्यं, वेदवित्, वेद्य, वेदकर्ता, वेदमुर्ति, वेदनिलय, व्योमग विचित्ररथ, व्योम मणि, देववान् विगतात्मा, वीर वैश्रवण, विगाही, विश्रमन, विघृण, विग्रह, विकृति, वक्ता व्यक्ताव्यक्त, विगतारिष्ट, विमल, विमलद्युति, विमन्यु, विमर्षी, (र्षो) विनिद्र, विराट, विराट, बृहस्पति, बृहत्कीर्ति, बृहज्जेता, बृहत्तेजा, वद, वरदाता, बुद्धिबुद्धिद, वरप्रद, वर्चस, विरूपाक्ष, विरोचन, वरीयान, वरुण, वरनायक, वर्णाध्यक्ष, वरुणेश, वरेण्य-वरेण्यवृत्त, वृत्तिधन, वृत्तिचारी, विश्वामित्र, वृत्ति, वशानुग, विशाष (ख) विश्मेश्वर, विश्योनि, विश्जित, विश्वित, विशोक, विशषवित्विष्णुविश्वात्मा, विश्वभाजन, विश्वकर्ता, विश्निलय, (700) विश्वरूपी, विष्तोमुख, विशिष्ट, विशिष्टात्मा, विषाद, यज्ञ, यज्ञपति, काक, काल, कालनलद्युति, कालहा, कालचक्र, कालचक्रप्रवर्तक, कालकर्ता, कालनाशक, कालत्रय, काम, कामारि, कामद, कामचारी, कांक्षिक, कांति, कांतिप्रद, कार्यकारण, वह, कारुणिक, कार्त्तस्तर, काश्यपेय, काष्टा, कपि, कुबेर, कपिल, गभस्तिमान्, गभस्मिली, कपर्दी, ख, खतिलक, खद्योत, खोल्का, खग, खगसत्तम, धर्मांशु, घृणी, घृणिमान, कवि, कवच कवची, गोपति, गोविन्द, गोमान, ज्ञानशोभन, ज्ञानवान, ज्ञानगम्य, ज्ञेय, केयूर, कीर्ति, कीर्तिवर्द्धन, कीर्तिकर, केतुमान, गमनकेतु, गगनमणि, कला, कल्प, कल्पांत, कल्पांतक, कल्पातकरण, कल्पकृत, कल्पक-कल्पक, कल्पकर्ता, कल्पितांबर, कल्याण, कल्याणकर, कल्याणकृत, कलिकालज्ञ, कल्पवपु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्मषापहृ, कमलाकरबोधन, कमलानंद, गुण, गन्धवह, कुण्डली, गति, कञ्जुकी, गुणवान, गणेश, गणेश्वर, गणनायक, गुरूगृहद, गृहपुष, गृहपति, ग्रहेश, ग्रहेश्वर, गुण, ग्रहनक्षत्रमंडन, क्रियाहेतु, क्रिकावान, गरीयान, किरीटी, कर्म्मसाक्षी, करण, किरण, कर्णसु, कृष्णवासा, कृष्णवर्त्मा, कृतकर्म्मा (800) कृताहार, कृतांतासू, कृतातिथि, कृतात्मा, कृतविश्व, कृती, कृत्यकृत्य, कृतमंगल, कृतिनांवर, क्षांति, क्षभ्राज, क्षेम, क्षेमस्थिति, क्षेमप्रिय, क्षमा, कश्मलापह, गतिमान्, लोहितांग, लोकाध्यक्ष, लोकालोकनमस्कृत, लोकबन्धु, लोकवत्सल, लोकेश, लोककर, लोकनाथ, लोकसाक्षी, लोकत्रयोसा, लग, मासमानिदामा, मांधाता, मानी, मारूत, मार्त्तंड, माता, मातर, महाबाहु, महाबुद्धि, महाबल, महायोगी, महायशा:महावैद्य, महावीर्य, महावराह, महावृत्ति, महाकारूणिकोत्तम, महाभाय, महामंत्र, महान्, महारथ, महास्ते (श्रे) ताप्रिय, महाशक्ति, महाशनि, महावेजा, महात्मा, मुहूर्त, महेन्द्र, महोत्साह, महेच्छ, महेश, महेश्वर, मिहिर, महित, महत्तर, मधुसूदन, मोक्षदायक, मोक्ष, मोक्षधर, मोक्षहेतु, मोक्षद्वार, मौनी, मेधा, मेधावी, मेधिक, मेध्य मेरूमेय, मुकुटि, मनुमुनि, मंदार, संदेहक्षेपण, मनोहर, मनोहररूप, मंगल, मंगलालय मंगलवान, मंगली, मंगलकर्ता, मंत्र, मंत्रमूर्ति, मरीचिमाली, मृत्यु, मरूतांपति, मिष्टाचार, मति, मतिमान्, नाकार, नाकपालि, नागराष्ट्र, नारायण, नाथ नभ, नभस्वान् नभोविगाहर, नभकेतन, नूतन, नोत्तर, नयनैकरूप, नैकरूपात्मा, नीलकण्ठ, नीललोहित, नेता, नियतात्मा, निकेतन, निक्षुपाभपति, नंदिवर्धन, नंदन, नर, निराकुल निराकार, निर्बन्ध, निर्गुण, निरंजन, निर्णय, नित्योदित, नित्य, नित्यगामी, निरंजर, नित्यरथ, राजा, राश्रीप्रिय, राज्ञापती, रवि, रविराज, रूचिप्रद, रूद्र, ऋद्धि, रोचिष्णु, रोगहा, रेणु, रेणुक, (पा० रेणव) रेवंत, हृषीकेश, रक्षोन्ध, रक्तांग, रश्मिमाली, रि (ऋ)तु (900) रथाधीश, रथाध्यक्ष, रथारूढ़, रथपति, रथी, रथिनांवर, शांतिप्रिय, शास्व (श्रव) त, साष्ठाक्षर, शुद्ध, शुभ, शुभाचार, शुभप्रद, शुभकर्म्मा, शब्दकर, शुची, शिव, शोभा, शोभन, शुभ्र, सुर, शीघ्रग, शीघ्रगति, शीर्ण, शषणुक, शुकांग, शक्तिमान्, शक्तिमंता, श्रेष्ठ, शंभु, शनैश्चर, शनैश्रपिता, शर्व्व, श्रीधर, श्रीपति, श्रेयस्कर, श्रीकण्ठ, श्रीमान्, श्रीमतांवर, श्रीनिवास, श्रीनिकेतन, श्रेष्ठ, शरण्य, शरण्यार्त्तिहर, श्रुतिमान्, शतबिन्दु, शतमुख, तापी, तापन, तारापति, तार्क्ष्यवाहन, तपन, तपनांवर, त्विषामीश, त्वरमाण, त्वष्टा, तीव्र, तेज, तेजसांनिधि, तेजसांपति, तेजस्वी, तेजोनिधि, तेजोराशि, तेजोनिलय, तीक्ष्ण, तीक्ष्णदीधिति, तीर्य, तिग्मांशु, ममिश्र, (स्त्र) हा, तम:, तमोहर, तमोनुद, तमोराति, तपोघ्न, तिमिरापह, त्रिविष्टप, त्रिविक्रय, त्रय, त्रेता, त्रिकंसस्थित, त्रयक्षर, त्रिलोचन, तरणित्र्यंबक, त्रिलोकेश (1000)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 4

अलबदायूंनी के अनुवादक डब्ल्यू. एच. लो ने "श्रमण" शब्द का प्रयोग किया है जबकि यहां सेवड़ा होना चाहिये क्योंकि उस समय जैन साधू सेवड़ा (श्वेताम्बर जैन) के नाम से जाने जाते थे। इसका प्रमाण है कि आज भी पंजाब में अजैन जैनों को भावड़ा कहते हैं जिन्हें मुगल काल में सेवड़ा कहा जाता था। अनुवादक ने अपने अनुवाद के फुटनोट में श्रमण का अर्थ बौद्ध श्रमण किया है। जो उचित नहीं है। क्योंकि बादशाह के दरबार में बौद्ध श्रवण तो कोई गया ही नहीं।

यह बात तो निर्विवाद है कि अकबर के दरबार में रहने वाले शेख अबुल-फजल और बदायूंनी अकबर के समय का खास इतिहास लिखने वाले हैं। अकबर के विषय में आज तक जो लिखा गया है उन्हीं के ग्रन्थों के आधार से लिखा गया है उन्होंने अकबर के ऊपर प्रभाव डालने वालों में जैन साधुओं का नाम तो दिया है, हालांकि जैन साधू न लिखकर "श्रमण" "सेवडा" या यति शब्द का प्रयोग किया है उन्होंने यह भी लिखा हैं कि अकबर के दरबार में जैन साधू गये और इन साधुओं का अकबर पर बहुत प्रभाव पड़ा। अबुलफजल ने तो अकबर की धर्म सभा के 140 सदस्यों में तीन जैन साधुओं हरिजी सूर (हीरविजयसूरि) बिजसेन और भानचन्द (विजसेन और भानुचन्द) के नाम भी दिये हैं। लेकिन बाद में जितने इतिहास लेखक और अनुवादक हुए उन्होंने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि ये कौन हैं ? और किस धर्म के अनुयायी हैं। यदि वे जैन धर्म से परिचय करते तो उन्हें तत्काल ही पता चल जाता है कि वे बौद्ध श्रमण या अन्य धर्म वाले नहीं बल्कि जैन साधू ही हैं इस सत्य को खोजने का कार्य यदि किसी ने किया है तो वे हैं "अकबर द ग्रेट मुगल" के लेखक डॉ. विन्सेन्ट ए स्मिथ, उसने अपनी खोजबीन के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि "अबुलफजल और बदायूंनी" के ग्रन्थों के अनुवादकों ने अपनी अनभिज्ञता के कारण ही जैन शब्द की जगह "बौद्ध" शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि अबुलफजल ने तो अकबरनामा में लिखा है कि—"अकबर की धर्म सभा में सूफी, दार्शनिक, वक्ता, विधिज्ञाता, सुन्नी, शिया, ब्राह्मण, यति, सेवडा, चार्वाक, यहूदी, सानी, (ईसाइयों का एक सम्प्रदाय)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पारसी आदि अन्य लोग सम्मिलित हुए:[1]

इस स्थान पर यति और सेवड़ा शब्द जैन साधुओं के लिए आये हैं, न कि बौद्ध साधुओं के लिए। वास्तविकता तो यह है कि अकबर को कभी किसी बौद्ध विद्वान से समागम करने का अवसर मिला ही नहीं जैसा कि अबुलफजल ने भी लिखा हैं कि—"चिरकाल से बौद्ध साधुओं का कहीं पता नहीं है। बेशक पेगू, तनासिरम और तिब्बत में ये लोग कुछ हैं। बादशाह के साथ तीसरी बार रमणीय काश्मीर की मुसाफिरी में जाते वक्त इस मत के (बौद्ध मत के) दो चार वृद्ध मनुष्यों से मुलाकात हुई थी, मगर किसी विद्वान से भेंट नहीं हुई थी:[2]

इससे स्पष्ट होता है कि अकबर न कभी किसी बौद्ध विद्वान से मिला था और न कभी कोई बौद्ध विद्वान फतेहपुर सीकरी की धर्मशाला में सम्मिलित हुआ था।

इतना होने पर भी किसी ने यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया कि अकबर के दरबार में कोई बौद्ध साधू था या नहीं? अथवा अकबर ने कभी बौद्ध साधुओं के उपदेश सुने या नहीं? स्मिथ का कहना है कि चैलमर्स ने अकबर नामा के अंग्रेजी अनुवाद में भूल से जैन और बौद्ध शब्द का प्रयोग कर दिया बस एक लेखक की भूल के बाद सभी लेखक भूल करते गये जिसका परिणाम यह हुआ कि जैन शब्द की जगह बौद्ध शब्द ही रह गया। स्मिथ ने तो यहां तक लिखा हैं कि—

"अकबर की बौद्धों के साथ न कभी भेंट हुई थी और न उस पर उनका प्रभाव ही पड़ा था, न बौद्धों ने कभी फतेहपुर सीकरी की धर्मसभा में भाग लिया था और न कभी अबुलफजल के साथ किसी बौद्ध विद्वान साधू की मुलाकात हुई थी। इससे बौद्ध धर्म के विषय में उसका (अकबर) ज्ञान बहुत ही कम था धार्मिक परामर्श सभा में भाग लेने वाले जिन दो चार लोगों के लिए बौद्ध होने का अनुमान किया जाता है, वह भ्रम हैं वास्तव में गुजरात से आये हुए जैन साधू थे।"

---

1. अकबरनामा हिन्दी अनुवाद—मथुरालाल शर्मा पृष्ठ 472
2. आइने अकबरी—एच. एस. जैरेट द्वारा अनुदित भाग 3, पृष्ठ 224

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 5

**विजयदेवसूरिजी का महाराणा जगतसिंह पर प्रभाव—**

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने आचार्य विजयदेवसूरिजी के उपदेश से प्रतिकर्ष पौष सुदी दसमी को वरकाना (गोडवाड) तीर्थ पर होने वाले मेले में आगन्तुक यात्रियों पर टैक्स लेना रोक दिया था और सदैव के लिए इक आज्ञा को एक शिला पर खुदवाकर मन्दिर के दरवाजे के आगे लगवा दिया था, जो कि अभी तक मौजूद है। राणा जगतसिंह के प्रधान झाला कल्याण सिंह के निमन्त्रण पर आचार्य विजयदेवसूरि ने उदयपुर में चातुर्मास किया। चातुर्मास समाप्त होने के समय एक रात दलबादल महल में विश्राम किया। तब महाराणा जगतसिंह सूरिजी को नमस्कार करने गये और सूरिजी के उपदेश से निम्नलिखित चार बातें स्वीकार की—

1—उदयपुर के पिछोला सरोवर और उदयसागर में मछलियों को कोई न पकड़े।

2—राज्याभिषेक वाले दिन जीव-हिंसा निषेध।

3—जन्म-मास और भाद्रपद में जीव-हिंसा निषेध।

4—मचिन्द्र दुर्ग पर राणा कुम्भा द्वारा बनवाये गये जैन चैत्यालय का पुनरुद्धार।[1]

---

1. इन सब बातों का विवरण विजयदेवसूरि माहात्म्यम, देवानन्द महाकाव्य एवं दिग्विजय महाकाव्य में मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 6

**कच्छ मोटी खाखरना देशसरनो शिलालेख—**

व्याकरण काव्य साहित्य नाटक संगीत ज्योतिष छन्दोऽलंकार कर्कशतेर्क शैव जैन चिन्तामणि प्रचंग खम्मन मीमांसा स्मृति पुराण वेद श्रुति पद्धति षट्त्रिंशत्वसहस्त्राधिक 6 लक्षमित श्री जैनागमप्रमुख स्वपर सिद्धान्त गणित जाग्रद्यावनीयादि षडदर्शनी ग्रन्थ विशदेति ज्ञान चातुरी दलितदुर्वादिजनोन्मादैः ब्राह्मीयावनीयादि लिपि पिछालिपी विचित्र चित्रकला छटोज्जवाल नावधि विधीयमान विशिष्ट शिष्टचेतश्चचमत्कार कारि श्रृंगारादिरस सरस चित्राद्लांकारालंकृत सुरेन्द्र भाषा परिगणि भवरू नष्टकाव्य षट्त्रिंशद्रागिणी गणोपनीत परम भाव राममाधुर्य श्रेतृजनामृत पीतगीतरास प्रबन्ध परम भाव रागमाधुर्य श्रोतृजनामृत पीतगीतरास प्रबन्ध नाना छन्दः प्राच्यमहा पुरूष चरित्र प्रमाण सूत्रवृत्यादि करण यथोक्त समस्या पूरण विविध ग्रंथग्रंथनेन नैंक श्लोकशत संख्यकरणादि लब्धगीः प्रसादैः श्रोतृश्रवणामृत परणानुकारि सर्वराग परिगणि मनोहारि मुखनादैः स्पष्टाष्टावधान शतावधान कोष्टकपूरणादि पांडित्यानुरंजित महाराष्ट्र कौंकणेश श्री बुहानशाहि महाराज **श्री रामराज श्रीखानखाना श्रीनवरंगखान प्रभृत्यडनेक भूपवत्त जीवामारि प्रभूत बन्दिमोक्षादि सुकृत समर्जित यशःप्रवादैः प. श्री विवेक हर्षगणि प्रसादैरस्मवगुरूपादैः संसघाट कैस्तैषामेव श्री परमगुरूणा मादेश प्रसादं माराज श्री भारमल्लजिदाग्रहानुगा मिनमासाव्य श्री भक्तामरादि स्तुति भक्ति प्रसन्नी भूत श्री ऋषभदेवोपासक सुर विशषज्ञया प्रथम विहारं श्री कच्छदेशंतं चक्रे** तत्रच सम्वत् 1656 वर्ष श्री भुज नगरे आद्यं यतुर्मासंक द्वितीयच राजपुर बन्दिरे तदाव श्री कच्छा मच्छुकांग पश्चिम पांचाल वागड जेसला गंडलाद्यनेडक देशाधीशैर्महाराज श्री खैंगार जी पट्टालेकरर्णव्याकिरण काव्यादि परिज्ञान सरस्वती महानवस्थान विरोध त्याजकैर्यादववंश भास्कर महाराज श्रीभारमल्लजी राजाधिराजैः (विज्ञप्ताः) श्रीगुरूव स्ततस्तदिच्छापूर्वक संजिग्मिवांसः काव्य व्याकरणादि गोष्टया स्पष्टावधानादि प्रचंड पांडित्य गुण दर्शनेन च रंजितैः राजेन्द्रैः **श्री गुरूणां स्वदेशेषु जीवामारी प्रसादश्चक्रे तद्धर्यक्तिर्यथा सर्वदापि गवामारिःपर्यूषणा ऋषिपञ्चमीयुत नव-दिनेषु तथा श्राद्धपक्षे सर्वेकादशी रविवार दर्शेषु च तथा महाराज जन्मदिने राज्य दिने सर्व जीवामारिरिति** सार्वदिकी सार्वत्रिकी चोद्घोषणा जज्ञे तदनु चैकदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाराजै पाल्लविधीयमान न भोवार्षिक विप्र विप्रतिपत्रो तच्छिक्षाकरण पूर्वक श्री गुरूभिः कारिता श्री गुरुमन्त्र नभस्यवार्षिक व्यवस्थापिका सिद्धांतार्थं युक्ति मा कर्ण्य तुष्टो राजा जयवादपत्राणि स्वमुद्रांकितानि श्रीगुरुभ्यः प्रसादादुपठोकयतिस्म प्रतिपक्षस्य च पराजितस्य तादृश राजनीति मासूत्रय श्रीराम इव सम्यग न्याय धर्म सत्यापितवान किंच कियदेवदस्मदगुरूणाम ।।यतः।।

यैजिग्ये मलकापुरे विवदिषुर्मूलभिधानो मुनिः ।
श्री मज्जैनमत यन्नुतिपदं नीति प्रतिष्ठानके ।।
टटानांशतशोऽपियस्सुमिलितासुदृदीप्ययुक्तीर्जिता ।
यैर्मोनं श्रयितः स बोरिदपुरेवादी श्रवरोदेवजी ।।
जैन न्याय गिराविवाद पदवी मारोप्य निर्धाटितो ।
पाचीदेश गजलणा पुरवरे दिगंबराचार्यराट् ।।
श्री मद्रामपरेन्द्र संसदि किलात्मारामवादीश्वर ।
कस्तेषां च विवेकहर्ष सुविधयामग्रे धराचन्द्रकः ।।
किंचास्मद गुरूवक्त्रानिर्गत महाशास्त्रामृताधीरतः ।
सर्वत्रामितमान्यतामवदधे श्री मद्युगादिप्रभोः ।।
तदभक्त्यै भुजपत्तने व्यरचेचत श्री भारमल्लप्रभुः ।
श्री मद्रायविहारनाम जिनप्रपासादमत्यद भुतम् ।।

अथच सम्वत् 1656 वर्षे श्रीकच्छदेशांजेंसला मण्डले विहरन्दि श्रीगुरूभिः प्रबल धनधान्याभिरामं श्रीखाखर ग्रामं प्रतिबोध्य सम्यग धर्मक्षेत्रं चक्रे यत्राधीशौ महाराज श्रीभारमल्लजी भ्राता कुंअरश्रीपंचायणी प्रमद प्रबल पराक्रमाक्रांत रक्चक्रस्वक्रबन्धु प्रताप तेजा यस्यपट्टराज्ञी पुष्पांबाई प्रभृति तनूजाः कुंवर इजाजी, हाजाजी, भीमजी, देसरजी, देवोजी, कमोजी, नामानो रिपुगजघटाकेशरिण त्रच शतशः श्रीऊंशवालग्रहणि सम्यग् जिनधर्म प्रतिबोध्य सर्वश्राद्ध समाचारी क्षणैन च पतमश्राद्धी कृतानि तत्रच ग्रामग्रामणी भद्रकब दानशुरत्वादि ग्रणी-नतयशः प्रसर कर्पूर पूर सुभिकृत ब्रह्मांड भांडः शा वयरसिकः सकुटुम्बः गुरूणा तथा प्रतिबोधितो यथा तेन धधरशा शिवापेथा प्रभृति समर्वाहतेन ग्रोपाश्रयः श्रीतपागण धर्मराजधानीव चक्रे तथा श्रीगुरूपदेशेनैव गुर्जर धरित्रयाः ल्लातक्षकानाकार्यं श्रीसम्भवनाथ प्रतिमा कारिता शा वयरसिकेन तत्सुतेनशा यरनाम्ना मूलनायक श्री आदिनाथ प्रतिमा 2 शावीज्झाख्येन 3 श्रीविमलनाथ तिमाच कारिता तत्प्रतिष्ठा तुशा० वयरसिकेनैव द० 1657 वर्षे माद्यसित 10 म्ये श्रीतपागच्छ नायक भट्टारक श्रीविजयसेन सूरिपरमगुरूणा मादेशादस्मद गुरु व विवेकहर्ष गणिकरेणेव कारिताः तदनन्तरमेषप्रसादोऽप्यस्मद गुरूपदेशेनैन फाल्गुना त 10 सुमुहूर्त्ते ऊपएसगच्छे भट्टारक श्रीकक्कसूरि बांधत श्री आनन्दकुशल श्राद्धेन शवाल ज्ञातीय पारिविगोत्रे शा० वीरापुत्र डाहापुत्र जेठापुत्र शा० खाखण पुत्र

नत्लेन शा० वयरसिकेन पुत्र शा० रणवीर शा० सायर शा० महिकरण स्नुषा ऊमा रामा पुरीपौत्र शा० मालदेव, शा० राजा, खेतल, खेमराज, वणवीर, दीदा प्रमुख कुटुंम्बयुतेन प्रारेभे: तत्र सान्निध्यकारिणो धंधरगोत्रीयो पौर्णमीयक कुलगुरू भट्टारक श्री निश्राश्राद्धो शा० कंथड सुत शा० नागीआशा० मेरग नामानौ सहोदरौ सुत शा० पाचासा महिपाल मल प्रसादादात् कुटुंबयुतौ प्रसादोडयं श्री शत्रुन्ज्य यावताराख्य: सम्वत् 1657 वर्षे फाल्गुन कृष्ण 10 दिने प्रारब्धः। सम्वत् 1659 वर्षे फा० शु० 10 दिनेडत्रसिद्धि नगर संघे श्रेयश्च सम्वत् 1659 वर्षे फा० सुद 10 दिने प० श्री विवेकहर्ष गणिभिर्जिनेश्वर तीर्थ विहारोडयं प्रतिष्ठितः प्रशस्तिरियं विबुधाहर्षगणिभिर्विरचिताःसंवता वैक्रमः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## जहांगीर बादशाह का विजयदेवसूरिजी के नाम पत्र

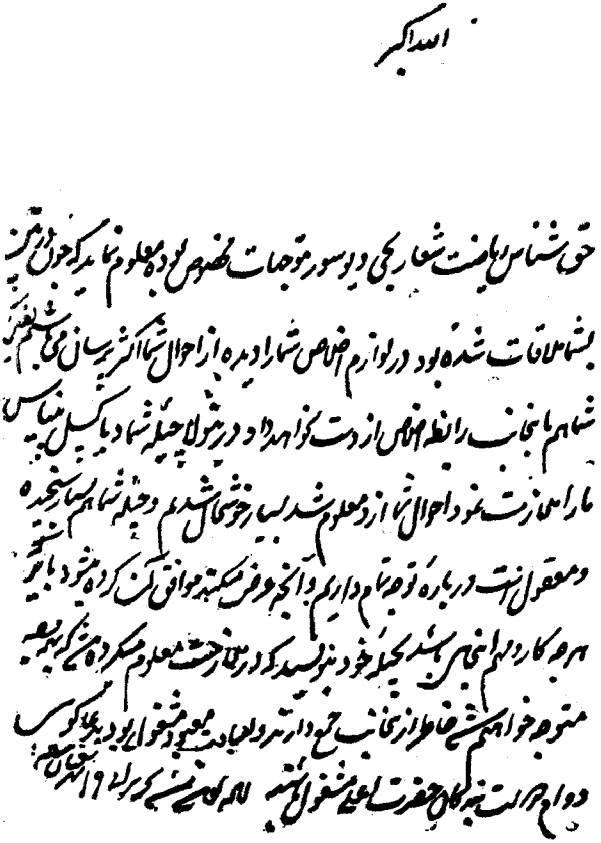

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट -7

## जहांगीर बादशाह का विजयदेवसूरि के नाम पत्र

( अल्ला हो अकबर )

हक को पहचानने वाले, योगाभ्यास करने वाले विजयदेवसूरि को, हमारी खास मेहरबानी कर हासिल हो कि, तुमसे "पत्तन" में मुलाकात हुई थी इससे एक सच्चे मित्र की तरह (मैं) तुम्हारे प्रायः समाचार पूछता रहता हूं। (मुझे) विश्वास है कि तुम हमारे साथ सच्चे मित्र का (तुम्हारा) जो सम्बन्ध है उसको नहीं छोड़ोगे। इस समय तुम्हारा शिष्य दयाकुशल हाजिर हुआ है। तुम्हारे समाचार उसके द्वारा मालुम हुए। इससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम्हारा शिष्य भी अच्छी तरह तर्क शक्ति रखने वाला और अनुभवी है। यहां योग्य जो कुछ काम हो वह तुम अपने शिष्य को लिखना (जिससे) हुजूर को मालुम हो जाये। हम उस पर हरेक तरह से ध्यान देंगे। हमारी तरफ से बेफिक्र रहना और पूजने लायक जान की पूजा कर हमारा राज्य कायम रहे इस प्रकार की दुआ करने में लगे रहना।

लिखा ता० 19, महीना शाहबान, हिजरी सन् 1027

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 8

## स्मिथ के पत्र का हिन्दी अनुवाद

अकबर बादशाह ईश्वर और सूर्य को पूजता है, और वह हिन्दू है वह व्रती[1] सम्प्रदाय के अनुसार आचरण करता है। वे मठवासी साधुओं की भांति बस्ती में रहते हैं और बहुत तपस्या करते हैं। वे कोई सजीव वस्तु नहीं खाते हैं बैठने के पहले रूई (ऊन) की पीछी (साधुओं का एक उपकरण) से जमीन को साफ कर लेते हैं ताकि जमीन पर कोई जीव रहकर उनके बैठने से मर न जावे इन लोगों की मान्यता है कि संसार अनादि है, मगर दूसरे कहते है कि अनेक संसार हो गये हैं ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें लिखकर आप श्रीमान् को चिन्तित करना नहीं चाहता।

1. व्रती से तात्पर्य जैन साधुओं से ही है उस समय के बहुत से लेखकों ने जैन साधुओं के लिए व्रती शब्द ही लिखा हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## स्मिथ का मूल पत्र

his King [Akbar] .... worships God,
and the Sun, and is a Hindu [Gentile]; he
... the sect of the Vertei, who are like monks,
... in communities [Congregations], and do
penance. They eat nothing that has had life [anima],
... they sit down, they sweep the place with
... of cotton, in order that it may not happen
(si affronti) that under them any worm
[insect?, vermicello] may remain, and be killed
... sitting on it. These people hold that the world
... from eternity, but others say No, - many worlds
... passed away. In this way they say many
things, which I omit so as not to weary
Reverence.

Vincent A. Smith
116 Banbury Road
Oxford
2 Nov. 1918

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अकबर बादशाह द्वारा आचार्य श्री हीरविजयसूरिजी को दिया गया फरमान नं० 1

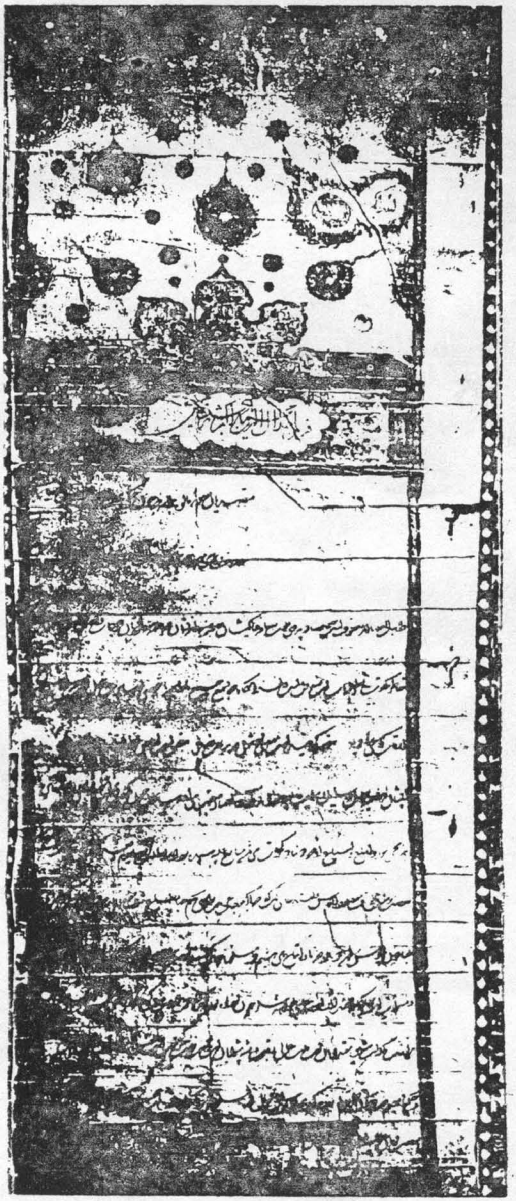

अकबरबादशाह का फरमान।
(नंबर-१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 9

## हीरविजयसूरिजी को अकबर बादशाह का फरमान

[ नम्बर 1 ]

( ईश्वर के नाम से ईश्वर बड़ा है )

मालवा के मुत्सद्दियों को विदित हो कि चूंकि हमारी कुछ इच्छायें इसी बात के लिए हैं कि शुभाचरण किये जायें और हमारे श्रेष्ठ मनोरथ एक ही अभिप्राय अर्थात् अपनी प्रजा के मन को प्रसन्न करने और आकर्षण करने के लिये नित्य रहते हैं।

इस कारण जब कभी हम किसी मत व धर्म के ऐसे मनुष्यों का जिक्र सुनते हैं जो अपना जीवन पवित्रता से व्यतीत करते हैं, अपने समय को आत्म ध्यान में लगाते हैं और जो केवल ईश्वर के चिन्तवन में लगे रहते हैं तो उनकी पूजा की बाह्य रीति को नहीं देखते हैं और केवल उनके चित्त के अभिप्राय को विचार के उनकी संगति करने के लिए हमें तीव्र अनुराग होता है और ऐसे कार्य करने की इच्छा होती है जो ईश्वर को पसन्द हो इस कारण हरिभज सूर्य (हीरविजयसूरि) और उनके शिष्य जो गुजरात में रहते हैं और वहां से हाल ही में यहां आये हैं। उनके उग्रतप और असाधारण पवित्रता का वर्णन सुनकर हमने उनको हाजिर होने का हुक्म दिया है और वे आदर के स्थान को चूमने की आज्ञा पाने से सन्मानित हुए हैं। अपने देश को जाने के लिए विदा (रूखसत) होने के पीछे उन्होंने निम्नलिखित प्रार्थना की—

यदि बादशाह जो अनाथों का रक्षक है यह आज्ञा दे दें कि भादों मास के बारह दिनों में जो पजूसर (पजूषण) कहलाते हैं और जिनको जैनी विशेषकर के पवित्र समझते हैं कोई जीव उन नगरों में न मारा जाये जहां उनकी जाति रहती हैं, तो इससे दुनियां के मनुष्यों में उनकी प्रशंसा होगी बहुत से जीव बध होने से बच जायेंगे और सरकार का यह कार्य परमेश्वर को पसन्द होगा और चूंकि जिन मनुष्यों ने यह प्रार्थना की हैं वे दूर देश से आये हैं और उनकी इच्छा हमारे धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आज्ञाओं के प्रतिकूल नहीं है वरन् उन शुभ कार्यों के अनुकूल ही हैं जिनके माननीय और पवित्र मुसलमानों ने उपदेश किया हैं। इस कारण हमने उनकी प्रार्थना को मान लिया और हुक्म दिया कि उन बारह दिनों में जिनको पजूस (पर्जूषण) कहते हैं, किसी जीव की हिंसा न की जावे।

यह सदा के लिए कायम रहेगी और सबको इसकी आज्ञा पालन करने और इस बात का यत्न करने के लिए हुक्म दिया जाता है कि कोई मनुष्य अपने धर्म सम्बन्धि कार्यों के करने में दुख न पावें।

मिति 7 जमादुलसानी सन् 992 हिजरी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अकबर बादशाह द्वारा आचार्य श्री हीरविजयसूरिजी को दिया गया फरमान नं० 2

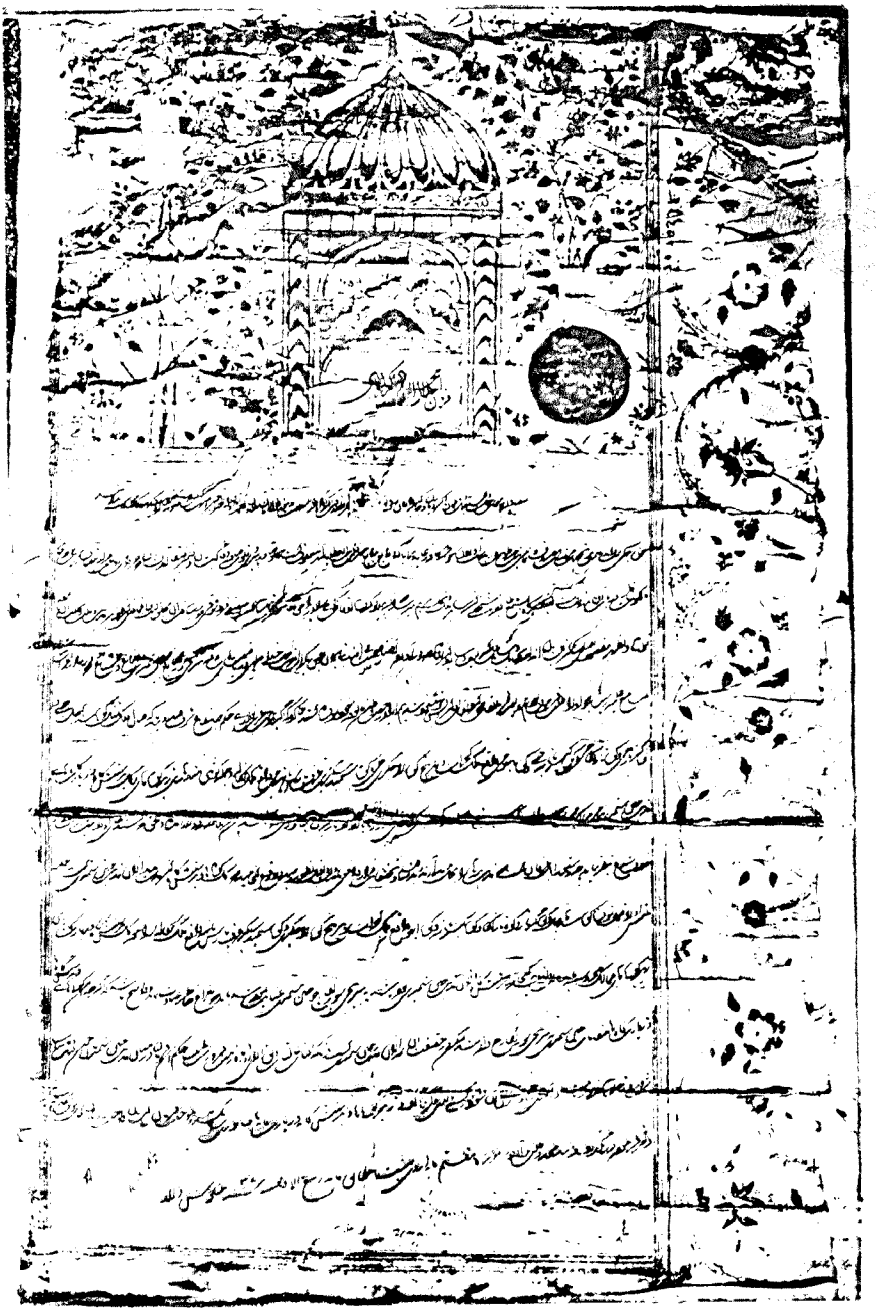

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# हीर विजयसूरिजी को अकबर बादशाह का फरमान

[ नम्बर 2 ]

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर
बादशाह गाजी का फरमान

जलालुद्दीन अकबर बादशाह
हुमायूं बादशाह का लड़का
बाबर बादशाह का लड़का
अमरशेख मिर्जा का लड़का
सुल्तान अबू सइद का लड़का
सुल्तान मुहम्मदशाह का लड़का
मीरशाह का लड़का
अमीर तैमूर साहिब किरान का लड़का

सूबा, मालवा, अकबराबाद, लाहौर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, गुजरात, बंगाल तथा दूसरे हमारे कब्जे में मुल्क का हाल तथा इसके बाद मुत्सदी सूबा करोरी तथा जागीरदारों को मालूम हो कि हमारा कुल इरादा ये हैं कि सभी रइयत का मन राजी रहे, कारण कि उनका दिल परमेश्वर की एक बड़ी अमानत है। विशेषकर वृद्धावस्था में हमारा इरादा ये है कि हमारा भला चाहने वाली रइयत सुखी तथा राजी रहे। हमारा अन्तःकरण पवित्र हृदय वाले व्यक्ति भक्त सज्जनों की खोज में निरन्तर लगा रहता है। जिस कारण मेरे सुनने में आया है कि हीरविजयसूरि (हीरविजयसूरि) जैन श्वेताम्बर के आचार्य गुजरात के बन्दरों में परमेश्वर की भक्ति कर रहे है उनको अपने पास बुलाया, उनसे मुलाकात की हमें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने अपने वतन जाने की आज्ञा मांगते समय अर्ज किया गरीब परवर की हुक्म हो कि सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केसरियानाथजी, आबूजी, के पहाड़ जो गुजरात में हैं तथा राजगिरी के पांचों पहाड़, सम्मेतशिखरजी उर्फ पार्श्वनाथजी जो बंगाल के मुल्क में है वो तथा पहाड़ों के नीचे जो मन्दिर कोठी तथा भक्ती करने के सभी जगहें तथा तीर्थ की जगहें जहां जैन श्वेताम्बर धर्म की अपने अधिकार में, मुल्क में, जहां-जहां भी हमारे कब्जे में है, पहाड़ तथा मन्दिर के आसपास कोई भी आदमी जानवर न मारे और ये दूर देश से हमारे पास आये हैं इनकी अर्ज यथार्थ है। यद्यपि मुसलमानी धर्म के विरुद्ध लगता है फिर भी परमेश्वर को पहचानने वाले मनुष्यों का कायदा है कि किसी के धर्म में दखल न दे और उनके रिवाजों को कायम रखे। ये अर्ज मेरी नजर में दुरुस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालूम पड़ी कि जो सभी पहाड़ तथा पूजा की जगहें बहुत समय से जैन श्वेताम्बर धर्म की है, अतएव उनकी अर्ज कबूल कर सिद्धाचल का पहाड़, गिरनार का पहाड़ तारंगा का पहाड़, केसरियानाथजी के पहाड़ जो गुजरात देश में है वो तथा राजगिरी के पांचों पहाड़ सम्मेत शिखर उर्फ पार्श्वनाथ का पहाड़ जो बंगाल में है। सभी पूजा की जगहें तथा पहाड़ के नीचे की तीर्थ की जगह जो हमारे अधीन मुल्क में है, और कोई जो जैन श्वेताम्बर धर्म की हो वो हीरविजयसूर जैन श्वेताम्बर आचार्य को दे दिया गया है। वे निखालिस मन से परमेश्वर की शक्ति करेंगे और जो पहाड़ तथा पूजा की जगहें तीर्थ, की जगहें श्वेताम्बर धर्म की ही है। असल में देखा जाये तो वे सब जैन श्वेताम्बर धर्म की ही है। जब तक सूर्य से दिन उजाला होगा, चन्द्रमा से रात को रोशनी होगी तब तक इस फरमान का हुक्म जैन श्वेताम्बर धर्म को मानने वाले लोगों में प्रकाशित रहे और कोई मनुष्य इस फरमान में दखल न करे। कोई भी उन पहाड़ों के ऊपर तथा उसके आस-पास के पूजा की जगहों, तीर्थों की जगहों में जानवर मारना, नहीं और इस हुक्म पर गौर कर अमल करें। तथा हुक्म से मुकरना नहीं, दूसरी नई फरमान मांगना नहीं।

लिखा तारीख 7 माह उरदी बेहेस्त मुताबिक रविउल अवल, सन् 37 जुलुसी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# हीर विजय सूरिजी को अकबर बादशाह का फरमान

[ नम्बर 3 ]

महान राज्य के सहायक, महान राज्य के वफादार, श्रेष्ठ स्वभाव और तम गुण वाले, अजित राय को दृढ़ बनाने वाले, राज्य के विश्वास भाजन, शाही ापत्र, बादशाह द्वारा पसन्द किये गये और ऊंचे दर्जे के खानों के नमूने स्वरूप ुबारिज्जुदीन" (धर्मवीर) आजमखान ने बादशाही मेहरबानियां और बख्शीशों बढ़ती से, श्रेष्ठता का मान प्राप्त कर जानना कि भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज ले, भिन्न धर्म वाले, विशेष मतवाले और जुदा पंथ वाले, सभ्य या असभ्य छोटे या टे राजा या रंक, बुद्धिमान या मूर्ख दुनियां के हरेक दर्जे या जाति के लोग, कि नमें का प्रत्येक व्यक्ति खुदाईनूर जहूर में आने का प्रकट होने का स्थान और नेया को बनाने वालों के द्वारा निर्मित भाग्य के उदय में आने की असल जगह एवं सृष्टि संचालक (ईश्वर) की आश्चर्य पूर्ण अमानत है—अपने-अपने श्रेष्ठ ग में दृढ़ रहकर, तन और मन का सुख भोगकर, प्रार्थनाओं और नित्य क्रियाओं एवं अपने ध्येय पूर्ण करने में लगे रहकर, श्रेष्ठ बख्शिशें देने वाले (ईश्वर) से ा प्रार्थना करे कि वह (ईश्वर) हमें दीर्घायु और उत्तम काम करने की सुमति । कारण, मनुष्य जाति में से एक को राजा के दर्जे तक ऊंचा चढ़ाने और उसे र की पोशाक पहनाने में पूरी बुद्धिमानी यह है कि वह (राजा) यदि सामान्य और अत्यन्त दया को जो परमेश्वर की सम्पूर्ण दया का प्रकाश है, अपने रखकर सबसे मित्रता न कर सके, तो कम से कम सबके साथ सुलह, मेल ाव डाले और पूज्य व्यक्ति में (परमेश्वर के) सभी बन्दों के साथ मेहरबानी, ाद और दया करे तथा ईश्वर की पैदा की हुई सब चीजों (प्राणियों) को जो । परमेश्वर की सृष्टि के फल हैं मदद करने का ख्याल रखें एवं उनके हेतुओं फल करने में और उनके रीति-रिवाजों को अमल में लाने के लिए यह करे कि जिससे बलवान गरीब पर जुल्म न कर सके और हरेक मनुष्य और सुखी हो।

इससे योगाभ्यास करने वालों में श्रेष्ठ हीरविजयसूरि "सेवड़ा" और उनके ानने वालों की जिन्होंने हमारे दरबार में हाजिर होने की इज्जत पाई है जो हमारे दरबार के सच्चे हितेच्छु हैं योगाभ्यास की सच्चाई, बुद्धि और की शोध पर नजर रखकर हुक्म हुआ कि उस शहर के (उस तरफ के)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहने वालों में से कोई भी इनको हरकत (कष्ट) न पहुंचावे और इनके मन्दिरा तथा उपाश्रयों में भी कोई न उतरे। इसी तरह इनका कोई तिरस्कार भी न करे। यदि उनसे में (मन्दिरों या उपाश्रयों में से) कुछ गिर गया या उजड़ गया हो और उनको मानने, चाहने खैरात करने वाले में से कोई उसे सुधारना या उसकी नींव डालना चाहता हो तो उसे कोई बाह्य ज्ञान वाला (अज्ञानी) या धर्मान्ध न रोके। और जिस तरह खुदा को नहीं पहिचानने वाले, बारिश रोकने और ऐसे ही दूसरे कामों को करना जिनका करना केवल परमात्मा के हाथ में है—मूर्खता से जादू समझ, उसका अपराध उन बेचारे खुदा को पहचानने वालों पर लगाते हैं और उन्हें अनेक तरह से दुख देते हैं ऐसे काम तुम्हारे साये और बन्दोबस्त में नहीं होने चाहिये, क्योंकि तुम नसीब वाले और होश्यार हो। यह भी सुना गया है कि हाजी अबीबुल्लाह ने जो हमारी सत्य की शोध और ईश्वरीय पहचान के लिए थोड़ी जानकारी रखता है इस जमात को कष्ट पहुचाया है इससे हमारे पवित्र मन को जो दुनियां का बन्दोवस्त करने वाला है—बहुत ही बुरा लगा है इसलिए तुम्हें इस बात की पूरी होश्यारी रखनी चाहिए कि तुम्हारे प्रति में कोई किसी पर जुल्म न कर सके उस तरफ के मौजूदा और भविष्य में होने वाले हाकिम, नबाव या सरकारी छोटा से छोटा काम करने वाले अहलकारों के लिए भी यह नियम है कि व राजा की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा का रूपान्तर समझें. उसे अपनी हालत सुधारने का वसीला समझें और उसके विरुद्ध न चलें, राजाज्ञा के अनुसार चलने ही में दीन और दुनियां का सुख एवं प्रत्यक्ष सम्मान समझें। यह फरमान पढ़, इसकी नकल रख, उनको दे दिया जाये जिससे सदा के लिए उनके पास नद रहे, वे अपनी भक्ती की क्रियायें करने में चिन्तित न हों और ईश्वरोपासना में उत्साह रखे इसको फर्ज समझकर इसके विरुद्ध कुछ न होने देना।

इलाही सम्वत् 35 अजार महीने की छठी तारीख और खुरदाद नाम के राज यह लिखा गया। मुताबिक तारीख 28 वीं मुहर्रम सन् 999 हिजरी।

मुरीदों (अनुयायियों) में से नम्रतिनम्र अबुलफजल ने लिखा और इब्राहीम हुसेन ने नोंध की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# विजयसेन सूरीजी को अकबर बादशाह द्वारा दिया गया फरमान

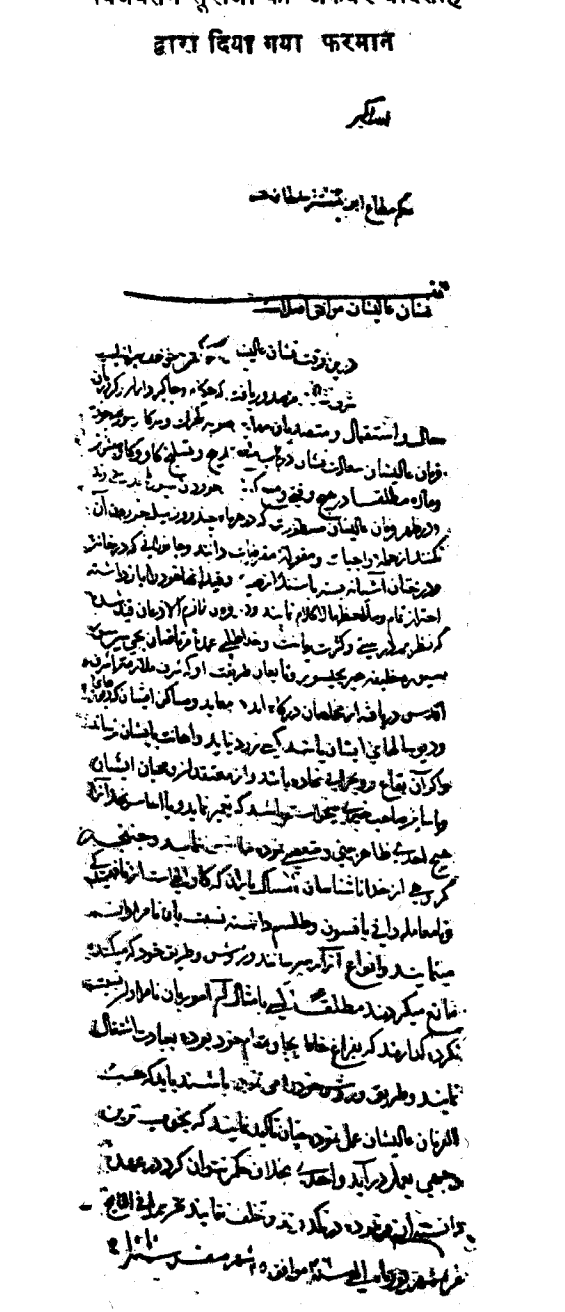

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## विजयसेन सूरिजी को अकबर बादशाह का फरमान

[ नम्बर 4]

इस वक्त ऊंचे वर्जे वाले निशान की बादशाही मेहरबानी से बाहर निकलने का सम्मान मिला (है) कि,—मौजूदा और भविष्य के हाकिमों, जागीरदारों, करोड़ियों और गुजरात सूबे के तथा सोरठ सरकार के मुसद्दियों से, सेवड़ा (जैन साधु) लोगों के पास गाय और बैलों को तथा भैंसों और पाडों को किसी भी समय मारने की तथा उनका चमड़ा उतारने की मनाई से सम्बन्ध रखने वाला श्रेष्ठ और सुख के चिन्हों वाला फरमान है और श्रेष्ठ फरमान के पीछे लिखा है कि "हर महीने में कुछ दिन इसके खाने की इच्छा नहीं करना तथा इसे उचित और फर्ज समझना और जिन प्राणियों ने घर में या वृक्षों पर घोंसले बनाये हों उन्हें मारना या कैद करने (पिंजड़े में डालने) से दूर रहने की पूरी सावधानी रखना।" इस मानने लायक फरमान में और भी लिखा है कि—

"योगाभ्यास करने वालों में श्रेष्ठ हीरविजयसूरि के शिष्य विजयसेनसूरि सेवड़ा और उसके धर्म को पालने वाले जिन्हें हमारे दरबार में हाजिर होने का सम्मान प्राप्त हुआ है और जो हमारे दरबार के खास हितेच्छु हैं—उनके योगाभ्यास की सत्यता और बुद्धि तथा परमेश्वर की शोध पर नजर रख (हुक्म हुआ कि) इनके मन्दिरों में या उपाश्रयों में कोई न ठहरें एवं कोई उनका तिरस्कार भी न करे। अगर ये जीर्ण होते हों और इनके मानने वालों, चाहने वालों में से कोई इन्हें सुधारे या इनकी नींव डाले तो कोई भी बाह्य ज्ञान वाला या धर्मान्ध उसे न रोके। और जैसे खुदा को नहीं पहचानने वाले, बारिस को रोकने या ऐसे ही दूसरे काम जो पूज्यजाते के (ईश्वर के) काम हैं—करने का दोष, मूर्खता और बेवकूफी के सबब, उन्हें जादू के काम समझ, उन बेचारे खुदा के मानने वालों पर लगाते हैं और उन्हें अनेक प्रकार के दुख देते हैं। ऐसे कामों का दोष इन बेचारों पर नहीं लगाकर इन्हें अपनी जगह और मुकाम पर खुशी के साथ भक्ती का काम करने देना चाहिए, एवं अपने धर्म के अनुसार उन्हें धार्मिक क्रियायें करने देना चाहिए।

इससे (उस) श्रेष्ठ फरमान के अनुसार अमल कर ऐसी ताकीद करनी चाहिए कि, बहुत ही अच्छी तरह से इस फरमान का अमल हो और इसके विरुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई हुक्म न चलावे (हरेक के चाहिये कि) वह अपना फर्ज समझकर फरमान अपेक्षा न करे, उसके विरुद्ध कोई काम न करे। तारीख 1 शहर्युर, महीना इला सन् 46 मुताबिक तारीख 25 महीना सफर सन् 1010 हिजरी।

**पेटा का वर्णन—**

फरवरदीन महीना जिन दिनों में सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता वे दिन, ईद, मेहर का दिन, हर महीने के रविवार, के दिन कि जो दो सूफियाना दिनों के बीच में आते हैं रजब महीने के सोमवार आबान महीना जो कि बादशाह के जन्म का महीना हैं हरेक शमशी महीने का पहला दिन जिसका नाम ओरमज है, और बारह पवित्र दिन कि जो श्रावण महीने के अन्तिम छः और भादवे के प्रथम छः दिन मिलकर कहलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी को अकबर बादशाह
द्वारा दिया गया फरमान

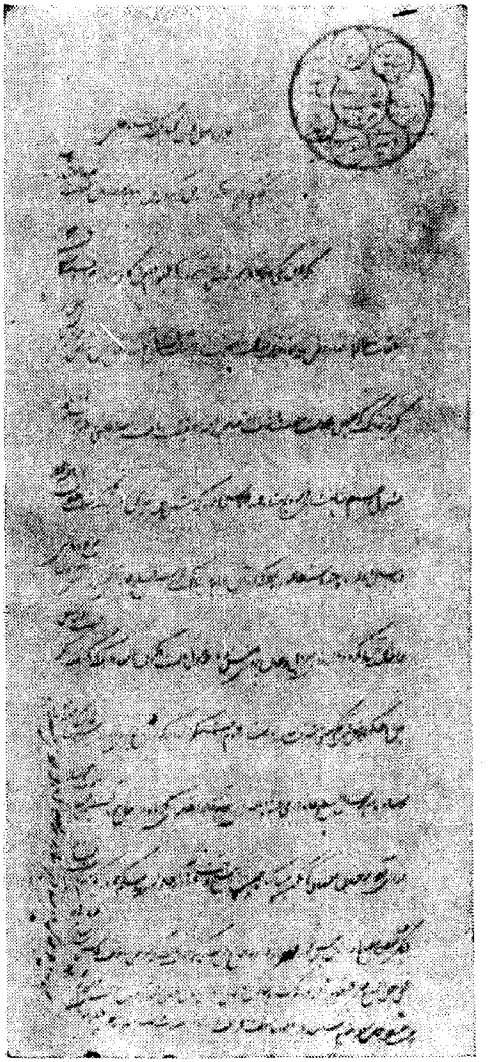

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## अकबर बादशाह का फरमान आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी को

[ नम्बर 5 ]

सूबे मुलतान के बड़े-बड़े हाकिम, जागीरदार, करोडी और सब मुत्सद्दी (कर्मचारी) जान लें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यों और जीव-जन्तुओं को सुख मिले जिससे सब लोग अमन चैन में रहकर परमात्मा की आराधना में लगे रहें। इससे पहले शुभचिन्तक तपस्वी जयचन्द्र (जिनचन्द्र) सूरि खरतर (गच्छ) हमारी सेवा में रहता था। जब उसकी भगवदभक्ती प्रकट हुई तब हमने उसको अपनी बड़ी बादशाही की मेहरबानियों में मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि इससे पहले हीरविजयसूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल बारह दिन मांगे थे, जिनमें बादशाही मुल्कों में कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवों को कष्ट न दें उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अब मैं भी आशा करता हूं कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाये। इसलिए हमने अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ़ शुक्ल पक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल में कोई जीव मारा न जाये और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भांति-भांति के पदार्थ उपजाये हैं तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे। परन्तु कुछ हेतुओं से अगले बुद्धिमानों ने वैसी तजवीज की है इन दिनों आचार्य जिनसिंह उर्फ मानसिंह ने अर्ज कराई कि पहले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है इसलिए हमने उस फर्मान के अनुसार नया फर्मान इनायत किया है। चाहिये कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाये। इस विषय में बहुत बड़ी कोशिश और ताकीदी समझकर इसके नियमों में उलट फेर न होने दें। तारीख 31 खुरदाद इलाही सन् 49।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## विवेकहर्ष, परमानन्द, महानन्द उदयहर्ष को जहांगीर बादशाह का फरमान

[ नम्बर 6 ]

अल्ला हो अकबर

( ता० 26 माह फर्वरदीन, सन् 5 के करार मुजीब के फरमान की )

तमाम रक्षित राज्यों के बड़े हाकिमों, बड़े दीवानों, दीवानी, के बड़े-बड़े काम करने वालों, राज्य कारोबार का बन्दोबस्त करने वालों, जागीरदारों और करोड़ियों को जानना चाहिये कि दुनियां को जीतने के अभिप्राय के साथ हमारी न्यायी इच्छा ईश्वर को खुश करने में लगी हुई है और हमारे अभिप्राय को पूरा हेतु तमाम दुनियां को जिसे ईश्वर ने बनाया है—खुश करने की तरह रजू हो रहा है। उसमें भी खास करके पवित्र विचार वालों और मोक्ष धर्म वालों को जिनका ध्येय सत्य की शोध और परमेश्वर की प्राप्ति करना है—प्रसन्न करने की ओर हम विशेष ध्यान देते हैं। इसलिए इस समय विवेकहर्ष, परमानन्द, उदयहर्ष, तपा यति (तपागच्छ के साधू) विजयसेनसूरि, विजयदेवसूरि और नन्दि-विजयजी, जिनको "खुशफहम" का खिताब है के शिष्य है, हमारे दरबार में थे। उन्होंने दरखास्त और विनती की कि,—"यदि सारे सुरक्षित राज्य में हमारे पवित्र बारह दिन जो भादों के पर्यूषण के दिन हैं तक हिंसा करने के स्थानों में हिंसा बन्द कराई जायेगी तो इससे हम सम्मानित होंगे, और अनेक जीव आपके उच्च और पवित्र हुक्म से बच जायेंगे इसका उत्तम फल आपको और आपके मुबारकि राज्य को मिलेगा।

हमने शाही रहेम-नजर हरेक धर्म तथा जाति के कामों में उत्साह दिलाने बल्कि प्रत्येक प्राणी को सुखी कर दुनिया का माना हुआ और मानने लायक जहांगीरी हुक्म हुआ कि उल्लखित बारह दिनों में, प्रतिवर्ष हिंसा करने के स्थानों में, समस्त सुरक्षित राज्य में प्राणी हिंसा न करनी चाहिये और न करने की तैयारी ही करनी चाहिये इसके सम्बन्ध में हर साल नया हुक्म नहीं मांगना चाहिये। इस हुक्म के मुताबिक चलना चाहिये। फरमान के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिये इसको अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

नम्रतिनम्र, अबुलखैर के लिखने से और महम्मदसैयद की सौंध से।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## विवेकहर्ष, परमानन्द, महानन्द, उदयहर्ष को जहांगीर बादशाह का फरमान

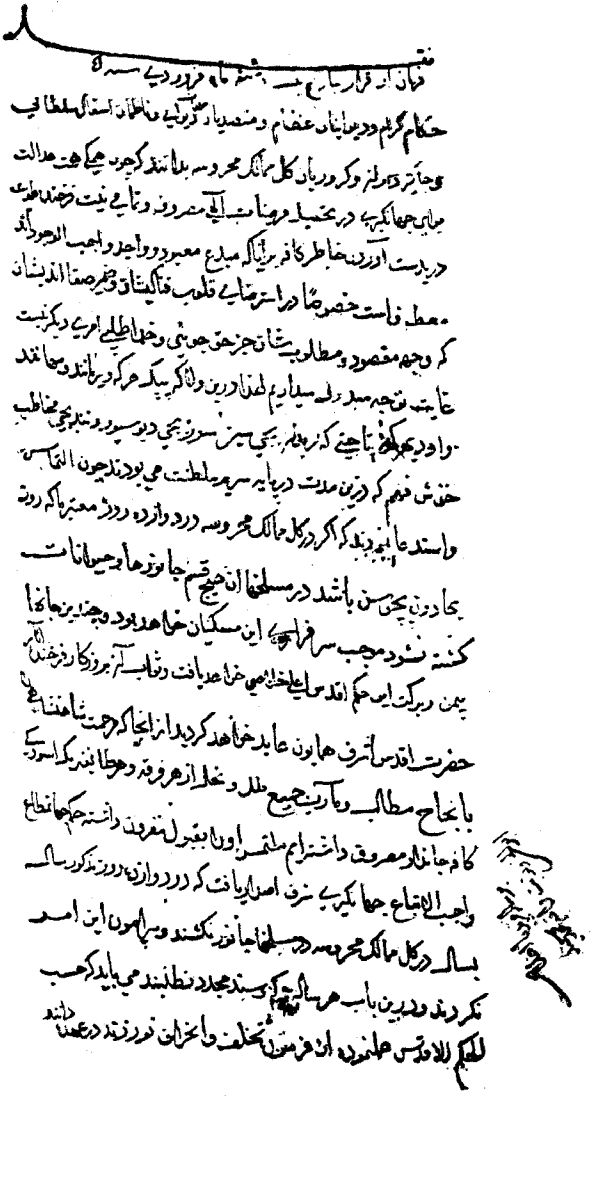

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# उपाध्याय भानुचन्द्र एवं सिद्धिचन्द्रजी को जहांगीर बादशाह द्वारा दिया गया फरमान

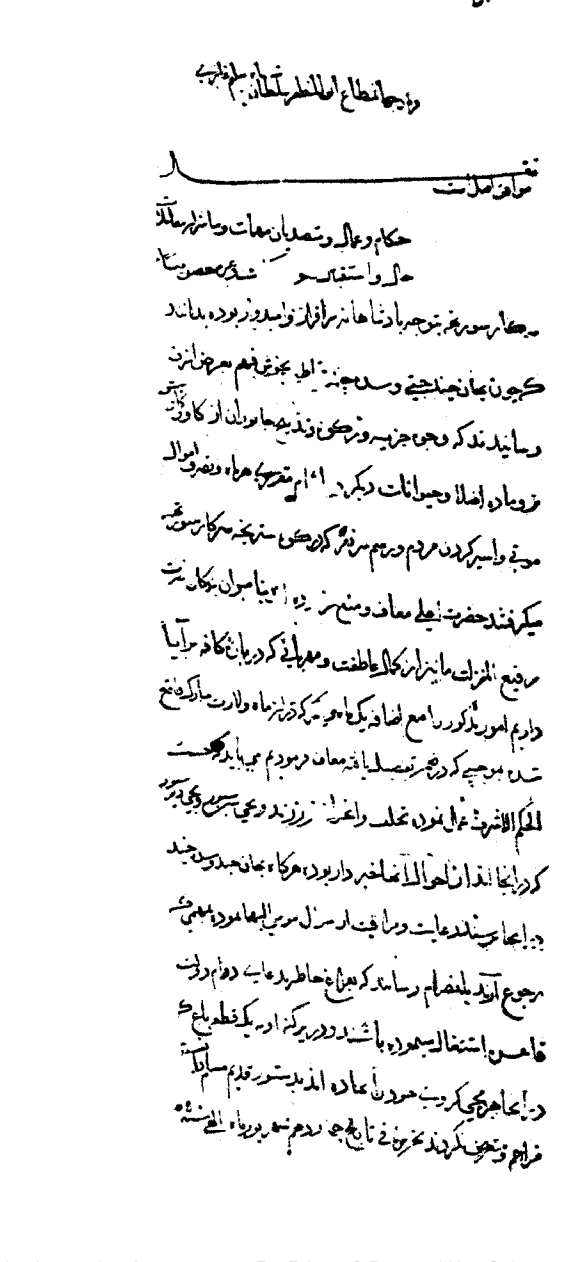

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## भानुचन्द्र एवं सिद्धिचन्द्रजी को जहांगीर का फरमान

[ नम्बर 7 ]

बड़े कामों से सम्बन्ध रखने वाली, आज्ञा देने वालों, उनको अमल में लाने वालों, उनके अहलकारों तथा वर्तमान और भविष्य के मुआमलतदारों आदि और मुख्यतया सोरठ सरकार को शाही सम्मान प्राप्त करके तथा आशा रखके मालूम हो कि भानुचन्द्र यति और "खुशफहम" का खिताब वाले सिद्धिचन्द्र यति ने हमसे प्रार्थना कि "जजिया कर, गाय, बैल, भैंस और भैंसे की हिंसा प्रत्येक महीने के नियत दिनों हिंसा, मरे हुए लोगों के माल पर कब्जा करना, लोगों को कैद करना और सोरठ सरकार शत्रुञ्य तीर्थ पर लोगों से जो महसूल लेती है वह महसूल इन सारी बातों की आला अजरत (अकबर बादशाह ने) मनाई और माफ की है। इससे हमने भी हरेक आदमी पर हमारी मेहरबानी है इससे एक दूसरा महीना जिसके अन्त में हमारा जैन्म हुआ है और शामिलकर, निम्नलिखित विगत के अनुसार माफी की है और हमारे श्रेष्ठ हुक्म के अनुसार अमल करना तथा विजय-देवसूरि और विजयसेनसूरि के जो वहां गुजरात में है हाल की खबरदारी करना और भानुचन्द्र तथा सिद्धिचन्द्र जब वहां आ पहुंचे तब उनकी सार सम्भालकर, वे जो कुछ काम कहें उसे पूरा कर देना, कि जिससे वे जीत करने वाले राज्य को हमेशा (कायम) रखने की दुआ करने में दत्तचित्र रहें। और "ऊना" परगने में एक बाड़ी है उसमें उन्होंने अपने गुरू हीरजी (हीरविजयसूरि) की चरण पादुका स्थापित की है। उसे पुराने रिवाज के अनुसार "कर" आदि से मुक्त समझ, उसके सम्बन्ध में कोई विघ्न नहीं डालना।

लिखा (गया) तारीख 14 शहेरीवर महीना, सन् इलाही 55

### पेटा खुलासा

फरवरदीन महीना, वे दिन कि, जिनमें सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता है। ईद के दिन, मेहर के दिन, प्रत्येक महीने के रविवार, वे दिन कि जो सूफियाना, के दो दिनों के बीच में आते हैं, रजब महीने का सोमवार, अकबर बादशाह के जन्म का महीना जो आबान महीना कहलाता है। प्रत्येक शमशी महीना का पहला दिन, जिसका नाम ओरमज है। बारह बरकत वाले दिन कि जो श्रावण महीने के अन्तिम छः दिन और भादो के पहले छः दिन हैं।

अल्ला हो अकबर.....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## चन्दू संघवी को जहांगीर बादशाह का फरमान

[ नम्बर 8 ]

### अल्ला हो अकबर

हमेशा रहने वाला यह आलीशान फरमान तारीख 17 रजबुलमुरज्जब हि० सम्वत् 1824 का है।

अब इस फरमान आलीशान को प्रकट और प्रसिद्ध करने का महत्व का प्रसंग प्राप्त हुआ। हुक्म दिया जाता है कि—मापी हुई दस बीघे जमीन खम्भात के समीप चौरासी परगने के महम्मदपुर (अकबरपुर) गांव में निम्नलिखित नियमानुसार चन्दू संघवी को "मदद-ई-मुआश" नाकी जागीर खरीफ के प्रारम्भ नौशकाने ईल (जुलाई) महीने से हमेशा के लिए दी जाय, जिससे उसकी आमदनी का उपयोग हर एक फसल और हर एक साल में वह अपने खर्च के लिए करे और असीम बादशाही अखडित रहे इसके लिए वह प्रार्थना करता रहे।

वर्तमान के एवं अब होने वाले अधिकारियों, पटवारियों, जागीरदारों तथा माल के ठेकेदारों को चाहिये कि वे इस पवित्र एवं ऊंचे हुक्म को हमेशा बजा लाने का प्रयत्न करें। ऊपर लिखे हुए जमीन के टुकड़े को नापकर और उसकी मर्यादा बांधकर वह जमीन चन्दू संघवी को दे दी जाये। इसमें कुछ भी फेरफार या परिवर्तन न किया जाये। एवं उसे तकलीफ भी न दी जाये। जैसे पट्टा बनाने का खर्च, जमीन कब्जे में देने का खर्च, रजिस्टरी का खर्च पटवार, फंड, तहसीलदार और दारोगा खर्च, बेगार, शिकार और गांव का खर्च, नम्बरदारी का खर्च, जेलदारी की प्रति सैकड़ा दो रुपये फीस, कानूनगो की फीस, किसी खास कार्य के लिए साधारण वार्षिक खर्च, खेती करने के समय की फीस और इसी समय सभी प्रकार की समस्त दीवानी सुल्तानी तकलीफों से वह हमेशा के लिए मुक्त किया जाता है। इसके लिए प्रतिवर्ष नवीन हुक्म और सूचना की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ हुक्म दिया गया है। वह तोड़ा न जाये। सभी इसको अपना सरकारी कार्य समझे।

तारीख 17 अस्फनदारमुझ इलाही महीना, 10 वां वर्ष

### दूसरी तरफ का अनुवाद

ता० 21, अमरदाद, इलाही 10 वां वर्ष, बराबर रजबुलमुरज्जब हिज सम्वत् 1024 की 17 वीं तारीख, गुरूवार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## चन्दू संघवी को जहांगीर बादशाह का फरमान (A)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## चंदू संघवी को जहाँगीर बादशाह का फरमान (B)

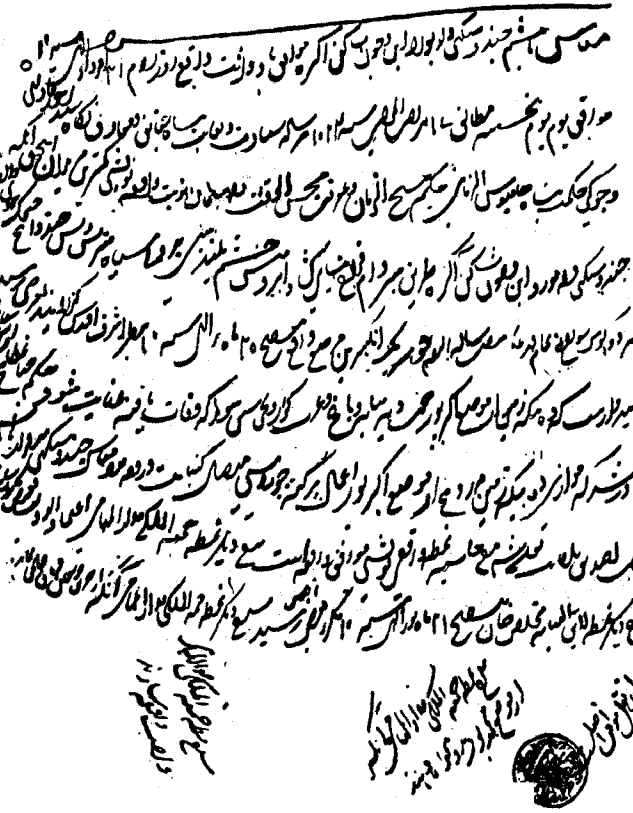

पूर्णता और उत्तमता के आधार रूप, सच्चे और ज्ञानी ऐसे सैयद अहमद कादरी के भेजने से बुद्धिशाली और वर्तमान समय के जालीनूस (धन्तन्तरी वैद्य) एवं आधुनिक ईसा जैसे जोगी के अनुमोदन से वर्तमान समय के परोपकारी राजा सुबहान के दिये हुए परिचय से और सबसे नम्र शिष्यों में से एक तथा नोंध करने वाले इसहाक के लिखने से चन्दू संघवी, पितामोरू (?) पितामह वजीवन (बरजीवन) आगरे का रहने वाला समजवम (सेवड़ों को मानने वाला) जिसका कपाल चौड़ा, भ्रमर चौड़ी, भेड़िये के जैसे नेत्र, काला रंग मुड़ी हुई दाड़ी मुंह के ऊपर चेचक के बहुत से दाग दोनों कानों में जगह-जगह छेद, मध्यम ऊंचाई और जिसकी करीब 60 वर्ष की उम्र है, उसने बादशाह की ऊंची दृष्टि को एक रत्न से जड़ी हुई अंगूठी 10 वें वर्ष के इलाही महीने की 20 तारीख के दिन भेंट की और अर्ज की कि अकबरपुर गांव में 10 बीघा जमीन, उसको सहत गुरू विजयसेनसूरि के मन्दिर, बाग, मेला और सम्मान की यादगार के लिए दी जाये। इसलिये सूर्य की किरणों की तरह चमकने वाला और सब दुनियां को मानने योग्य हुक्म हुआ कि चन्दू संघवी को गांव अकबरपुर, परगना चौरासी में जो खम्भात के समीप हैं। दस बीघे जमीन का टुकड़ा "मदद-इ-मुआश" नाम की जागीर स्वरूप दिया जाये। हुक्म के अनुसार जांच करके लिखा गया। मार्जिन में लिखा है कि "लिखने वाला सच्चा है"।

जुमलुतुलमुल्क, मदारूलमहाम एतमादुद्दौला का हुक्म—"दूसरी बार अर्ज की जाये।"

मुखलीसखान ने जो मेहरबानी करने योग्य है—बादशाह के सामने दूसरी बार अर्ज पेश की (पुनः यह पत्र पेश किया जाता है) तारीख 21 माह यूर, इलाही सम्वत् 10

जुमलुतुलमुल्क, मदारूलमहाम का हुक्म—"खरीफ के प्रारम्भ मौशकामे ईल से हुक्म लिखा जाये।"

जुमलुतुलमुल्को मदारूल,
महामी का हुक्म
"आरती (बाजिब) बनाई जाये"

अन्तिम हुक्म
जुमलुतुम मदारूल महामका
यह है कि—
"मौजा मुहम्मदपुर से इस
(चन्दू संघवी) को माफी दी
जाय।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# शाहजहां का सेठ शान्तिदास को फरमान

परमेश्वर बड़ा है

अबुल मुजफ्फर मुहम्मद
शाहबुद्दीन बादशाह गाजी
किराने सानी शाहजहां
बादशाह गाजी का फरमान

मुहर के अनुसार वंशावली
अबुल मुजफ्फर मुहम्मद
शाहबुद्दीन शाहजहां बादशाह
गाजी किराने सानी सने
जहांगीर बादशाह
अकबर बादशाह
हुमायूं बादशाह
बाबर बादशाह
उमरशेख मिर्जा
सुल्तान अबूसयूयद
सुल्तान मुहम्मद मिर्जा
मीरांशाह
अमीर तैमूर किरान

हुजूर में अर्ज हुआ है कि चिन्तामण, शत्रुन्ज्य, शंखेश्वर, केसरियानाथ का मन्दिर जो असल में जुलूस मुबारक (गद्दी में बैठने) से पहले है तथा अहमदाबाद में तीन नया, दूसरा चार खम्भात में, एक-एक सूरत तथा राधनपुर में शान्तिदास के अधिकार में है हुजूर आली का हुक्म हुआ है कि उन मकानों तथा जगहों में कोई ठहरे नहीं, आसपास जाये नहीं कारण कि उनका बख्शीश में दिया गया तथा सेवड़ाओं के जो ग्रन्थ भण्डार तथा सरोकन मुंह से देखकर जैसा भी रीति से पढ़े गुजरात जिला में रहे, आमने-सामने झगड़ा न करें, आदेशों के विरुद्ध न जायें और वो लोग बादशाह कायम रहे ऐसी आर्शीवाद मांगते रहे अब जरूरी हैं कि वहां के अमलदारों, को इस तरह समझाकर कोई भी तकरार न करें।

लिखा न० 21 आजूर माह इलाही सन् 2 जुलूस (गद्दी पर बैठने का सन्)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## शाहजहां का सेठ शान्तिदास को फरमान

अबुल मुहफ्फर मुहम्मद शाहबुद्दीन शाहजहां बादशाह-गाजी किराने सानी

अबुल मुजफ्फर मुहम्मदशाह बुद्दीन शाहजहां बादशाह गाजी किराने सानी

सानी का फरमान

नेकी से भरा हुआ बड़ा हुकुम हुआ है कि पालीताणा, सोरठ (सौराष्ट्र) सरकार के कब्जे का सूबा अहमदाबाद में लगता है उसे शत्रुन्जय कहते हैं वह बादशाह जादा मुहम्मद मुराद बख्श (नेकी से भरा, दौलत की आंख का ठण्डक, माथे की बड़ी रोशनाई, राज्य की फुलवाड़ी का उगता हुआ पौधा, नया फल, आंख का नूर, बड़े दर्जे का पेड़ का फल, उच्च कुल का) को जागीर में दिया है उसकी जमा बन्दी दो लाख दाम की है। वो तखाकबि इतनी फसल खरीफ के शुरू से झवेरी शांतिदास को इनाम में अल्तमगा (बख्शीश) के तौर पर थे फरमान लिखकर दिया गया है जिसे कुल के वंशजों हाल तथा आइन्दा हमारे बड़े दर्जे का प्रधानों दीवानी खाता के मुत्सद्दियों, हाकिमों, आमीलों, जागीरदारों तथा कटोरिये इस पाक तथा बड़े हुक्म को चालू जारी रखने की कोशिश कर मजबूर, मनुष्य के पेढ़ी दर पेढ़ी तथा कुटुम्बियों के कब्जे में रहने देना और परगना ऊपर के हरेक तरह के कर, हासले बजे, तथा खर्च माप मिलकर दिया है जानना और हर वर्ष इस विषय में कोई भी नया हुक्म अथवा सनद मांगना नहीं और इस हुक्म से मुकरना भी नहीं।

ता० 19 माह रमजान, सन् 31 जुलूसी 1067 ता० 18 माह शाबान शुक्रवार सन् 31 जुलूसी 1067 हिजरी ता० 12 खुरदाद माह इलाही सन् 21, शम्सी के रोज काम चला उसका वर्णन, नबाव शाहजादा मुहम्मद दारा शिकोह के दफ्तर में तथा ऊंचे मुहम्मद काजम ने लिखा है जो दुनियां को कब्जे में करने वाले बादशाह का हुक्म हुआ है कि पालीताणा सरकार सोरठ के कब्जे का सूबा अहमदाबाद में लगता है उसे शत्रुन्जय कहते हैं उसे बादशाह जादा मुहम्मद मुरादबख्श को जागीर में दिया है जिसकी जमा बन्दी दो लाख दाम की है वो तखाकबिइलनो फसल खरीफ के शुरू से झवेरी शांतिदास को अल्तमगा (बख्शीश) के तौर पर इनाम में दिया है। दूसरी यदि जो ऊंचे अल्काब का नबाव शाहजादा मुहम्मद मुराद बख्श के दफ्फर में ता० 17 माह शाबान सन् 31 जुलूसी रोज मुंशी शेख मीरक के मार्फत दखल हुआ हैं इस तरह ये लिखने में आया है। पाक अल्काब के नबाव ऊंचे दर्जे का बादशाह जादा मुहम्मददारा शिकोह के दफ्तर में दाखिल हुआ। मुन्शी मुहम्मद काजम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट 10

## पालीताना में आदीश्वर भगवान के मन्दिर का शिलालेख

ॐ ॥ ॐ नमः ॥

श्रेयस्वी प्रथमः प्रभुः प्रथिमभाग् नैपुण्यपुण्यात्मना—
मस्तु स्वस्तिकरः सुखाब्धिकमरः श्री आदिदेवः स वः ।
पद्मोल्लासकरः करैरिव रविर्व्योम्नि क्रमांकभोरुह—
न्यासैर्यस्तिलकीबभूव भगवान् शत्रुंञ्जयेऽनेशकशः (1)
श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिनीवल्लभः
पायाद्वः परमप्रभावभवनं श्री वर्धमानः प्रभुः ।
उत्पत्तिस्थिति (सं) हृतिप्रकृतिवाग् चदगोर्जगत्पावनी
स्ववर्षापीव महाव्रतिप्रणयभूरासीद् रसोल्लसिनी (2)
आसीद्वासववृन्दवन्दितपदद्वन्द्वः पन्द सम्पदां
तत्पट्टांबुन्धिचन्द्रमा गणधरः श्रीमान् सुधर्म्माभिधः ।
यस्यौदार्ययुता प्रहृष्टसुमना अद्यापि विद्यावती
धत्तें संततिरून्नतिं भगवतो वीरप्रभोर्गौरिव (3)
श्रीसुस्थितः सुप्रतिबुद्ध एतौ
सूरी अभूतां तदनुक्रमेण ।
याभ्यां गणोऽभूदिह कोटिकाह्व—
श्चंद्रार्यमभ्यामिव सुप्रकाशः 4
तत्राभूदर्जितणां वन्द्यः श्रीवज्रर्षिगणाधिपः ।
मूलं श्रीवज्रशाखाया गंगाया हिमवानिव 5
तत्पट्टाबंर दिनमणिरूदितः श्रीवज्रसेनगुरूरासीत् ।
नागेन्द्र-चन्द्र-निर्वृति-विद्याधर-संज्ञकाश्च तच्छिष्याः
स्वस्वनामसमानानि येभ्यश्चत्वारि जज्ञिरे ।
कुलानि काममेतेषु कुलं चान्द्रं तु दिदयुते
भास्करा इव तिमिरं हरन्तः ख्यातिभाजनम् :
भूरयः सूरयस्तत्र जज्ञिरे जगतां मताः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बभूवुः क्रमतस्तत्र श्रीजगच्चन्द्रसूरयः ।
यैस्तपाबिरूदं लेभे बाणिसिद्धचकं 1285 वत्सरे (9)

क्रमेणास्मिन गणे हेमविमलाः सूरयोऽभवन् ।
तत्पट्टे सूरयों ऽभूवन्नांदविमलाभिधाः (10)

साध्वांचारविधिःपथः शिलितः सम्यक्श्रियां धाम यै—
रूद्देध्र स्तनसिद्धियाकसुधारोचिर्निभे 1582 नेहसि ।
जमूतौरिव यैर्जगत्पुनरिद तापं हरद्भिर्भृशं
सश्रीकं विदधे गवां शुचितमैः स्तोमैः. रसोल्लासिभिः (11)

पद्मश्रयैरलमलंक्रियते स्म तेषां
प्रीणन्मनांसि जगतां कमलोदयेन ।
पट्टः प्रवाह इव निर्ज्वरनिज्झुरिण्याः
शुद्धात्मभिर्विजयदानमुनीशहंसैः (12)

सौभाग्यं हरिसर्व(व) वंहरणं रूपं च रम्भपति—
श्रीजैत्रं शतपत्रमित्रमहसां चोरं प्रतापं पुनः ।
येषां वक्षिय सनातनं मधुरिपुस्वःस्वामिधर्म्माशिबो
जाताः कामपत्रपाभरभृतो गोपत्वमाप्तास्यः (13)

तत्पट्टः प्रकटः प्रकामकलितत्तोद्योतस्तथा सौधव (त्)
सस्नेहैयं (ति) राजहीरविजयसनेहप्रियैर्निर्म्ममे ।
सौभाग्यं महसां भरेण महतामत्यर्थमुल्लासिनां
बिभ्राणः स यथाजनिष्ट सुधशां कामप्रमोदास्पदम् (14)

देशद् गूर्जरतोऽथ सूरिवृषभा आकारिताः सादरं
श्रीमतसाहितअकब्बरेण विषयं मेवातसंज्ञा शुभम्
शा....................जपाणयोवतमसं सर्वं हरन्तो गवां
स्तोमैः सूत्रिताविश्वविष्वकमलोल्लासैर्नभोर्का इव (15)

चक्रु फतेपुरम....................(नं) भौम—
दृग्युग्मकोमकुलमाप्तसुखं सृजंतः
अब्देकपावकनृपप्रमिते 1639 स्वगोभिः ।
सोल्ला........................बुजकामननम् ये (16)

दामेवाखिलभूपमूर्द्धसु निजमाज्ञा सदा धारयन्य् ।
श्रीमान् शाहिअकब्बरो नरवरो (देशेष्व) शेषेष्वपि ।
षण्मासाभ्यदानपुष्टहोद्घोषानधध्वंसितः ।
कामं कारियति स्म हृष्टहृदयो यद्वाक्कारंजितः (17)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्गुपदेशवशेन मुद बधन्
निखिलमण्डवासिजने निजे ।
मृतधनं च करं च सुजीजिआ—
भिधमकब्बरभूपतिरत्यजत् 18)

यद्वाचा कतकाभया विमलितस्यांतांबुपूरः कृपा—
पूर्णः शाहिरन्वियनीतिवनिताङ्को (डिकृतात्मा) त्यजः
शुल्कं त्य (कम) शक्यमन्यधरणीराजा जनप्रीतये ।
तद्वाशीडजपुजपूरूषपशूश्चामूमुद्गरिशः (19)

यद्वांचा निचयैमुधाकृतसुधास्तवा (वैर) मंदैःकृता ।
ल्हादःश्रीमदकब्बरः क्षितिपतिःसंतुष्टिपुष्टाशयः ।
त्यक्त्वा तत्करमर्थसार्थमतुलं येषां मनःप्रीतये
जैनेभ्यःप्रददौ च तीर्थ तिलकं शत्रुंजयोर्बीधरम् (20)

यद्वाग्निभमुध्दतश्चकार करूणास्फूर्ज्जन्मनाः पौस्तकं
भाण्डागारमपारवाङ्मयमं वेश्मेव वाग्दैवतम् ।
यतसंवेगभरेण भावितमतिः शाहिः पुनःप्रत्यहं
पूतात्मा बहु मन्यते भगवतो सदर्शनो दर्शनम् 21)

यद्वाचा तरणित्विषेव मलितोल्लसं मनःपंकजं
विभ्रच्छाहिअवबरो व्यसनश्रीपार्श्वजिनो चन्द्रमाः ।
जज्ञे श्राद्धजनोचितैश्च सुकृतैः सर्वेषु देशेष्वपि
विख्यातोऽडर्हतभक्तिभावितमतिः श्रीश्रेणिकक्ष्मापवत् (22)

लुंपाकानिपमेघजीश्रषिमुखा हित्वा मुमत्याग्रहं
भेजुर्यच्चरणद्वयीमनुदिनं भृंगा इवांभोजिनीम् ।
उल्लासं गमिता यदीयवचनैत्रैं राग्यरंगोन्मुखे—
उजलिताः स्वस्वमतं विहाय बहवो कोकास्तपासश्रकः (23)

आसीच्चैत्यविधापनादिसुकृतक्षेत्रेषु वित्तव्ययो ।
भूयान यद्वचनेन गुज्जंरधरामुख्येषु देशेष्वलम् ।
यात्रां गूज्जरमालवा दिकमहादेशोद्भवैभूरिभिः ।
संघैः सार्द्धमृषीश्वरा विदधिरे शत्रुंजये ये गिरो (24)

तत्पट्टमब्धिमिव रम्यतमं सृजन्तः
स्तोमिंगवां सकलसंतमसं हरंतः ।
कामोल्लसत्कुवलयप्रणया यर्यति ।
स्फूर्जत्कला विजयसेनमुनींद्रचन्द्रा (25)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्प्रतापस्य महात्म्य वर्णयते किमतः परम् ।
अस्वप्राश्नक्रिरे येन जीवं (तोड) पि हि वादिनः (26)

सौभाग्यं विषमायुधात्कमलिनीकांताच्च तेजस्विना-
मैश्वर्य गिरिजापते कुमुदिनीकांतात्कलामालिनाम् ।
माहात्म्यं धरणीधरान्मखभुजां गांभीर्यमंभोनिधे—
रादयांबुजभूः प्रभूः प्रविदधे यन्मूर्तिमेतन्मयीम् (27)

ये च श्रीमदकब्बरेण विनयादाकारिताः सादरं
श्रीमल्लाभपुरं पुरंदरपुरं व्यक्तिं सुपर्वोत्करैः ।
भूयोभिर्वतिभिर्बुधैः परिवृतो वेमादलंचक्रिरे ।
सामोदं सरसं सरोरूहवनं लीलामराला इव (28)

अर्हंतं परमेश्वरत्वकलितं संस्थाप्य विश्वोत्तमं
साक्षात्साहितअकब्बरस्य सदसि स्तोमैर्गवामुद्यतैः ।
यैः संमीलितलोचना दिधिरे प्रत्यक्षशूरैः श्रिया
त्वादोन्मादभृतो द्विजातिपतयो भट्टा निशाटा इव (29)

श्रीमत्साहितअक्कबरस्य सदसि प्रोत्सर्पित्यभिमूरिभि—
र्वादैर्नादिवरान विजीव्य समदान्सिहैर्दिद्ध्रानिव
सर्वज्ञाशयतुष्टिहेतुरनघो दिश्युक्तरस्यां स्फुरन् ।
यैः कैलास इवोज्जवलो निजयशः स्तम्भो निचख्ने महान् (30)

वत्तासाहसधीरहीरविजयसूरिराजां पुरा
यच्छीशाहिअकब्बरेण धरणीशक्रेण तत्प्रीतये ।
तच्चक्रेऽखिलमप्यबालमतिना यत्साज्जगत्साक्षिकं
तत्पत्रं फुरमाणसंज्ञसनघं सर्वादिशो व्यानशे (31)

किं च गोष्टषभकासरकांताकासना यमगृहं न हि नेयाः ।
मोच्यमेव मृतवित्तमशेषं बन्दिनोऽपि हि न च ग्रहणीयाः (32)

यत्कलासलिलवाहविलासप्रीतचित्तरूणाजनतुष्टयै ।
स्वीकृतं स्वयमकब्बर धात्रीस्वामिना सकलवेतदपीहः (33)

चोलीवेगमनन्दनेन वसुधाधीशेर सम्मानिता
गुर्व्वी गूर्ज्जरमेदिनीमनुदिनं स्वर्लोकविवेकिनीम् ।
सद्वृत्ता महसां भरेण सुभगा गाढं गुणोल्लसिनो
ये हारा इव कन्ठमम्बुजदृशां कुर्वन्ति शोभास्पदम् (34)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतश्च :—

आभूरान्वय (प) ज्ञपज्ञविया ओकेशवंशेऽभव

च्छ्रेष्ठी श्री शिवराज इत्यभिधया सौवर्णिकः पुण्यधीः ।

तत्पुत्राडिजम सीधरश्च तनयस्तस्याभवत्पर्वतः

(का) लाहोऽजनितत्सुतश्च तनुजस्तस्यापि साधाभिधः (35)

तस्याभूद्वछियाभिधश्च तनुजः ख्यातो रजाईभव—

स्तस्याभूच्च सुहासिणी (ति) गृहिणी पद्मेव पद्मापतेः

इन्द्राणीसुरराजयोरिव जयः पुत्रस्तयोरयभव—

त्तेजः पाल इतिप्रहृष्टसुमनाः पित्रोर्मनः प्रीतिकृत् (36)

(क) मस्येव रतिर्हरिव रमा गौरीव गौरीपते—

रासीत्तेजल दे इति प्रियतमा तस्याकृतिः (……………)

भोगश्रीसुभागं गुरो प्रणयिनी शश्वत्सुपर्वादरो ।

पौलोमीत्रिदशेश्वराविद सुखं तौ दम्पती भेजतु (37)

वैराग्यवारिनिधिपूर्णनिशाकाराणां

तेषां च हीरविजयव्रतिसिन्धुराणाम् ।

सौभाग्य (भा) ग्यपरभागविभासुराणां ।

सौभाग्य (तेषां) पुनर्विजयसेनमुनीश्वराणाम (38)

वाग्भिर्मुधाकृतसुधाभिरुदंचिचेताः

श्राद्धः स शोभममा भजति स्म भावम्

श्रीसं(धम) स्कितधनदानजिद्रव्यैरयो—

द्धारादिकर्म्मसु भृशं सुकृतिप्रियेषु (39)

( विशेषकं )

अहैः प्रशस्तेऽिह सुपार्श्वभर्तु—

(र) नन्तभर्तुश्च शुभां प्रतिष्ठाम

सोऽचीकरत्षड्युगभूप 1646 वर्षे

हर्षेण सौवर्णिकतेजपालः (40)

आदावार्षभिरत्र तिर्थतिलक शत्रुं (ज) येऽचीकर—

श्चैत्यं शैत्यकरं दृशोर्मणिगणस्वर्णादिभिर्भासुरम् ।

अत्रान्येपि भुजार्जितां फलवतीमुच्चैः सृजंतः श्रीयं

(प्रा) सादं तदनुक्रमेण बहवश्चाकारयन् भूभुजः (42)

तीर्थेऽत्र साधुकरमाभिधो धनी सिद्धिसिद्धतिथ 1588 संख्ये चैत्यम (चो)
करदुक्ते रानन्दविमलामुनिराजाम् (43)
तं वीक्ष्य जीर्णं भगवाद्विहारं
स तैजपालः स्वहृदीति दध्यो।
भावी कदा सो ऽवसरो वरीयान्
यत्रा ऽत्र चैत्यं भविता नवीनम् (44)
अन्येद्युः स्वगुरूपदेशशरदा कामं वलक्षीकृतं—
स्वांताभा च वणिग् व (र) पुरवरे श्रीस्तंभतीर्थे वसन्
उद्धारं कर्तुमना अजायततमा साफल्यमिच्छन्श्रियः (45)
अत्र स्याति सुकृतं कृतं तनुमतां श्रेयः श्रियां कारणं
यत्वैवं जिनपूर्वजव्रजमहानन्दप्रमोदाप्तये।
तीर्थे श्रीविमलाचले ऽतिविमले मोलेऽर्हतो मन्दिरे
जीर्णोद्धारमकारयत्स सुकृती कुन्तीतनूजन्मवत् (46)
शृणेण भिन्नगगनांगणमेत दुच्चे—
श्चैत्यं चकास्ति शिखरस्थिति हेमकुंभम्।
हस्तैषु 52 हस्तमितमुच्चमुपैति नाक—
लक्ष्मीं विजेतुमिव काममखर्वगर्वाम् (47)
यत्रार्हदोकसि जितागरकुंभिकुंभाः
कुंभा विभान्ति शरवेदकरेंदु 1245 संख्याः।
किं सेवितुं प्रभुयमुः प्रचुरप्रताप—
पूरैर्जिता दिनकराः कृतनैकरूपाः (48)
उन्मूलितप्रमदभूमिरुहानशेषान्
विश्वेषु विघ्नकारिणो युगपन्निहंतुम्
सज्जाः स्म इत्यमभिधातुमिवेंदुनेत्रा (21) (49)
सिंहा विभांत्युगता जिनधाम्नि यत्र
योगिन्यो यत्र शोभंते यतस्त्रों जिनवेश्मनि।
निषेवितुमिवायाताः प्रतापैरागता दिशः (50)
राजतेऽत्र दिशां पाला (...............) यत्राऽर्हदालये।
मूर्तिमंत किमायाता धर्म्मास्संयमिनाममी (51)
द्वासप्ततिः श्रियवंति जिनेंद्रचन्द्र—
बिंबानि देवकुलिकासु च तावतीषु।
द्वासप्ततेः श्रितजनालिकलालतानं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं कुडमला परिमलंभुवनं भरतः (5)
आजंतो यत्र चत्वारो गवाक्षा जिनवेश्मनि ।
विरंचेरिव वक्त्राणि विश्वाकारणहे तवे (53)
यत्र चैत्ये विराजंते चत्वारश्च तपोधनाः
अमी धर्म्माः किमायाताः प्रभुपास्त्यै वपुर्भृत (54)
पंचालिकाः श्रियमयंति जिनेंद्रधाम्नि
द्वात्रिंशदिंद्ररमणीभरजैत्ररूपाः ।
ज्ञात्वा पतीनिह जिने किमु लक्षणक्ष्मा—
राजां प्रिया निजनिजेशनिभालनोत्काः (55)
द्वात्रिंशदुत्तमतमानि च तोरणानि
राजंति यत्रजिनधाम्नि मनोहराणि ।
किं तीर्थकृद्दशनलक्ष्ममृगेक्षणाना—
मन्दोलनानि सरलानि सुखासनानि (56)
गुजाश्चतुर्विंशतिरद्रितुंगा
विभांति शस्ता जिनधाम्नि यत्र ।
देवाश्चतुर्विंशतिरीशभक्त्यै
किमागताः कुज्जररूपभाजः (57)
स्तंभाश्चतुस्सप्ततिरद्विराजो—
त्तुंगा विभांतीह जिनेंद्रचैत्ये ।
दिशामडधीशैः सह सर्व्व इन्द्राः
किमाप्तभक्त्यै समुतेयिवांसः (58)
रम्यं नन्थपयोधिभूपति 1649 मिते वर्षे मुखोत्कर्षकृत्
साहाय्याद् जसुठकुरस्य सुकुताराभैकपाथोमुचः ।
प्रसादं वछिआसुतेन सुधिया शत्रुन्जयकारितं
दृष्टवाडष्टापदतीर्थचैत्यतुलितं केषां न चित्ते रतिः (59)
चैत्यं चतुर्णामिव धर्म्ममोदिनी —
भुजां गृहं प्रीणिताविश्रवविष्पटम् ।
शत्रुंजयोर्व्वीभृति नन्दिवर्द्धना—
भिधं सदा यच्छतु वांछितानि वः (60)
(—) यः प्रभाभरविनिर्म्मितनैत्रशैत्ये
चैत्येऽत्र भूरिरभवद् विभवव्ययो यः ।
ज्ञात्वा वदंति मनुजा इति तेजपालं
कल्पद्रुमत्ययमनेन धनव्ययेन (61)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुंज्ये गगनाणकला 1650 मितेऽब्दे
यात्रां चकार सुकृताय स तेजपालः ।
चैत्यस्य तस्य सुदिने गुरुभिः प्रतिष्ठा
चक्रे च हीरविजयाभिधसूरिसिंहैः (62)

मार्तण्डमण्डलामिवांबुरुहां समूहः
पीयूषरश्मिमिव नीरनिधेः प्रवाहः ।
केकिव्रजः सलिलवाहामिवातितुंगे
चैत्यं निरीक्ष्य मुदमेति जनः समस्तः (63)

चैत्यं चारु चतुर्मुखं कृतसुखं श्रीरामजीकारितं
तत्तुंगं जसुठक्कुरेण विहितं चैत्यं द्वितीय शुभम् ।
रम्यं कुंवरजीविनिर्म्मितम भूच्चैत्यं तृतीयं पुन—
र्मूं सश्रेष्ठीकृतं [illegible] (64)

एभिर्विश्वविसारिभिर्द्युतिभरैरत्यर्थसंसुन्नितोद्—
द्योतो दिक्ष्वखिलासु निर्जरपतिः स्वर्लोकपालैरिव ।
श्रीशत्रुंजयशैलमौलिमुकुटं चैत्यैश्चतुर्भियुतः
प्रसादो ऽद्भुतमणोऽभिमोदकमलाचैत्यं चिरं नन्दतु (65)

वस्ताभिधस्य वरसूत्रधरस्य शिल्पं
चैत्यं चिरादिदमुदीक्ष्य निरीक्षणभ्यम् ।
शिष्यत्वामिच्छति कलाकलितोऽपि विश्व—
कर्माऽस्य शिल्पिपटले भवितुं प्रसिद्धः (66)

सदाचारश्रीनां कमलविजयाह्वानसुधियां
पदद्वन्द्वांभोजभ्रमरसदृशो हेमविजयः ।
अलंकारैराढ्यां स्त्रियमिव शुभां या विहितवान्
प्रशस्तिः श(स्तै)षा जगति चिरकालं विजयताम् (67)

इति सौवर्णिकसाह श्रीतेजः पालोद्दतविमलाचल—
मण्डन श्रीआदीशमूलप्रासादप्रशस्तिः
बुधसहजसागरार्प दिनेयजयसागरोड लिखद्वर्णैः
शिल्पियामुत्कीर्णा माधवनानाभिधानाभ्याम् (68)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# खम्भात का श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन मन्दिर का शिलालेख

श्रेयःसंततिधामकामितमनः कामदुमांभोधरः पार्श्व प्रीतिपयोजिनीदिनमणि-श्चिंतामणिः पातु वः । ज्योतिः पंक्तिरिवाब्जिनीप्रणयिन पदयोत्करोल्लासिनं संपत्तिर्न जहाति यच्चरणयोः सेवां सृजन्तं जनं ।। 1 ।।

श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिनी वल्लभः पायाद्वःपरमप्रभावभवनं श्रीवर्द्धमानप्रभुः । उत्तपत्तिस्थितिसंहृतिप्रकृतिवाण यन्दीजंगत्पावनी स्वर्वापीव महाव्रति-प्रणयभूरासीद् रसोल्लासिनी ।। 2 ।।

आसीद्वासवव्ंदवंदितपदद्वन्द्वः पदां सम्पदा तत्पट्टाबुद्धिचन्द्रमा गणधरः श्रीमान् सुधर्म्माभिधः । यस्यौदार्ययुता प्रहृष्टसमुना अद्यापि विद्यावती धत्ते संततिरून्नति भगवतों वीरप्रभोर्गौरिव ।। 3 ।।

विभूवुः क्रमतस्तत्र श्रीजगच्चंद्रसूरयः । यैस्तपाबिरूदं लेभे बाणसिद्ध्यर्कं 1285 वत्सरे ।। 4 ।।

क्रमेणास्मिन गणे हेमविमलाः सूरयो भवन् । पत्प्टटे सूरतोऽभूवन्नान्द विमलाभिधाः ।। 5 ।।

साध्वाचारविधिपथः शिथिलतः सम्यक्श्रियां धाम चैरूद्दध्रे स्तनासिद्धिसायक-सुधारोचिर्म्मिमते 1582 वत्सरे । जीमूतैरिक यैर्जं-गत्पुनरिग ताप हृरिदिभमृशं सश्रीकं विदधे गवां शुचितमः स्तोमै रसोल्लासिभिः ।। 6 ।।

पद्माश्रयैरलामलंक्रियते स्म तेषां प्रणिन्मनांसि जगतां कमलोद येन । पट्टः प्रवाह् इव निर्ज्जर निर्झरिण्या शुद्धात्मभिविजयदानमुनीशहर्सै ।। 7 ।।

तत्पट्टपूर्वपर्व्वतपयोनिजीप्राणवल्लभप्रतिमाः । श्रीहीरविजयसूरिप्रभावः श्रीधाम शोभंते ।। 8 ।।

ये श्रीफतेपुरं प्राप्ताः श्रीअकब्बरशाहिता । आहूना वत्सरे नन्दानलर्त्तु शशिभृ 1639 न्मिते ।। 9 ।।

निजाशेषेषु देशेषु शाहिना तेन घोषितः । षाण्मासिको यदुक्त्योच्चैर्मारिपटहुः पट्टः ।। 10 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स श्रीशाहिः स्वकीयेषु मंडलेष्वखिलेष्वपि । मृतस्व जीजिआख्यं च करं यद्वचनैर्जहौ ।। 11 ।।

दुस्त्यजं तत्करं हित्वा तीर्थं शत्रुञ्जयाभिधं । जनप्राग्दगिरा चक्रे क्ष्माशक्रेणामुना पुनः ।। 12 ।।

ऋषी (षि) श्रीमेघजीमुख्या लुंपाका मतमात्मनः । हित्वा यच्चरणद्वन्द्वं भेजुंर्भृंगा इवांबुजं ।। 13 ।'

तत्पट्टमब्धिमिव रम्यतंम मृजंतः स्तौमैर्गवां सकलसंतमसं हरंतः । कामोल्लसत्कुवलयप्रणया जंयति स्फूर्जत्कला विजयसेनमुनींद्रचन्द्राः ।। 14 ।।

यत्प्रतापस्य महात्म्यं वर्ण्यते किमतः परं । अस्वमाश्रयश्क्रिरे येन जीवन्तो पि वादिनः ।। 15 ।।

सुदरादरमाहूतैः श्रीअकब्बरभूजुजा । द्राग् यैरलंकृतं लाभपुर पद्मभिवालिभिः ।। 16 ।।

श्रीअकब्बरभूपस्य सभासीमंतिनीहृवि । यत्कीर्तिर्मौक्तिकीभूता वादिवृन्दजयाब्धिजा ।। 17 ।।

श्रीहीरविजयह्हानसूरीणां शाहिना पुरा । अमारिमुख्य यद्वन्त यत्स्यातत्सकलं कृतं ।। 18 ।।

अंर्हतं परमेश्वरत्वकलितं संस्थाप्य विश्वोत्तम साक्षात् शाहिअकब्बरस्य सदसि स्तोमैर्गवामुद्दतैः । यै संमीलितलोचना विदधिरे प्रत्यक्षशुरैः श्रिया वादोन्मादभृतो द्विजातियतयो भट्टा निशाटा इव ।। 19 ।।

वैरभी सौरभयी च सौरभेयश्च सैरभः । न हन्तव्या न च ग्राहः वन्दिनः के पि कहिचित् ।। 20 ।।

येषामेव विशेषोक्तिविलासः शाहिनामुना । ग्रीष्मतप्तभुवेवाब्दपयःपूर प्रतिश्रुतः ।। 21 ।। युग्मम् ।।

जित्वा विप्रान् पुरः शहे कैलास इव मूर्तिमान् । यैरुदीच्यां यश स्तम्भः स्वो निचख्ने सुधोज्जवलः ।। 22 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतश्च—

उच्चलेल्लच्छलिताभिर्लमिततिभिर्वारांनिधेर्बंधुरे श्रीगन्धारपुरे पुरंदरपुरप्रख्ये श्रिया सुन्दरे। श्रीश्रीमालिकुले शशांकविमले पुण्यात्मनामग्रणी रासीवाल्हणसी परीक्षकमणिर्नित्यास्पदं सम्पदां ॥ 23 ॥

आसीद्वेल्हणसीति तस्य तनुजो जज्ञे धनस्तत्सुतस्तस्योदारमनाः सनामुहल-सीसंज्ञो भवनन्दनः। तस्याभूत् समराभिधश्च तनयस्तस्यापि पुत्रोऽर्ज्जुनस्तस्यासी-त्तनयो नयोर्ज्जितमतिर्भीमाभिधानः सुधीः ॥ 24 ॥

लालूरित्यजनिष्ट तस्य गृहिणी पद्देव पद्मपतेरिभ्यो भूत्तनयोऽनयोश्च उसिआसंज्ञाः सुपर्वप्रियः। पौलोमीसुरराजयोरिव जयः पित्रोर्मनः प्रीतिकृद् विष्णोः सिधुसुवेद तस्य जसमादेवीति भार्याऽभवत् ॥ 25 ॥

सद्धर्म्म सृजतोस्तयोः प्रतिदिनं पुत्रावभूतामुभावस्त्येको वजिआभिधः सदभि-धोऽन्या राजिआहः सुधीः। पित्रोः प्रेमपरायणौ सुमनसां वृंदेषु वृन्दारकौ शर्व्वाणी-स्मरवैरिणोरिव महासेनैकदन्ताविमौ ॥ 26 ॥

आद्यस्य विमलादेवी देवीध सुभगाकृतिः। परस्य कमलादेवी कमलेव मनोहरा ॥ 27 ॥

इत्थाभूतामुभे भार्य्ये द्वयोर्बांधवयोस्तयोः। ज्यायसो मेघजी-त्यासी सूनुः कामो हरेरिव ॥ 28 ॥ युग्मम् ॥

सुस्निग्धौ मधुमन्मथाविव मिथो दस्राविव प्रोल्लसद्रूपौ ख्यातिभृतौ धनाधि-पसतीनाथविव प्रत्यहं। अन्येद्यूर्बृहदिभ्यसभ्यसुभगं श्रीस्तंभतीर्थं पुरं प्राप्तौ पुण्य-परम्पराप्रणयिनौ तौद्वावपि भ्रातरौ ॥ 29 ॥

तत्र तौ धर्म्मकर्म्माणि कुर्व्वाणौ स्वभुजार्जितां। श्रियं फलवतीं कृत्वा प्रसिद्धिं प्रापतुः परां ॥ 30 ॥

ढाबिल्लदिक्पतिरकब्बरसार्वभौमः स्वामी पुनः परमतकालपूनः पयोधेः कामं तयोरपि पुरः प्रथिताविमौऽस्वस्तत्तदिशोरस शोरनयोः प्रसिद्धिः ॥ 31 ॥

तेषां च हीरविजय व्रतिसिंधुराणां तेषां पुनर्विजयसेनमुनीश्वराणां वाग्भिधा-कृतसुधाभिरिमौ सहोदरौ द्राग् द्वापपि प्रभुदितौ सुकृते बभूवतुः ॥ 32 ॥

श्री पार्श्वनाथस्य च वर्द्धमानप्रभोः प्रतिष्ठां जगतामभिष्टा। धनै र्धनैः कार-यतः स्म बन्धू तौर वार्द्धिपाथोधिकलमिते ब्दे 1644 ॥ 33 ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीविजयसेनसूरिनिर्म्मने निर्म्ममेश्वरः इमां प्रतिष्ठां श्रीसंघ-कैरवा करकौमुदीं ॥ 34 ॥

चिन्तामणेरिवात्यर्थं चिंतितार्थविधायनिः नामाऽस्य पश्र्वनाथस्य श्रीचिन्तामणिरित्यभूत् ॥ 35 ॥

अंगुलैरेकचत्वारिंशता चिंतामणेः प्रभोः । संमिता शोभते मूर्तिरेषा शेषाहिसेविता ॥ 36 ॥

सदैव विध्यापयितु प्रचण्ड-मयप्रदीपानिब सप्त सर्म्यान् । या वस्थितः सप्त फणान् दधानो विभाति चिन्तामणिपार्श्वनाथः ॥ 37 ॥

लोकेषु सप्तस्वपि सुप्रकाशं किं दीप्रदीपा युगपद्विधातुं । रेजुः फणाः सप्त यदीयमूर्ध्नि मणित्वषा छन्नस्ततमःसमूहाः ॥ 38 ॥

सहोदराभ्यां सुकृतादराभ्यामाभ्यामिदं दत्तबहुगमोदं व्याधियि चिंतामणिपार्श्वचैत्यमपत्यमुर्व्वीधनभित्सभायाः ॥ 39 ॥

निकां माकिल कामं दत्ते कल्पलतेव यत् । चैत्यं कामदनामैतत् सुचिरं श्रियमश्नुतां ॥ 40 ॥

उत्तभा द्वादश स्तम्भा भांति यत्राऽर्हतो गृहे । प्रभूपास्त्यै किमभ्येयुः स्तम्भरूपभृतों शवः यत्र प्रदत्त दक्शैत्ये चैत्ये द्वाराणि भांति षद् । षण्णां प्राणभृतां रक्षार्थिनां मार्गाइवागतेः ॥ 42 ॥

शोभन्ते देवकुलिकाः सप्त चैत्ये त्र शोभनाः । तप्तर्षीणां प्रभूपास्त्यै साद्धिमाना इवेयुषां ॥ 43 ॥

द्वौ द्वारपौ यत्रोच्चैः शोभेते जिनवेश्मनि । सौधर्म्मेशानयोः पार्श्वसेवार्थं किमितौ-पती ॥ 44 ॥

पंचविंशतिरूत्तुंगा भांति मंगलमूर्त्तयः प्रभूपार्श्वे स्थिताः पंचव्रतानां भावना इव ॥ 45 ॥

भृशं भूमिगृहं भांति यत्र चैत्ये महत्तरं किं चैत्यश्रीदि क्षार्थमितं भ्वनभासुरं ॥ 46 ॥

यत्र भूमिगृहे भाति सोपानी पंचविंशतिः । मार्गाविरि दुरिताक्रिप्रातिक्रांतिहेतवे ॥ 47 ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संमुखो भाति सोपानोत्तरद्वारि द्विपाननः । अन्तः प्रविशतां विघ्नवि ध्वंसाय मिमीयिवान् ॥ 48 ॥

यद् भाति दशहस्तोच्चं चतुरस्त्रं महीगृहं । दशादिक्‌मंपदां स्वैरोपदेशायेव मंडपः षड्विंशतिविबुधवृंदावितोमंहर्ष राजंति देवकुलिका इह भूमिधाम्नि । आद्याद्धि तीयदिवनाथरवींदुदेव्य श्रीवाग्युताः प्रभुनमस्कृतये किमेताः ॥ 50 ॥

द्वाराणि सुप्रपंचानि पंच भांतीह भूगृहे । जिघत्सवा होऽहरिणान् धर्म्मसिंहमुखा इव ॥ 51 ॥

द्वौ द्वास्थौ द्वारदेशस्थौ राजतोभूमिधामिन । मूर्तिमन्तौ चमरेंद्रधरणेंद्राविव स्थितौ ॥ 52 ॥

चत्वारश्चमरधरा राजन्ते यत्र भूगृहे । प्रभुपार्श्वं समायाता धर्म्मास्त्यागावय बिमु ॥ 53 ॥

भाति भूमिगृहे मूलगर्भागारे तिसुन्दरे । मूर्तिराविप्रभोः सप्तत्रिंशदगुलसंमिता ॥ 54 ॥

श्री वीरस्य त्रयस्त्रिंशदंगुला मूर्तिरुत्तमा श्रीशान्तेश्चसप्तविंशत्यंगुला भाति भूगृहे ॥ 55 ॥

यत्रोद्धता धराधम्नि शोभन्ते दश वन्तिनः । युगपज्जिनसेवायै दिशामीशा इवाययुः ॥ 56 ॥

यत्र भूकमगृहे भाति स्पष्टमष्ट गृगरायः । भक्तिभाजामष्टकर्म्मगजान् हंतुमिवोत्सुकाः ॥ 57 ॥

श्रीस्तम्भतीर्थपूभुमिभामिनी भालभूषणं चैत्यं चिंतामणेर्वीक्ष्य विस्मयः मास्य माभवत् ॥ 58 ॥

एतौ नितान्तमतनुं तनुतः प्रकाशं यावत् स्वयं सुमनसां पथि पुष्पदन्तौ । श्रीस्तम्भतीर्थधरणीरमणीललाम तवाच्चिरं जयति चैतयमिन्द मनोज्ञं ॥ 59 ॥

श्रीलाभविजयपण्डिततिलकैः समशोधि बुद्धिधनधुर्यैः । लिखिता च कीर्तिविजयाभिधेन गुरुबान्धवेन मुदा ॥ 60 ॥

वर्णिनीव गुणाकीर्णा सदलंकृतिवृत्तिभाग् एषा प्रशस्तिरुत्कीर्णा श्रीधरेण सुशिल्पिना ॥ 61 ॥

श्रीकमलविजयकोविदशिशुना विबुधेन हेमविजयसेन रचिता प्रशस्तिरेषा कनीव सदलंकृतिर्जयति ॥ 62 ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति परीक्षकप्रधान प० वजिआ प० राजिआनामसहोदनिरम्मापित श्रीचिन्ता-मणिपार्श्वजिनपुंगवप्रासादप्रशस्तिः संपूर्णा । भद्रं भूयात् ॥

ॐ नमः । श्रीमद्विक्रमनृपातीत सम्वत् 1644 वर्षे प्रवर्त्तमान शाके 1509 गन्धारी प० जसिआ तद्भार्या जसमादे सम्पत्ति श्रीस्तम्भतीर्थवास्तव्यतत्पुत्र प० विजिया प० राजिआभ्यां वृद्धभ्रातृभार्या विमलादे लघुभ्रातृभार्या तद्भार्या मयगलदेप्रमुखनिज परिवारपुताभ्यां श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ श्रीमहावीरप्रतिष्ठ-कारिता श्रीचिन्तामणिपार्श्वचैत्यं च कारि । कृता च प्रतिष्ठा सकलमण्डलाखण्डल-शाहि श्री अकब्बरसम्मानित श्रीहीरविजयसूरीशपट्टालंकारहार सदृशैः शाह श्री अकब्बरपर्षदि प्राप्तवर्ण्णवादैः श्रीविजयसेनसूरिभिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## राणकपुर में आदीश्वर भगवान के मन्दिर का शिलालेख

(1) ॥ॐ॥ सम्वत् 1647 वर्षे श्री फाल्गुनमासे शुक्लापक्षे

(2) पंचम्यां तिथौ गुरूवासरे श्रीतपागच्छाधिराजपात

(3) साह श्रीअकबरदत्तजगद्गुरूबिरूदधारक भट्टारि (र) क श्री—

(4) श्रीश्री 4 हीरविजयसूरिणामुपदेशेन । चतुर्मुखश्रीधरण—

(5) विहारे प्राग्वाटज्ञातीयसुश्रावक सा० खेता नायकेन

(6) वर्द्धापुद्ध यशवन्तादि कुटं (टुं) बयुतेन अष्ट चत्वारिंशत् 48 प्र—

(7) माणानि सुवर्णनांणकानि मुक्तानि पूर्वदिक सत्कप्रतोली—

(8) निमित्तमिति श्रीअहिमदाबादपार्श्वे । उसमापुरत: ॥श्रीरस्तु॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# श्री पावापुरी तीर्थ

## मन्दिर प्रशस्ति—शिलालेख

(1) ॥ एँ ॥ स्वस्ति श्री सम्वति 1698 वैशाख सुदि 5 सोमवासरे । पातिशाह श्री साहिजांह सकलसूर ।

(2) मंडलाधीश्वर विजयीराज्ये 11 श्री चतुर्विशतितमजिनीधराज श्री वीर वर्द्धमान स्वामी ।

(3) निर्वाण कल्याणिक पवित्रिक पावापुरी परिसरे श्री वीरजिनचैत्य-निवेश श्री ।

(4) रूषन जिनराज प्रथम पुत्र चक्रवर्ती श्री भरत महाराज सकलमन्त्रि-मण्डल श्रेष्ठ मन्त्रि श्रीमदसन्तानीय म०

(5) हतिआण ज्ञातिशृंगार चौपड़ा गोत्रीय संघनायक संघवी तुलसीदास मार्या निहाले पुत्र सम्वत् संग्राम ।

(6) लघुभ्रातृ गोवर्द्धन तेजपाल भोजराज । रोहदीय गोत्रीय मण्डल परमानंद सपरिवार महुवा गोत्रीय विशेष धर्म्मं ।

(7) कर्म्मोद्यम विधायक ०० दुलीचन्द कांडडा गोत्रीय मण्डल मदनस्वामी दास मनोहर कुशला सुन्दरदास रोहदिया ।

(8) मथुरादास नारायणदासः गिरिधर सन्तादास प्रसादी । वांतिदिया गो० गूजरमल्ल बूंदडमल्ल मोहनदास ।

(9) माणिकचन्द बूंदमल्ल ठ० जगत मूरीचन्द्र । नान्हरा गो० ठ० कल्याण-मल्ल मलूकचन्द्र सभा—

(10) चन्द 1 सन्धेला गोत्रीय ठ० सिंभू कीर्तिपाल बाबूराय केसवराय सूरति-सिन्ध 1 काड्डा गो० दयाल—

(11) दास भोवालदास कृपालदास मीर मुरारीदास किलू । काणा गोत्रीय ठ० राजपाल रामचन्द ।

(12) महुधा गो० कीर्तिसिंध रो० छबीचन्द । जाजीवाण गो० म० नथमल्ल नन्दलाल नान्हड़ा गोत्रीय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(13) ठ० सुन्दरदास नागरमल कमलदास 11 रो० सुन्दर सूरति मूरति-
सबलकृती प्रताप पाहृडिया ।

(14) गो० हेमराज भूपति ।-काग्रा गो० मोहन सुखमल्ल ठ० गढ़मल्ल
जा० हरदास पुरसोत्तम । मीणवा—

(15) ण गो० बिहारीदास बिन्दु । मह० मेदनी भगवान गरीबदास साहरेणु
रीय जीवण वजागरा गो० ।

(16) मलूमचन्द जूझ गो० सचल बन्दी सन्ती । चो० गो० नरसिंघ हीरा
धरमू उत्तम वर्द्धमान प्रमुख श्री ।

(17) बिहार वास्तव्य महतीयाण श्री संघन कारितः तत् प्रतिष्ठा च श्री,
बृहत् खरतर गच्छाधीश्वर युगप्रधान श्री ।

(18) जिनसिंह सूरि पट्टप्रभाकर युगप्रधान श्री जिनराज सूरि विजयमान
गुरुराजानामादेशेन कृत ।

(19) पूर्वदेश बिहारे युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि शिष्य श्री समयराजोपा
ध्याय शिष्य वा० अभयसुन्दर ग०—

(20) णि विनये श्री कमलाभोपाध्यायैः शिष्य पं० लब्धकीर्तिगणि प० राज-
हंस गणि देवविजय म—

(21) गणि धिरकुमार चरणकुमार मेघकुमार जीवराज सांकर जसवन्त
महाजला शिष्य संततिः सपरिवार्यो । श्रीः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| आइने-अकबरी | रामलाल पांडेय | विद्या मन्दिर कानपुर | 1935 |
| सूरीश्वर और सम्राट | कृष्णलाल वर्मा | श्रीविजयधर्म- लक्ष्मी ज्ञानमंदिर आगरा | सं० 1980 |
| युग प्रधान श्रीजिनचंद्र सूरि | अगरचन्द भंवरलाल नाहटा | शंकरदान, शुभै- राज, कलकत्ता | सं० 1992 |
| अकबरनामा | मथुरालाल शर्मा | कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर | 1975 |
| विजयप्रशस्तिसार | मुनिविद्याविजयजी | हर्षचन्द्र भूराभाई, बनारस | 1912 |
| इतिहास प्रवेश | श्रीजयचन्द्रविद्यालंकार | सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद | 1939 |
| जगद्गुरूहीर सूरिश्वरजी | श्रीपुण्य विजयजी | लब्धिभुवन जैन साहित्य सदन, छाणी (गुजरात) | सं०2027 |
| एतिहासिक जैन काव्य संग्रह | संग्रह सं० अगरचन्द भंवरलाल नाहटा | शंकरदान, शुभैराज नाहटा कलकत्ता | 1994 |
| जहांगीरनामा | प० बृजरत्नदास | नागरीप्रचा- रिणी सभा, काशी | सं० 2014 |
| जैन साहित्य और इतिहास | नाथूराम प्रेमी | हिन्दीग्रंथरत्नाकर कार्यालय, बम्बई | 1942 |
| कुरान शरीफ तर्जुमा | हिन्दी अनुवाद | रतन एण्ड कम्पनी दरियागंज, देहली | |


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## "इंग्लिश"


| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| आइन-ए-अकबरी | एच० ब्लॉचमैन | एशियाटिकसोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता | 1927 |
| आइने अकबरी भाग 3 | एच० एस० जैरेट | रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल | 1948 |
| मुन्तखबउत-तवारीख (अलबदायूंनी) | डब्ल्यू० एच० लॉ | वही | 1924 |
| अकबर द ग्रेट मुगल | विन्सें-ए-स्मिथ | ऑक्सफोर्ड एट द क्लेरंडन प्रेस | 1919 |
| ए मोंक एण्ड मोनार्क | डॉलर राय आर मॉकड़ | श्रीविजयधर्मसूरिजैन बुक्स सीरिज, उज्जैन | स० 200 |
| द रिलीजियस पॉलिसी ऑफ मुगल एम्पररस एडीशन | श्रीराम शर्मा | एशिया पब्लिशिंग हाउस न्यू देहली | 1962 |
| इण्डिया, एशॉटंकल्चरल हिस्ट्री | एच० जी० रावलिंसन | लन्दन | 1948 |
| ए सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री | के० एम० पनिक्कर | कुसुम नायर द नेशनल इनफारमेशन एंड पब्लिकेशन | 1947 |
| द मुगल एम्पायर | आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव | शिवलाल एण्ड कम्पनी आगरा | 1967 |
| मुगल एम्पायर इन इण्डिया | एस० आर० शर्मा | लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा | 1966 |
| भण्डारकर अभिनन्दन ग्रन्थ | विन्सेन्ट ए स्मिथ | भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट पूना | 1917 |


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| एन्शिएन्ट विज्ञप्तिपत्र | डा०हीरानन्द शास्त्री | डायरेक्टर ऑफ आर्कोलीकेल, बड़ोदा | 1942 |
| मेंडलस्लो ट्रवल्स इन वैस्टर्न इण्डिया | एम० एस० कमशर्ट | ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस | 1931 |
| तुजुक-ए-जाहंगीरी | श्री बेनीप्रसाद | | |
| द जैन विद्या 1 वोलियम न०, 1 | | बनारसीदास जैन लाहौर | जुलाई 1941 |
| ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्किम रूल इन इण्डिया द्वितीय एडीसन | ईश्वरीप्रसाद | इलाहाबाद | 1950 |
| द रिलीजियेश पालिसी ऑफ मुगल एम्पररस 1 एडीशन | श्रीराम शर्मा | आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी | 1940 |
| द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्डबाइ इटस ओन हिस्टोरियनस | इलियट एण्ड डाउन | | 1977 |

## "गुजराती"

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| श्रीतपागच्छ पट्टावली | स०पन्यास श्रीकल्याण विजयजी | विजयनीतिसूरिजैन लायब्रेरी अहमदाबाद | 1940 |
| श्रीतपागच्छश्रमणवंशवृक्ष | जयन्तीलाल छोटालाल शाह | जयन्तीलाल, छोटा स० अहमदाबाद | 2462 |
| सूरीश्वरअने सम्राट | मुनिराजविद्या विजयजी | यशोविजयजैन ग्रन्थ-माला, भावनगर | स०1979 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशन | सन् |
|---|---|---|---|
| श्रीआनन्दकाव्य | महोदधि स० जीवनचन्द भाईचेलाभाई खाकरचन्द नगर | सूरत | 1916 |
| भाग 5 (हीरविजयसूरिरास) (लेखककवि ऋषभदा स | | | |
| श्रीसेनप्रश्नसार संग्रह | प० शुभविजयगणि | हाकरसी जैन ज्ञान मन्दिर लींच | 1940 |
| जगद्गुरूहीर | मुमुक्षुभव्यानन्द | विजयश्री हितसत्कज्ञान-मन्दिर घाणेराव (मारवाड़) | स० 2008 |
| जैन इतिहासिक गुर्जर काव्य संचय | स०श्रीमानजिनविजयजी | श्री जैनआत्मानन्द सभा, भावनगर | 1933 |
| जैन साहित्य नो इतिहास | मोहनदलीचन्द देसाई | मोहनलाल दली-चन्द देसाई, बम्बई | 1933 |
| जैन गुर्जर कवियों भाग 2 | स०मोहनलाल दलीचन्द देसाई | श्रीजैनश्वेताम्बर कांफ्रेंस ऑफ बम्बई | 1931 |
| एतिहासिकरास संग्रह भाग 4 | श्रीविद्याविजयजी (संशोधक) | श्रीयक्षोविजय जैन माला, भावनगर | 1977 |
| एतिहासिक सज्झाय-माला | स०मुनिराजविद्या विजयजी | ——वही—— | स०1973 |
| खम्भात नो प्राचीन जैन जैन इतिहास | नर्मदाशंकर त्र्यम्बकराम भट्ट | जैनाचार्य श्रीआत्मा नन्द जन्मशताब्दी स्मारक ट्रस्ट बोर्ड बंबई | स०1998 |
| श्रीजिनप्रभुसूरि अने सुल्तान मुहम्मद | प० लालचन्द भगवान गांधी | जिनहीरसागरसूरि-ज्ञान भण्डारलोहावट (राजस्थान) | 1939 |
| लाभोदयरास श्रीविजवल्लीरास | प० दयाकुशलगणि | अप्रकाशित मूलप्रति वही है | |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# संदर्भित ग्रन्थ सूची

## "संस्कृत"


| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| पट्टावली समुच्चय भाग 1 | सम्पादक मुनिदर्शन विजय | श्रीचरित्रस्मारक ग्रन्थ माला, वीरमगांव गुजरात | 1933 |
| खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह | स० श्रीजिनविजयजी | पूरनचन्द नाहर कलकत्ता | 1932 |
| खरतरगच्छवृहदगुर्वावलि | स० जिनविजयमुनि | सिन्धी जैनग्रन्थ माला बम्बई | 1956 |
| कीर्ति कौमुदी | स० आगमप्रभाकर श्री पुण्य विजयजी | सिंघी जैन ग्रन्थ बम्बई | 1961 |
| कुमारपालचरित्रसंग्रह | स० जिनविजयमुनि | ..... | 1956 |
| कुमारपाल प्रतिबोध | सोमप्रभाचार्य | गायकवाड ओरिपटल सीरिज बड़ौदा | 1920 |
| भानुचन्द्रगणिचरित | स० मोहनलाल दलीचन्द्र दसाई | सिंघीविज्ञान पीठ अहमदाबाद | 1941 |
| हीरसौभाग्य काव्य | श्रीदेवविमलगणि | तुकाराम जाटव जावाजी, निर्णय सागर बम्बई | 1900 |
| विजयप्रशस्ति काव्य | श्रीहेमविजयगणि | यशोविजय जैन ग्रंथमाला बनारस | वीरसंवत 2437 |


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| कृपारस कोष | शांतिचन्द्र उपाध्याय | जैनआत्मानन्द सभा, भावनगर | 1917 |
| विजयदेवसूरि माहात्म्य | स० जिनविजयजी | जैन साहित्य संशोधक समिति, अहमदाबाद | 1928 |
| दिग्विजय माहाकाव्य | स० अम्बालाल प्रेमचंद शाह | सिंधी जैन ग्रंथ माला, बम्बई | 1945 |
| देवानन्द माहाकाव्य | स० बेचरदास जीवराज दोशी | सिंधी जैन ग्रंथ माला, अहमदाबाद | 1937 |
| प्राचीन जैनलेख संग्रह भाग 2 | स० जिनविजयजी | श्री जैनआत्मानन्द सभा, भावनगर | 1921 |
| मनुस्मृति | भाषा टीका पं० रामेश्वर भट्ट | निर्णय सागर प्रेस, बम्बई | 1916 |
| गीता | संग्रहकर्ता गणेशशास्त्री पाठक | के० एम० पाठक, गीता प्रेस, गोरखपुर | 1893 |
| महाभारत | अनु० प० नारायणदत्त | | |

## "हिन्दी"

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| चौलुक्य कुमारपाल | श्री लक्ष्मीशंकर व्यास | भारतीय ज्ञानपीठ काशी | 1954 |
| अकबरी दरबार पहला भाग | मौलाना मुहम्मद हुसैन अनु० रामचन्द्र वर्मा | काशी नागरी प्रचारिणी सभा | 1924 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## "प्राकृत"

| पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| विविधतीर्थकल्प | जिनप्रभसूरि | अधिष्ठातासिंघी जैन ज्ञानपीठशांतिनिकेतन, बंगाल | 1934 |
| आचाराङ्ग सूत्रम् | प्रायोजक-रवजीभाई देवराज | मेहता मोहनदास दामोदर, राजकोट | 1906 |

## "पत्रिका"

| पुस्तक का नाम | लेख व लेखक का नाम | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| विश्ववाणी नव+दिस० अंक अकबर विशेषांकर | अकबर की धार्मिकनीति रामलाल पाण्डेय | विश्ववाणी कार्यालय इलाहाबाद | 1942 |
| इण्यिन हिस्टोरिकल क्वार्टरनी भाग 12 | रिलीजियस पालिसी ऑफ शाहजहां-श्रीराम शर्मा | पंचानन घोषले कलकत्ता | मार्च 1936 |
| इण्डियनकल्चर भाग 4 नं० 1–4 | जहांगीर रिलीजियस श्रीराम शर्मा | पॉलिसी, इण्डियन रिसर्चइन्टीटयूट कलकत्ता | 1937-38 |
| जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री वोलियम 8 भाग 1 | सनसाईड लाईटस ऑन द केरेक्टर एण्ड कोर्ट लाइफ ऑफ शाहजहां -के०आर० कानूनगो | मद्रास | अप्रैल 1929 |
| श्री जैन सत्यप्रकाश वर्ष 10, अंक 12 | जगदगुरू हीरविजयसूरिजी, मुनिन्यायविजयजी | जैन सत्यप्रकाश समिति अहमदाबाद | 1945 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| पुस्तक का नाम | लेख व लेखक का नाम | प्रकाशक | सन् |
|---|---|---|---|
| जैन शासन दीपावली नो खास अंक | हीरविजयसूरिऑर द जैनस, एटदकोर्ट ऑफ अकबर –चिमनलाल डाह्याभाई | हर्षचन्द भूराभाई बनारस सिटी | स० 2438 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org